

कथा कहो उर्वशी

देवेन्द्र सत्यार्थी



राजकमल प्रकाशन

प्रथम संस्करण १९६१

मूल्य सात रुपए

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली

मुद्रक श्री गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस दिल्ली

उन चट्टानों के नाम
जिन्हें किसी मूर्तिकार का
इन्तजार नहीं

गोप बाबू (नवीन प्रेस, दिल्ली) ने अध्याय के अमृत शीर्षों का क्रम मनोहर इस उपन्यास का नाम डाली। और देवना (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली) ने इस आग्रह से कि वे भी स्वयं-संशोधन करते हैं, पाण्डुलिपि में ही अन्तिम बार कर लें, यह कष्टदायी पृष्ठ भरने की प्रेरणा दी।

कलकत्ता निवासी सर्वश्री पृथ्वीनाथ शास्त्री, गौरीशंकर भट्टाचार्य, सुभो ठाकुर, शरद देवड़ा, कृष्णानाथ, भोलानाथ व्यास और पूनमचन्द ने कथा की रूपरेखा में अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये।

दिल्ली निवासी सर्वश्री युगलाल नवापुरा, धर्मचन्द्र सुमन, स्वतन्त्र पालीवाल, 'सात फुट ऊँचे इन्सान' विश्वनाथ देव और नरेन्द्र भटनागर ने अनेक अध्याय पढ़-सुनकर सत्य, साधना और संस्कार की चिन्तन धारा में हाथ बंटाया।

नन्दलाल कुण्डू ने उमा की एक मूर्ति पर आधारित चित्र बनाया जिससे प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में 'सिगनेचर ट्यून' का काम लिया गया है। बासन राय ने तीन खण्डों के लिए तीन मूर्तियों पर आधारित तीन चित्र तैयार किये। नरेन्द्र सेन (सिलोमिण्टि आर्टिस्ट्स, दिल्ली) ने आवरण चित्र बनाया।



तुम भी आ गई हो

अन्तिम पृष्ठ के प्रूफ पढ़कर मैंने अनेक यात्राओं की सहचारिणी अपनी पत्नी से कहा, 'चलो यह काम समाप्त हुआ।' पर प्रूफों की हालत देखी तो वह झुँझलाकर बोली, 'अरे यार फिर चीखेंगे। यह कौन-सी टेंट का आदत बन छोड़ोगे?'

मैंने कहा, 'कथाकार कथा नहीं कहता, स्वयं कथा ही कथाकार को कथा कहती है। कभी शब्द नहीं मिलते, कभी भाव नहीं उठते। यही मुसीबत है।'

श्रीमती ने चुटकी ली, 'तुम्हें लिखना नहीं आता, तो इससे अच्छा है कि तरकारी दुकान शुरू कर दो।'

मुझे याद आया व्यंग्य के इस धूल भरे पथ पर बरसों से चलता आ रहा हूँ। ममता और प्यार—भरी बच्चियों ने जहाँ गरम चाय और मीठी मुस्कान द्वारा मेरे काम में योग दान दिया, वहाँ मेरे अनुभव को स्थापित करते हुए मेरे शुष्क मनन के स्वभाव को भी जीवित रखा और बड़ी कन्या कविता वसुमती ने इस बार भी जहाँ पाण्डुलिपि को साथ साथ पढ़कर कृति में कृतिकार का निखार सजाये रखा, वहाँ मधुर आल्हादक स्वरों में माँ व नाना की कल्पनाओं में भी मेरे मस्तिष्क को मुक्त

कर दिया।

श्रीमती ने कहा, 'जब तक तुम एक ही चीज को बार-बार लिखने की आदत छोड़कर पूरे विश्वास से काम नहीं लेते, बात नहीं बनेगी।'

मैंने कहा, "शब्द मेरी भुजाएँ हैं और भाव मेरे प्राण। यों यह समझो शब्द घोड़े हैं और भाव शहसवार। दोनों की खोज में रहता हूँ। कभी तो रचना का अश्वमेध घोड़ा मुझे चक्रवर्ती बना ही देगा।

श्रीमती ने हँसकर कहा, 'तुम चक्रवर्ती बन चुके! तुम्हारे किसी उपन्यास का दूसरा संस्करण भी छपा?'

मैंने कहा, 'शायद 'कथा कहो उर्वशी' का दूसरा संस्करण भी छपे। पर पहला संस्करण तो निकलने दो। इस पत्रिका में सूचना छपी है कि मास्को के पाण्डुलिपि विभाग में टाल्स्टाय के हस्त लिखित पृष्ठों की संख्या एक लाख अस्सी हजार से ऊपर होगी।

श्रीमती बोली, "तुम भी तो नित्य लिखकर कागज काले करते रहते हो। उनकी संख्या कहाँ तक पहुँची होगी!'

मैंने कहा, 'यहाँ लिखा है कि मास्को म्यूजियम में टाल्स्टॉय के 'युद्ध और शान्ति' के आरम्भ के १५ रूप, 'पुनर्जीवन' के १२ रूप और इतने ही 'आना करेनीना' के आरम्भ के रूप सुरक्षित हैं।"

श्रीमती झुँझलाई, 'एक ही चीज को बार बार लिखते रहना तो समय नष्ट करने के सिवा कुछ नहीं।"

मैंने खिलखिलाकर कहा, 'पूरी बात तो सुन लो। टाल्स्टाय ने 'पुनर्जीवन' की नायिका कात्यूशा मास्लोवा का चरित्र पतिता वाला वक्तव्य बीस बार लिखा था। और सुनो मास्को म्यूजियम में टाल्स्टाय की एक सौ से अधिक डायरियाँ और नोट बुक सँभाल कर रखी हैं।'

'तुम्हारे काले किये हुए कागज तो किसी म्यूजियम में जाने से रहे!' श्रीमती हँस पड़ी। 'तुम ऐसी चीज क्यों नहीं लिखते जो खूब बिक सके?'

मैंने कहा, 'शायद मैं वह नहीं लिख पाता, जो लोग चाहते हैं। मैं तो वह लिखता हूँ जो मैं स्वयं चाहता हूँ।

मूर्ति को चट्टान में स्वयं प्रकृति ने ही बना रखी होती है। मूर्तिकार तो बस अपनी छेनी द्वारा अनावश्यक अंश छील कर मूर्ति को निरावरण कर देता है।

—माइकेल एंजेलो

कर दिया।

श्रीमती ने कहा, "जब तक तुम एक ही चीज को बार-बार लिखने की आदत छोड़कर पूरे विश्वास से काम नहीं करते, बात नहीं बनेगी।

मैंने कहा, "शब्द मेरी भुजाएँ है और भाव मेरे प्राण। या यह समझो, शब्द घोड़े है और भाव शहसवार। दोनों की खोज में रहता हूँ। कभी तो रचना का अश्वमेध घोड़ा मुझे चक्रवर्ती बना ही देगा।

श्रीमती ने हँसकर कहा, तुम चक्रवर्ती बन चुके! तुम्हारे किसी उपन्यास का दूसरा संस्करण भी छपा?'

मैंने कहा, शायद 'कथा कहो उर्वशी' का दूसरा संस्करण भी छपे। पर पहला संस्करण तो निकलने दो। इस पत्रिका में सूचना छपी है कि मास्को के पाण्डुलिपि विभाग में टाल्स्टाय के हस्त लिखित पृष्ठों की संख्या एक लाख अस्सी हजार से ऊपर होगी।'

श्रीमती बोली, 'तुम भी तो नित्य लिखकर कागज काले करते रहते हो। उनकी संख्या कहाँ तक पहुँची होगी!

मैंने कहा, 'यहाँ लिखा है कि मास्को म्यूजियम में टाल्स्टाय के 'युद्ध और शान्ति' के आरम्भ के १५ रूप, पुनर्जीवन के ११ रूप और इतने ही एना करनीना के आरम्भ के रूप सुरक्षित है।'

श्रीमती झुंझलाई, 'एक ही चीज को बार बार लिखते रहना तो समय नष्ट करने के सिवा कुछ नहीं।

मैंने गिड़गिड़ाकर कहा, पूरी बात तो सुन लो। टाल्स्टाय ने 'पुनर्जीवन' की नायिका कातयूशा मासलोवा की चार पंक्तियों वाला वक्तव्य बीस बार लिखा था। और सुनो मास्को म्यूजियम में टाल्स्टाय की एक सौ से अधिक डायरियाँ और नोट बुक सँभाल कर रखी है।'

'तुम्हारे काले किये हुए कागज तो किसी म्यूजियम में जाने से रहे।' श्रीमती हँस पड़ी, तुम ऐसी चीज क्यों नहीं लिखते जो खूब बिक सके।'

मैंने कहा, 'शायद मैं वह नहीं लिख पाता जो लोग चाहते है। मैं तो वह लिखता हूँ जो मैं स्वयं चाहता हूँ।



तुम भी आ गई हो

अन्तिम पृष्ठ के प्रूफ पढ़कर मैंने अनेक यात्राओं की सहचारिणी अपनी रचना से कहा, 'चलो, यह काम समाप्त हुआ।' पर प्रूफ की हालत देखी तो वह झुँझलाकर बोली, 'इस बार फिर चौका। यह कौन दौर का आरम्भ कर डाला?'

मैंने कहा, 'कथाकार कथा नहीं कहता, स्वयं कथा ही कथाकार की कथा कहती है। कभी शब्द नहीं मिलते, कभी भाव नहीं उठते। यही मुसीबत है।'

आभा ने चुटकी ली, 'तुम्हें लिखना नहीं आता, तो इससे अच्छा है कि तस्वीरें उतारना शुरू कर दो।'

मुझे याद आया, व्यंग्य के इस सूने भरे पथ पर बरसों से चलता आ रहा हूँ। सरिता और पारस—मेरी बच्चियों ने जहाँ गरम चाय और मीठी मुस्कान द्वारा मेरे काम में योगदान दिया, वहाँ मेरे अनात को स्थापित करते हुए मेरे सुप्त मानव के स्वभाव को भी जीवित रखा और बड़ी बच्ची कविता कुसुमरी ने इस बार भी जहाँ पाण्डुलिपि को साथ साथ पढ़कर कृति में कलाकार को निखार सजाये रखा वहाँ मधुर प्रोत्साहन द्वारा माँ के नाना की कड़वाहट में भी मेरे अस्तित्व को मुक्त



"तो कब तक चूल्हा ठण्डा रहेगा?" व्यंग्य का तीर मेरे सीने पर आ लगा।

मैंने कहा, "टालस्टाय ने अपनी अन्तिम पंक्तियाँ मृत्यु से चार दिन पहले अस्तापोवो रेलवे स्टेशन में लिखी थीं जब वे पत्नी की जली-कटी बातों से तंग आकर घर छोड़कर चले गये थे।"

"बस इतनी कसर और रहती है।" श्रीमती भी चुप न रह सकीं, "फिर तो तुम भी शायद एक-न-एक दिन टालस्टाय बन ही जाओगे।"

उस समय मैंने श्रीमती को उसी उर्वशी के रूप में देखा जिसमें 'कथा कहो उर्वशी' के नायक ने अपनी श्रीमती को देखा था। वह बोला, 'टालस्टाय बनने के सपने छोड़ो और सो जाओ।'

मैंने कहा, "सोऊँगा तो सपने और भी सतायेंगे।"

मुझे नींद नहीं आ रही थी। नींद की प्रतीक्षा में मैं सोचने लगा— कल फिर सूरज उगेगा और मेरी खिड़की के शीशे से भीतर झाँकेगा। कल फिर अखबार की कोई-न-कोई खबर मेरी किसी रचना में प्यार और दर्द भर देगी। कल फिर शब्दों के घोड़े दौड़ पड़ेंगे भावों के शहसवारों को लेकर। कल फिर जाने किस-किस आवाज की गूँज मुझ तक पहुँचेगी जैसे रेडियो पर देश-देश के संगीत सुनने को मिल जाता है। और मैंने अपनी उर्वशी से कहा, 'मैं इस उपन्यास का नायक तो न बन सका पर कहीं मैंने अपना वह रूप अवश्य छिपा रखा है। इसमें तुम भी आ गई हो।'

मैंने आँखें मूँद लीं। श्रीमती शायद पहले ही सो चुकी थीं।

८ जनवरी १९६१ —देवेन्द्र सत्यार्थी



मूर्ति तो चट्टान में स्वयं प्रकृति ने ही बना रखी होती है। मूर्तिकार तो बस अपनी छेनी द्वारा अनावश्यक अंश छील कर मूर्ति को निरावरण कर देता है।

—माइकेल एंजेलो



जगन्नाथ का रथ

'कथा कहो उर्वशी' की पृष्ठभूमि है उड़ीसा का धौली गाँव। इस उपन्यास की भी वही बात समझिए—कभी नाव माँझी पर तो कभी माँझी नाव पर। पतवार तो माँझी के हाथ में ही रहनी चाहिए।

पहली बार जब मैंने धौली की यात्रा की तो तईस वर्ष पूरे करके चौबीसवें में प्रवेश कर रहा था। आठ वर्ष पश्चात् दूसरी बार धौली गया। फिर पिछले साल धौली की तीसरी यात्रा की तो इक्यावनवाँ चल रहा था। तब तक इस उपन्यास की रूपरेखा बन चुकी थी। फिर भी धौली देखने की लालसा बनी ही रही।

बंगला लोक-साहित्य की एक उक्ति-वाणी है

ऊपरे बाजे मेघ दुंदुभी बामुणी नाचे मेट।
मरा मये आहार करे अजम्मा तार पेटे॥

[ऊपर मेघ-दुंदुभि बज रही है, नीचे ब्राह्मणी नाच रही है डटकर खाने के बाद। मरी हुई कन्या आहार कर रही है जो अजन्मा है वह उसके पेट में है।]

यह उपन्यास लिखने की समस्या भी कुछ कुछ ऐसी ही थी।

धौली की प्रसिद्धि अश्वत्थामा शिला के कारण है जिस पर अशोक

की राजाज्ञा अंकित है। यह वही राजाज्ञा है, जिसमें कलिंग युद्ध के पश्चात देवानां प्रिय ने घोषणा की थी कि अब व कभी युद्ध नहीं करेंगे और शान्ति तथा अहिंसा के व्रती बन रहेंगे।

तीसरी धौली यात्रा में उड़ीसा सरकार के टूरिस्ट विभाग के रथ बाबू और बम्बई से आये मेरे मित्र रतनलाल जोशी साथ थे। अश्वत्थामा धौली से एक मील है। अश्वत्थामा के रास्ते में एक उड़िया युवक हमारा मार्ग दर्शक बन गया। उसने बताया कि हर शनिवार को ठीक सन्ध्या-समय अश्वत्थामा के पास एक आलोक दिखाई देता है। अश्वत्थामा पहुंचकर हमने इस शिला के ऊपरी भाग पर बना हाथी मुख देखा। रथ बाबू और जोशीजी के लिए एकदम अशोककालीन इतिहास में खो जाने की बात थी, क्योंकि उन्होंने अश्वत्थामा शिला पहली बार देखी थी। मैं भी इसी गुप्त कौतूहल से देखता रह गया जैसे पहली दो यात्राओं की स्मृति तनिक भी साथ नहीं दे रही हो। हम शिलालेख पर हाथ फेरते रहे। वह युग बहुत पीछे छूट गया था जब देवानां प्रिय के आदेश पर उनकी राजाज्ञा का प्रत्येक शब्द ब्राह्मी लिपि में पत्थर पर छेनी से अंकित किया गया था। हम सारा ब्राह्मी लिपि से अनभिज्ञ थे। वह पुस्तक भुवनेश्वर में छूट गई थी जिसमें अशोक की राजाज्ञाओं का देवनागरी लिप्यान्तर और अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध था।

मुझे शिलालेख पर हाथ फेरते देखकर वह उड़िया युवक बोला, "श्रीमान् यहाँ हर रविवार को बहुत-से लोग आते हैं पर यहाँ आकर कोई भी यह नहीं पढ़ पाता।"

धौलगिरि के कारण यह गाँव धौली कहलाता है। धौलगिरि कोई बहुत ऊँची पहाड़ी नहीं है। इस पर वन की भरमार है जो अपने मौसम में तीस चालीस फुट ऊँचा उठ जाता है। पहाड़ी के चरण-स्थल में एक शिव मन्दिर अच्छी अवस्था में है जिसका द्वार उत्तर दिशा में खुलता है। पर धौलगिरि के शिखर स्थित मन्दिर तो थोड़ा-सा ही बचा रह गया है। उसे परजीवी पेड़ों ने नष्ट कर डाला। रथ बाबू कह रहे थे बहुत-से

टूरिस्ट तो हमारे विभाग से अश्वत्थामा का फोटो लेकर ही धौली आने के झमेले से बच जाते हैं। उन्हें बताना पडता है कि अश्वत्थामा तक जाप के योग्य सड़क नहीं है। मैं स्वय भी तो पहली बार धौली आया हूँ।

जोगीजी बोले, 'फोटोग्राफी से तो काम नहीं चलेगा। उपन्यासकार को तो चित्रकार वाली दृष्टि रखनी होगी। और देखिए उपन्यास तो जगन्नाथ का रथ है जिसे बहुत से प्राणी मिलकर खींचते हैं।'

धौलगिरि के शिखर पर हमें नीचे बहती दया नदी का दृश्य बहुत सुन्दर लगा। पर गाँव में पहुँचे तो जोगीजी को यह बहुत ही छोटा प्रतीत हुआ। मैंने कहा यहां कल्पना से नई बस्ती बसानी होगी।'

गाँव में कई जगह लोगों ने कहा कि यही रात गुजारें। एक वयोवृद्ध सज्जन बोले "हमारा महाभाग्य, जो आप पधारे! कहाँ दिल्ली कहाँ धौली!'

हमारे दायें हाथ अमराई से इधर काम-कुञ्ज भला लग रहा था बायें हाथ पहले केवड़े के पौधे आये, फिर नागफनी की कतार। ऐसा लग रहा था मानो नाल कृश गाव के प्रहरी बने खड़े हों। रथ बाबू कह रहे थे 'नारियल यहाँ नहीं हैं, सागर दूर है, और नारियल के लिए चाहिए रेतीली जमीन।

हम दया नदी के पुल की ओर जा रहे थे। पीछे मुड़कर गाँव पर नजर डाली तो सूर्यास्त के कारण गगन रक्ताभ हो उठा था। आगे कुछ मछुआरे जाल उठाये आ रहे थे। वे न जाने किस प्रसग पर हँस रहे थे। जोगीजी बोले 'लगता है बहुत मछलियाँ हाथ लगी हैं। दया नदी तो इन पर दयावान होगी ही।"

आज भी लगता है मछुआरों की टोली जाल उठाये धौली की ओर जा रही है और उड़िया गीत की स्वर-लहरी थिरक रही है जैसे दूर से गाँव के मन्दिर से आती आरती के घण्टे की आवाज उस गीत में ताल दे रही हो। और जैसे गीत का यह बोल आज भी उत्तर न पा सका हो—मछली ओ री मछली, तेरी माई कहाँ गई ? जाल देखकर कहाँ जा छिप

तन गूंगे-बहरे प्राण ?

और कथा की मछली भी मछुआरे के जाल में नहीं आ रही थी।

धौली से लौटकर बहुत दिन तो यही मुश्किल रहा कि धौली का बाह्य रूप ही सामने आने लगता। मुझे कथा पर कल्पना के रंग उभारने के लिए नई जमीन चाहिए थी। कभी मैं सोचता—धौली की तीसरी यात्रा की ही क्यों ? मन से पूछता—आखिर मैं क्या लाया ?

जहाँ भी बैठता कथा के पात्र बनने मिटने लगते। कई बार लगता जाल भारी हो रहा है। निकालता तो पानी निकल जाता और मछलियों के स्थान न होते जैसे जाल फट गया हो। पुराने जाल की मरम्मत पर ही जैसे घण्टों बीत जाते। सोचता—कथा क्या बस कथा ही होती है ? पत्थर देवता का रूप कम होता है ? कभी ऐसा प्रतीत होता कि जिस उर्वशी के चक्कर में हूँ उसकी तो हड्डियाँ भी स्वर्ग में ही मिलें ना मिलें। केवड़े के फूल याद आते जो काँटों और पत्तों में छिप छिप सुगन्ध बिखेरते हैं। रात में केवड़े की बात कहने वाली हवा तो बहुत पीछे रह गई थी। कहाँ धौली कहाँ दिल्ली !

फिर देखा यह दूरी ही वरदान बनती जा रही है।

मन को समझाया—परन्तु इस दूरी से लाभ उठा ! अनुभव के बिना कथा रचना हो सकती ! विषय की निकटता हमें किसी उपन्यास की प्रेरणा तो दे सकती है पर उसकी पूर्ति के लिए अपेक्षा के बिना काम नहीं चलता। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता कि मन्दिर के अधेरे कोने में टार्च की रोशनी डालकर कोई खोई हुई वस्तु ढूँढ रहा हूँ। सपने में कोणार्क का सूर्य मन्दिर गतिमान प्रतीत होता। फिर यह आग्रह भी छोड़ना पड़ा कि पात्रों का मूल्यांकन अपने आकार के अनुसार ही किया जाए। कोई-कोई पात्र तो कद फैलाकर मानो धरती और आकाश को एक साथ समेटने की चेष्टा करने लगता। यह था एक साधक का नया जागा। वही लोक-गायक वाली बात कि जब मन का पंछी गाने लगे तो ताला नहीं बस चुपके चुपके गान सुनो।

पुरी के वयोवृद्ध मूर्तिकार अपरति महापात्र की याद ता बहुत बार आई। व पुरी की जिस मूर्तिशाला म काम कर रहे थ वह पुरी क गवनमट एम्पोरियम की ओर स चलाई जा रही थी। अपरति दादा न अपना बात जमी भाषा म कही, मैंने उन्ही के शब्दा म उस हू-ब-हू डायरी म उतार लिया था।

अपनी बात आरम्भ करत हुए अपरति महापात्र बोले, 'अभी हमका चौसठ हो गया। बाबा भी एई काम करता है और लडका हरिहर भी। इ बठा है हरिहर। एक और ठो लडका है घर म—भास्कर।'

मैंने कहा 'यह पत्थर कहा से आया, दादा?'

ए पत्थर दिल्ली से आया। आफिसर बाबू लाया। अपरति महापात्र ने छनी के ताल पर उत्तर दिया।

मैंने कहा "दिल्ली का पत्थर क्या लात ह?

'जो आफिसर बाबू मँगवा दिया' अपरति महापात्र न हँसकर कहा 'दिल्ली का पत्थर बहुत 'टाण' [कडा] होता है।' और फिर वे गम्भीर होकर बोले, 'नारायणगढ [पुरी जिला] का लाल पत्थर कमता टाण है। इसमे सफेद टिपटिप' [धब्बा] बहुत है। दिल्ली का पत्थर म सफेद टिपटिप नही होता। आ एक जात ह, एक बराबर है।"

मैंने कहा, 'दादा, यह लाल पत्थर दिल्ली का नहा, जयपुर का ह। खर आप लोगा का कोई कठिनाई तो नही है?'

अपरति महापात्र ने मेरी ओर बडी पनी दृष्टि स दखा। थाडी खामाशी के बाद बोले छ-सात वष हुआ, सरकार ए डिपाटमट खोल लिया। पहले हम लोग बाजार म मूर्ति दता था। कोई-काई का ऑडर हाता था। आग काम भी कम था, पत्थर का दाम भी कम था। मजूरी भी कम था। अभी तो मँहगाई बहुत हो गया। चार रुपया, पाँच रुपया रोज का मिलता ह फिर भी गुजर नही हाता। एई सरकारी एम्पोरियम म भी काम हाता है और पुरी का पाथुरिया साही [गली] म घर पर भी काम करता है कारी गर लोग। हमारे उडीसा म पत्थर का काम मरन नही सकता। महाप्रभु की

दया है।

"मूर्ति की कीमत कैसे आँकते हैं दादा?" मैंने पूछ लिया।

बीस इंच ऊँची मूर्ति के लिए पत्थर का हो गया दस रुपया। अपरति महापात्र हिसाब बताने लगे बीस दिन में मूर्ति बनेगा। उसका सौ रुपया। सौ और दस, एक सौ दस। अपना काम तो नहीं है सरकार का काम करते हैं। ग्यारह बजे आना पाँच बजे चला जाता।

'घर में करने से एक सौ दस वाली मूर्ति कितने में मिलेगी दादा?'

दस का पत्थर सत्तर मजूरी। अस्सी में देगा।

मैंने कहा जानते हैं दादा! यहाँ एम्पोरियम में एक सौ दस में मिलने वाली मूर्ति दिल्ली पहुँचने पर डेढ़ सौ की हो जाएगी।

अपरति महापात्र हाथ की मूर्ति पर छेनी चलाते हुए बोले, हम क्या करेगा, बाबू? अपना काम तो नहीं है, सरकार का काम है।

मैंने प्रसंग बदलकर कहा 'एक बात पूछूँ दादा? आपके बाप-दादे तो मन से मूर्ति गढ़ते थे और आप केवल पुरानी मूर्ति का फोटो देखकर पत्थर में उसकी नकल उतारते ही छुट्टी पा जाते हैं।

अपरति महापात्र को जैसे मेरी बात चुभ गई। बोले हमारे पास यह सोचने का समय नहीं रहता। आफिसर बाबू का हुकम है। आफिसर बाबू बोलता—ए कलकत्ता का ऑर्डर आया ए बम्बई का मद्रास का बनारस का दिल्ली का। हमको तो हुकम नहीं कि मन से बनाओ। मन का ऑर्डर होगा तो वह भी बनाने सकता। पर मन का ऑर्डर होने से पहले पेट का ऑर्डर हो जाता है। विकट समस्या है बाबू!

मैंने कहा सुनते हैं न दादा कि पत्थर में ब्रह्मा प्राण डाल देते हैं। इसका क्या मतलब?

अपरति महापात्र गम्भीर होकर बोले मन-माफिक काम होने से मूर्ति में प्राण आने सकता। जैसा कारीगर होगा वैसा प्राण डालेगा। ब्रह्मा कहाँ से आ गया? पाथुरिया ही मूर्ति का ब्रह्मा है।

फिर हम चुप हो गए जैसे हमारे सब प्रश्नोत्तर खत्म हो गए। इतने

मे अपरति के पुत्र हरिहर ने अपनी बात छेड दी, 'कभी-कभी कारीगर से काम करते समय, मूर्ति भाँग जाता है बाबू ! भागा हुआ मूर्ति बहुत पडा है।

मैंने कहा, "टूटी हुई मूर्ति को तो निर्जीव समझो। उसमे प्राण कहाँ से पडेंगे ! यह बताओ, मूर्ति टूटने से आफिसर बाबू नाराज तो नही होते हैं ?

हरिहर ने मुह बनाकर कहा, हमारा मेहनत गया, बाबू का पत्थर गया। बाबू का नाराज होने का तो कोनो मतलब नहा।"

अपरति ने हरिहर को डाँटते हुए कहा ऐसा बात क्या बोलता है हरिहर ? अरे हम इससे भा जायेगा !" और फिर उसने छनी हथौडी रखकर आकाश की ओर हाथ उठाते हुए कहा, महाप्रभु ! जगन्नाथ स्वामी ! नयन-पथ गामी !'

इस बात को बहुत दिन हो गए। आज भी जैसे अपरति महापात्र की आवाज कान मे आ रही हो— 'मन-माफिक काम होने से पत्थर मे प्राण आने सकता। "

अपरति महापात्र ने बताया था कि उडीसा के श्यामवर्ण 'मुगनी पत्थर का अपना स्वभाव है, जिसे समझे बिना उसे ठीक माध्यम नही बनाया जा सकता। उन्होने शिकायत की थी कि आज के पाथुरिया अपने बाप-दादा की अनुभूति के उत्तराधिकारी नही रहे। साथ ही उन्होने कला प्रेमियो की भी शिकायत की थी जो अपना ऑर्डर भेजते समय किसी-न किसी पुरानी मूर्ति की अनुकृति की ही माग करते हैं और वे मूर्तिकला की प्रगति मे तनिक भी बढावा नही देते। और जब मैंने कहा, 'क्या आफिसर बाबू ऐसी मूर्तिया बनाने की छूट नही दे सकते, जिनमे नई कल्पना, अनुभूति और सवेदना को स्थान मिल सके ?" तो वे बोले, 'यह आप बोलो आफिसर बाबू से कि मन माफिक मूर्ति होने से ही उसमे प्राण आ सकते हैं।

सोचता हू यह उपन्यास तो ठीक मन माफिक लिखा जा सका है। भले ही कई बार पत्थर टूटा और नया मुगनी पत्थर लेना पडा। अब ऐसा लगता है कि मैंने न किसी आफिसर बाबू का पत्थर खराब किया और न

मूर्ति बिगड़ती थी। चलो आज यह मूर्ति सम्पूर्ण हुई।

मैंने सोचा अपरिचित लाल जयपुरिया पत्थर से उड़ीसा की मूर्ति बना सकते हैं तो मैं उड़ीसा से बाहर की भाषा में उड़ीसा की कथा क्यों नहीं लिख सकता?

कथा तभी कथा है जब वह उपत्ताविरण की वाणी बने और हर कथा अपनी भाषा और विचारधारा अपने साथ लाती है। आप भी चाहें तो धौली के वयोवृद्ध मूर्तिकार चतुर्मुख की तरह अश्वत्थामा के शिलालेख पर हाथ फेरते हुए कह सकते हैं: हे सम्राट कलिंग के युद्ध में लाखों प्राणियों को मौत के घाट उतारकर आपको जिस अहिंसा और शान्ति के अपनी बनने की बात सूझी वह क्या युद्ध से पहले नहीं सूझ सकती थी? तब तो इसका श्रेय आप ही को जाता। अब तो इस श्रेय के भागी वे लोग हैं जो मर गए। इस शिलालेख को तो आप ही ने महत्त्व दिया। पर इसकी महत्ता से तो आपको महान् होने का भ्रम न होना चाहिए।

चतुर्मुख के पीछे शताब्दियों की कला और संस्कृति का वरदान है। पर वे परम्परा की चट्टान से भी नूतन कल्पना अनुभूति और संवेदना से तराशने की क्षमता रखते हैं। वे धौली की पाथुरिया गली को कभी नहीं छोड़ सकते। धौली एक छोटा-सा गाँव ही सही पर उसकी पाथुरिया गली में किसी नीलकण्ठ और रूपम के आने की सम्भावना तो बनी ही रहेगी।

धौली की मूर्तिशाला में तो वही मूर्ति बनेगी जिसमें आज के श्रद्धा प्राण डाल सकें और जिसके सहारे जगन्नाथ का रथ आगे बढ़ेगा।

'कल्पना'

५ सी/८६ राजेन्द्र नगर नई दिल्ली —देवेन्द्र सत्यार्थी

१४ सितम्बर १९८०



सकल्प

मूर्ति बिगड़ने लगी। चलो आज यह मूर्ति सम्पूर्ण हुई।

मैंने सोचा अगर लेखक लोग जयपुरिया पत्थर से उड़ीसा की मूर्ति बना सकते हैं तो मैं उड़ीसा से बाहर की भाषा में उड़ीसा की कथा क्यों नहीं लिख सकता?

कथा तभी कथा है जब वह उत्तरीकरण की वाणी बने और हर कथा अपनी भाषा और विचारधारा अपने साथ लाती है। आप भी चाहें तो धौली के वयोवृद्ध मूर्तिकार चतुर्मुख की तरह अश्वत्थामा के शिलालेख पर हाथ फेरते हुए कह सकते हैं कि सम्राट कलिंग के युद्ध में लाखों प्राणियों को मौत के घाट उतारकर आपको जिस अहिंसा और शान्ति के बनो बनने की बात सूझी वह क्या युद्ध से पहले नहीं सूझ सकती थी? तब तो इसका श्रेय आप ही को जाता। अब तो इस श्रेय के भागी वे लोग हैं जो मर गए। इस शिलालेख को तो आप ही ने महत्त्व दिया। पर इसकी महत्ता से तो आपके महान् होने का भ्रम न होना चाहिए।

चतुर्मुख के पीछे शताब्दियों की कला और संस्कृति का वरदान है। पर वे परम्परा की चट्टान को भी नूतन कल्पना, अनुभूति और संवेदना से तराशने की क्षमता रखते हैं। वे धौली की पाथुरिया गली को कभी नहीं छोड़ सकते। धौली एक छोटा-सा गाँव हो सही, पर उसकी पाथुरिया गली में शिल्प-लावण्य और रूपमय के ध्यान की सम्भावना तो बनी ही रहेगी।

धौली की मूर्तिशाला में तो वही मूर्ति बनेगी जिसमें आज के ब्रह्मा प्राण डाल सकें और जिसके सहारे जगन्नाथ का रथ आगे बढ़ेगा।

'कल्पना'

५ सी / ८६ रामेश नगर, नई दिल्ली —देवेन्द्र सत्यार्थी

१४ सितम्बर १९६०

मूर्तिशाला म छोटा-बडी तान-था स ऊपर मूर्तियाँ पडी है। इनम कई अधिक मूर्तियाँ गाहक ल गए। खिडकियाँ खुली हैं। छेना का ठक-ठक म गुरु शिष्य की बात बन्द नहीं होती। मूर्तियो पर धूल की तह जमता चला ग‍। यहा-वहीं मकडी के जाल मुँह विछा रह हैं। यह सब देखकर चतुमग मन ही-मन हसते हैं कि धूल और मकडी को यहा जगह प्रिय है। मूर्तिशाला की सफाई से भी कहा अधिक नई मूर्ति की तराश का ध्यान रहता है। कितनी ही सफाइ करा धूल आ जमती है, और मकडी भी जिद नहीं छोडती।

जिन मूर्तियो का गाहक ले गए उनकी याद सताती है। चतुमुग बोले 'मरी मूर्तियाँ जहाँ भी हैं प्रसन्न रह।'

"आजकल तो आप मूर्ति बेचन ही नहीं गुरुदेव!" रूपक मुस्कराया 'मूर्ति-पर मूर्ति चढता चली जाता है और मूर्तियो पर धूल की तह। मूर्ति बेचना ही ठीक है। पसा आय ता क्या बुरा है गुरुदेव?

'अरे थोडी जमीन है अपनी। दाल भात चल जाता है। फिर क्या चिन्ता कर? मूर्ति वस ही गढा जाना है जस शिशु मा के गर्भ म शारीरिक रूप धारण करता है। इसलिए मूर्ति बचने दुःख होता है। नीलकण्ठ को ध्यान दो। मैं कहूँगा, अब तो तुम लोगो का युग है। उन्नासी बरस उमर भाग चुका। यम ही न्तन दिन बैठा रह गया। अब तो मुझे चल दना चाहिए।'

ऐसा मत कहो गुरुदेव! म कहता हूँ हमारी उमर भी आपको लग जाए।

"अब तो जाना ही होगा, बटा! बस जरा नीलकण्ठ आकर त्रिमूर्ति पूरा कर दे।

'नहा गुरुदेव! आपकी कीर्ति तो अभी दूर-दूर फलेगी।"

'कीर्ति की भी भली कही, बटा! जस एक नाम अपजस अठारह नाम। *कीर्ति सिकुडकर जितनी छोटी हो सकती है फिर फैलकर जितनी बडी! कला तो* वही है जो जागृत होकर मूर्तिमान् हो उठे जिसम हमारी खोज अनुभव लकर

पन्‍ना और वह उत्तर की प्रतीक्षा किय बिना अन्‍दर चना गया।

मुगनी पत्थर की बनी हुई है मूर्तिशाला। पूरब की ओर द्वार है। उत्तर ओर दक्षिण म खिडकियां खुलती हैं। सामन बरामदा है। बरामदे क आग बगिया जिसम सिचाई क लिए कुआँ मौजूद है। बगिया की दीवार नारायणगढ के लाल पत्थर की है। उस पर द्वार के दोनो ओर गस लाला क दृश्य अंकित ह।

द्वार पर खड-खड चतुमुख चश्म के पीछ घूरती आंखो स काई सात सागर तरह नदियाँ पार की खबर ढूंढ रहे हैं। मन मूर्ति म रमा है जिस पर आज काम करना है।

पास से गुजरत हुए जागरी न कहा खबर कागज म नीलकण्ठ की खबर नहीं मिलगी बाबा!

तुम किधर चले जागरी? चतुमुख मुस्कराय अच्छा जाओ। भुवनेश्वर क यात्री ही तुम्हारे अन्नदाता है। जाओ हा आओ भुवनेश्वर!'

आज तो मेरा छुट्टी है बाबा! जागरी न गांज का दम लगाकर कहा आज तो आपका सत्सग करगा। वद्यजी क पास हा आऊ जरा। उन्होन बुलाया था।

जागरा चला गया। चतुमुख न उत्तरी छोर वाली चट्टान की ओर दखकर दक्षिणी छोर वाला चट्टान पर नजरें जमा दी जिस पर किसी समय उनक मामा केलू काका न ब्रह्मा की मूर्ति बनाई थी और स्वय उन्होंने विष्णु की मूर्ति बनाकर त्रिमूर्ति की ओर दूसरा कदम उठाया था। उनक मन की एक एक धडकन गुनगुना उठी—महादेव की मूर्ति बनन पर त्रिमूर्ति पूरी हो जाएगी। नीलकण्ठ विलायत स लौटकर त्रिमूर्ति का सपना पूरा करेगा। मूर्तिशाला क भीतर आकर चतुमुख न अखबार परे रख दिया और बाहर फैली हुई धूप की ओर दखकर बोले, जाड की धूप का रग ऐसा है जसा बल की ब्याई गाय का दूध।'

हाँ, गुरुदेव! रूपा मुस्कराया कभी ही पीली पीली-सा है जाड की धूप।

मूर्तिशाला में छोटी-बड़ी तीन-सौ से ऊपर मूर्तियाँ पड़ी हैं। इनसे कहीं अधिक मूर्तियाँ गाहक ले गए। खिड़कियाँ खुली हैं। छैनी की ठक-ठक में गुरु शिष्य की बात बन्द नहीं होती। मूर्तियों पर धूल की तह जमती चली गई। कहीं कहीं मकड़ी के जाले मुह चिढ़ा रहे हैं। यह सब देखकर चतुर्मुख मन ही-मन हँसते हैं कि धूल और मकड़ी को यही जगह प्रिय है। मूर्तिशाला की सफाई से भी कहीं अधिक नई मूर्ति की तराश का ध्यान रहता है। कितनी ही सफाई करो धूल आ जमती है और मकड़ी भी जिद नहीं छोड़ती।

जिन मूर्तियों को गाहक ले गए उनकी याद सताती है। चतुर्मुख वाले मेरी मूर्तियाँ जहाँ भी हैं प्रसन्न रहें।"

"आजकल तो आप मूर्ति बेचते ही नहीं गुरुदेव!" रूपक मुस्कराया, "मूर्ति पर मूर्ति चढ़ती चली जाती है और मूर्तियों पर धूल की तह। मूर्ति बेचना ही ठीक है। पैसा आय तो क्या बुरा है गुरुदेव?"

"अरे थोड़ी जमीन है अपनी। दाल भात चल जाता है। फिर क्या चिन्ता करें? मूर्ति कम ही गढ़ी जाती है जैसे शिशु माँ के गर्भ में धीरे धीरे रूप धारण करता है। इसलिए मूर्ति बेचते दुख होता है। नीलकण्ठ की बात दो। मैं कहूँगा अब तो तुम लोगों का युग है। उन्नासी बरस उमर भोग चुका। ऐसे ही इतने दिन बैठा रह गया। अब तो मुझे चल देना चाहिए।"

"ऐसा मत कहो गुरुदेव! मैं कहता हूँ हमारी उमर भी आपको लग जाए।"

"अब तो जाना ही होगा बेटा! बस जरा नीलकण्ठ आकर त्रिमूर्ति पूरी कर दे।"

"नहीं गुरुदेव! आपकी कीर्ति तो अभी दूर-दूर फैलेगी।"

"कीर्ति की भी भली कही, बेटा! जस एक कोस, अपजस अठारह कोस। कीर्ति सिकुड़कर कितनी छोटी हो सकती है, पर कर कितनी बड़ी! कला तो वही है जो जागृत होकर मूर्तिमान् हो उठे जिसमें हमारी खोज अनुभव लेकर

आगे बढ़े । पत्थर पर छेनी चलती है जैसे मन अपना रचता है चुपके चुपके । जैसे दूर में बजते घण्टे की आवाज धीमे स्वर में आती है वैसे ही पत्तन के मूर्तिकारों की कथा याद आने लगती है । कीर्ति पर भी कोई क्या भरोसा करेगा ? आज है कल नहीं । समय कीर्ति-कथा को क्षीण करता चला जाता है । कितने मूर्तिकार आये और चले गये । हम किस-किसको याद हैं ? काल-देवता तो बहुत-सी कला-कृतियों को भी समेट लेते हैं ।'

'पर कला की महान् कृतियाँ तो कथा कहने को शेष रह जाती हैं, गुरुदेव !'

अरे बेटा, गुड़ की मिठास मुँह तक ही रहती है ।

पर आप ही तो कहा करते हैं कथा दूर तक जाती है ।

'अरे बेटा, कितने ही लोग आये और गये । कुछ कहावतों में गुम हो गए, कुछ पहेलियों में पन्ना बन गए । सबने बचपन में उड़ते हंसों का खेल देखा । सबने रेत के घर बनाये । सबने मछली से पूछा—बोल मेरी मछली कित्ता पानी ? सबने कला की गहराई में उतरना चाहा । बेटा, अनेक कथाएँ मिलती हैं अनेक दिशाओं से आकर, जैसे एक ही कथा में सब कथाएँ मुखरित होना चाहती हों ।

गली के उत्तरी छोर वाली चट्टान से कौशल्या पुष्करी की पक्की सीढ़ियों वाला घाट पास पड़ता है । इस चट्टान की अधूरी नारी-मूर्ति की रेखाएँ किसी सिद्धहस्त शिल्पी की याद दिलाती हैं । कहते हैं कोणार्क के महाशिल्पी विशु ने जीवन के अवसान काल में यौवन की प्रतिमा की छवि अंकित करते प्राण त्याग दिए थे । आधी रात के बाद ठक-ठक सुनाई देती है जैसे मूर्तिकार का प्रेत आकर छेनी चला रहा हो । पर अधूरी मूर्ति चिरकाल से वैसी-की-वैसी चली आ रही है । पूरी होने के लक्षण नहीं दीखते ।

मनु काका ने किसी यात्री से माईकेल एंजेलो की यह सूक्ति सुन रखी थी 'पत्थर में मूर्ति तो प्रकृति ने ही बना रखी होती है मूर्तिकार तो बस अपनी छेनी द्वारा अनावश्यक अंश छाँटकर मूर्ति का निरावरण कर देता है ।

इसी से प्रेरणा लेकर ब्रह्मा की मूर्ति बनायी गई। इसी से विष्णु की मूर्ति बनी।

चतुर्मुख का जन्म मयूरभंज में हुआ। वह तो चरम के थे जब उनके पिता मूर्तिकार उपेन मारे गए। महाराज से उपेन की ठन गई थी। महाराज उनकी बनायी हुई नटराज की मूर्ति मांगते थे। उपेन ने गड्ढा खोदकर मूर्ति छिपा दी। महाराज के आदमी आये और मूर्ति का पता न बताने पर उपेन की बहुत पिटाई की। मूर्ति तो न मिली, पर उपेन की मृत्यु हो गई। फिर धौली से केनू काका बहन और भानजे को लिवाने आये तो जाते समय उदारतापूर्वक वह मूर्ति महाराज को देते आए।

सत्तर बरस पहले की वह घटना चतुर्मुख के मन पर अंकित है।

भुवनेश्वर से दो-ढाई कोस होगा धौली। पास से दया नदी बहती है। जो लोग भुवनेश्वर आते हैं धौली की यात्रा अवश्य करते हैं।

दूर से सुन्दर दीखता है धौलगिरि के शिखर वाला मन्दिर। उसके खण्डहर ही शेष रह गए हैं।

धौली की शोभा हैं ताल गाछ जैसे सभा की शोभा पंच परमेश्वर होता है और गोठ की शोभा दुधारू गाय। बंधु को सुन्दर बनाती है दूरी जैसे सागर-तट की शोभा है लहरों का आलिंगन।

धौलगिरि के चरण-स्थल से आध से आध एक कोस हटकर ऊँची जगह पर स्थित है अश्वत्थामा चट्टान, जिसके ऊपरी सिर पर हाथी का मस्तक बना है, और नीचे इस ढलान से समतल करके कलिंग की हार होने पर अशोक ने राजाज्ञा अंकित कराई थी।

"असली धौलगिरि तो नेपाल में है, छब्बीस हजार फुट से भी ऊँचा!" कोई-कोई यात्री कह उठता है, "यह दो-तीन सौ फुट ऊँची पहाड़ी किधर का धौलगिरि है!"

धौली वाले यही उत्तर देते हैं, "हमारी पहाड़ी का नाम तो अशोक से भी पहले का है।"

चतुर्मुख समझाते हैं "अश्वत्थामा का हाथी मुख बुद्ध का प्रतीक है।

आग बन । पत्थर पर छेनी चलती है जैसे मन सपना देखता है चुपके चुपके । जैसे दूर से बजते घण्टे की आवाज धीमे स्वर में आती है, वैसे ही पहले के मूर्तिकारों की कथा याद आने लगती है । कीर्ति पर भी कोई क्या भरोसा करेगा ? आज है कल नहीं । समय कीर्ति-कथा को क्षीण करता चला जाता है । कितने मूर्तिकार आये और चले गये । हमें किस किसकी याद है ? काल-देवता तो बहुत-सी कला-कृतियों को भी समेट लेते हैं ।

'पर कला की महान् कृतियाँ तो कथा कहने को शेष रह जाती हैं गुरुदेव !'

अरे बेटा गुड़ की मिठास मुंह तक ही रहती है ।

पर आप ही तो कहा करते हैं कथा दूर तक जाती है ।

'अरे बेटा कितने ही लोग आये और गये । कुछ कहावतों में गुम हो गए कुछ पहेलियों में पहेली बन गए । सबने बचपन में उड़ते हंसों का मेल सुना । सबने रेत के घर बनाये । सबने मछली से पूछा—बोल मेरी मछली कितना पानी ? सबने कला की गहराई में उतरना चाहा । बेटा अनेक कथाएं मिलती हैं अनेक दिशाओं से आकर जैसे एक ही कथा में सब कथाएं गुम्फित होना चाहती हों ।'

गली के उत्तरी द्वार वाली चट्टान से कौशल्या पुखरी का पक्का मोन्दिया वाला घाट पास पड़ता है । इस चट्टान की अधूरी नारी-मूर्ति की रेखाएँ किसी सिद्धहस्त शिल्पी की याद दिलाती हैं । कहते हैं कोणार्क के महा-शिल्पी बिशु ने जीवन के अवसान काल में यौवन की प्रेयसी की छवि अंकित करते प्राण त्याग दिए थे । आधी रात के बाद ठक ठक सुनाई देती है जैसे मूर्तिकार का प्रेत आकर छेनी चला रहा हो । पर अधूरी मूर्ति चिरकाल से वैसी-की-वैसी चली आ रही है । पूरा होने के लक्षण नहीं दीखते ।

बंसू काका ने किसी यात्री से माईकेल एंजेलो की यह सूक्ति सुन रखी थी पत्थर में मूर्ति तो प्रकृति ने ही बना रखी होती है, मूर्तिकार तो बस अपनी छेनी द्वारा अनावश्यक भाग छीलकर मूर्ति को निरावरण कर देता है ।

इसी से प्रेरणा लेकर ब्रह्मा की मूर्ति बनायी गई। इसी से विष्णु की मूर्ति बनी।

चतुर्मुख का जन्म मयूरभंज में हुआ। वह ना वर्ष के थे जब उनके पिता मूर्तिकार उपेन मारे गए। महाराज से उपेन की ठन गई थी। महाराज उनकी बनायी हुई नटराज की मूर्ति माँगते थे। उपेन ने गड्ढा खोदकर मूर्ति छिपा दी। महाराज के आदमी आये और मूर्ति का पता न बताने पर उपेन की बहुत पिटाई की। मूर्ति तो न मिली, पर उपेन की मृत्यु हो गई। फिर धौली से मैलू मामा बहन और भानजे को लिवाने आये तो जाते समय उदारतापूर्वक वह मूर्ति महाराज को देने आए।

सत्तर बरस पहले की वह घटना चतुर्मुख के मन पर अंकित है।

भुवनेश्वर से दो-ढाई कोस होगा धौली। पास से दया नदी बहती है। जो लोग भुवनेश्वर आते हैं, धौली की यात्रा अवश्य करते हैं।

दूर से सुन्दर दीखता है धौलगिरि के शिखर वाला मन्दिर। उसके खण्डहर ही शेष रह गए हैं।

धौली की शोभा हैं ताल गाछ, जैसे सभा की शोभा पंच परमेश्वर होता है और गोठ की शोभा दुधारू गाय। वधु को सुन्दर बनाती है दूरी जैसे सागर-तट की शोभा है लहरों का आलिंगन।

धौलगिरि के चरण-स्थल में गांव से थोड़ा एक कोस हटकर, ऊंची जगह पर स्थित है अश्वत्थामा चट्टान, जिसके ऊपरी सिरे पर हाथी का मस्तक बना है, और नीचे इसे छेनी से समतल करके कलिंग की हार होने पर अशोक ने राजाज्ञा अंकित कराई थी।

असली धौलगिरि तो नेपाल में है छब्बीस हजार फुट से भी ऊंचा!" कोई-कोई यात्री कह उठता है, 'यह दो-तीन सौ फुट ऊँची पहाड़ी किधर का धौलगिरि है!"

धौली वाले यहां उत्तर देते हैं, हमारी पहाड़ी का नाम तो अशोक से भी पहले का है।"

चतुर्मुख समझाते हैं अश्वत्थामा का हाथी मुख बुद्ध का प्रतीक है।

'तुम किधर के खारवेल हो जी !' जागरी हँस पड़ी।

धौली से दूर नहीं भुवनेश्वर से आगे वाली उदयगिरि की हाथी गुम्फा, जिसके द्वार पर खारवेल का लेख अंकित है। मगध के दाँत दो बार खट्टे करके कलिंग-नरेश खारवेल ने अशोक की सन्तान से कलिंग का बदला लिया था। कलिंग की जय पराजय की कहानी विस्मृति के गर्भ में होती हुई जीवन से बहुत दूर जा पड़ी है।

बाबा तरंग में आकर ढोलकी की ताल पर गाने लगे

जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सूनल स्रुति पथ परस न भेल।
कत मधु-जामिनि रभस गमाओल न बूझल कइसन केलि।
लाख लाख जुग हिय हिय राखल तओ हिय जुड़ल न गेलि।

जागरी बोली, 'विद्यापति की रसिकता छोड़ो बाबा ! इस समय तो यह बताओ कि क्या नीलकण्ठ धौली में आकर बसेगा ? कलकत्ते में उसकी माँ है। वहाँ नीलकण्ठ का काम भी अच्छा चल सकता है।'

"कलकत्ते में उसकी माँ है तो यहाँ उसकी दादी और बहन है। बाबा ने चिढ़कर कहा, 'कलकत्ता तो कल पैदा हुआ है और धौली कलिंग के साथ पहले से है। यही उस युग की राजधानी रही होगी।'

'कोई तोपली भी कौनसी दुधारू गाय बनेगी हमारे लिए ? दाना तो पैसे से है बाबा ! धौली में तो कई-कई दिन ठनठन गोपाल रहना है।'

'यह पैसे वाली बात तो गले नहीं उतरती जागरी ! पैसा बुरा नहीं, पर पैसा ही सब-कुछ नहीं।'

'पर जरूरत तो पूरी होनी चाहिए, बाबा !'

बाबा बोले, 'अपना हाथ जगन्नाथ ! हाथ के भरोसे भाग्य नहीं बनता रहा। मेरे भाग्य तो नीलकण्ठ के हाथ में भी पड़ गए होंगे !'

रुस्तम ने धोती पहन रखी है। उसकी खिला-खिली छाती चमकती है। चतुर्भुज ने धोती के साथ बिना बाँहों की बण्डी पहन रखी है। जागरी ने धोती पर कुरता और कुरते पर बण्डी सजाकर गाँव की चिलम में...

रखी है।

चतुर्मुख नतकी की कमर पर छेनी चला रहे हैं। तीन फुट ऊँची मूर्ति पर काम करने के लिए चौकी पर बठना जरूरी है। पत्थर का चूरा रूपक की ओर गिर रहा है जो दायें बठा है। बायें जागरी बठा है, आलथी-पालथी मारे।

"हम धौली का नाम नही बदल सकते, ता धौली की पाथुरिया गली का नाम तो बदल सकते है।" जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा।

'एमा तो हो सकता है। पर सबसे पूछना होगा, बेटा !"

'सब राजी हो जायेंगे। नीलकण्ठ गली कसा नाम रहेगा ?

चतुर्मुख बोले, 'नीलकण्ठ का आना तो मुझे ऐसा लग रहा है, जसे स्वग से उवशी का आगमन।"

"मुझे तो ऐसा लगता है बाबा जसे अधूरी नारी मूर्ति का शिल्पी आज अपना काम पूरा करके छोडगा। और किसी ने सुनी हो या नहीं मैंने तो आधी रात के बाद वाली ठक ठक मे शिल्पी की यह आवाज भी सुनी है—कथा कहो, उवशी !'

रूपक हँस पडा 'नीलकण्ठ काका भी मूर्ति गढते हुए यही कहेंगे—कथा कहो उवशी !'

चतुर्मुख नतकी की कमर पर छेनी रोककर बोले, "आज बात उवशी पर आकर ही रुकती है। तुम्हारा मतलब है कन्ध जाति की जिस कन्या मे विशु का प्रेम हो गया था, उसे उसने उवशी कहकर पुकारा था ?

रूपक ने मुस्कराकर कहा, "कथा कहो, उवशी !"

जागरी ने गाजे के नशे म कहा, बेटा जमूरे, मैं समझ गया। यह नाम स्वग से तरता हुआ आया है। हम आज से पाथुरिया गली को उवशी गली कहेंगे। इस खुशी म गीत सुनो।"

वह गाने लगा

बिखरे मेघा का बादबान बाँध,
वधु तुम किधर चले ?

पिंजरे की चिड़िया पूछ रही
बन्धु, तुम किधर चले ?
नीड़ न टूटे, दिल न जाग
नारी के पंखों पर तिर।
नाव की वेला बीती जाय,
माँझी क्यों बैठा है थिर ?
गगन-मेहराब तले।
बिखरे सपना का यादगार बाँध
बन्धु, तुम किधर चले ?

धनुमुख ढेली चलाते हुए बाने विद्यापति कहते हैं जन्म भर रूप निहारा नयन तृप्त न हुए। माँझी को तो एक ही रात का ताना दिया गया है कि नाव की वेला हो गई और तुम नारी की रूप-माधुरी में खोए जा रहे हो। विद्यापति कहते हैं लाख-लाख युग दिल मे प्यार सजोय रखा दिल न जुड़ सके। एक बात समझ लो। इस रूप-लीला से ही कला जन्म लेती है।"

तो फिर यह दूरी कहाँ से आती है जिसे लाख-लाख युग मिलकर भी नहीं पाट सकते ?

सीमा ही असीम को सौन्दर्य देती है जागो !

हमारी समझ से तो परे है यह भाषा। बाबा, इसीलिए लोग आपकी मूर्तियों को नहीं समझ पाते।'

लोग मुझ तक नहीं पहुँच सकते तो क्या मैं अपना स्थान छोड़कर नीचे उतरूँ ?'

'थोड़ा लोग ऊँचे उठें थोड़ा कलाकार नीचे उतरे। फिर बात बनेगी बाबा !'

'जिनमें दम नहीं वे सीधा और छोटा रास्ता पसन्द करते हैं बेटा ! जिनमें दम है वे लम्बे रास्ते से शिखरों पर चढ़ते हैं। हम कौनसी किसी दफ्तर में हाजिरी देता है ?

"भुवनेश्वर और कोणार्क की कला में काम-लीला का इतना ज़ोर क्या है ? यात्री यह प्रश्न बहुत पूछते हैं जिन्हें मन्दिर दिखाकर मैं चार पैसे वसूल करता हूँ।"

'जब ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की तो उनके मन में एक शंका हुई कि हमारी रची हुई सृष्टि हमारे मार्ग तक पहुँचते पहुँचते कहीं शेष तो नहीं हो जाएगी।

तो ब्रह्मा ने क्या उपाय सोचा बाबा ?'

"वही तो बता रहा हूँ। ब्रह्मा ने सोचा, वह जो असीम या विराट है, जहाँ मनुष्य को पहुँचना है उसके आगे एक आवरण डालना होगा। ब्रह्मा ने काम-लीला का आवरण डाल दिया। अब रचना का क्रम युग-युग तक चलता रहेगा।"

'क्या भुवनेश्वर और कोणार्क की कला भी यही दरसाती है, बाबा ?'

'बेटा, कला में तो एक ही कथा चली आ रही है युग-युग से। बचपन में तुम नीलकण्ठ के साथ बैठकर कथा कहने को कहा करते थे। कथा आदमी को हँसाती है, रुलाती है और गम्भीर भी बनाती है। किस तरह कथा शेष हो जाती है। पर असल बात यह है कि कथा शेष नहीं होती। उर्वशी स्वर्ग से धरती पर उतरी, तो धरती वालों ने स्वर्ग की कथा कहने को कहा, और जब वह दोबारा धरती से स्वर्ग में गई, तो स्वर्ग वालों ने धरती की कथा में उत्सुकता दिखाई होगी। हम जहाँ भी जाते हैं, कथा साथ-साथ चलती है। पर कथा असल में पीछे छूट जाती है। कथा ही शेष रह जाती है।"

'बाबा, धौली में ऐसा कौन है जिसके बारे में एक-न-एक कहानी नहीं गढ़ी गई ?"

'अरे बेटा, कोई घटना घटेगी, तो उसके साथ जुड़े हुए प्राणी की कहानी कैसे नहीं चलेगी ?"

बाबा मुरारी पत्थर की मूर्ति बने खड़े रहे हैं, एकदम सफ़ेद धब्बा वाले लाल पत्थर की।

जागरी ने अपनी जगह से उठकर रूपक की मूर्ति पर नजर जमाते हुए कहा देवयानी के जूडे का फूल खिला हुआ है पर उसका चेहरा क्यों उदास है ?

'वाह बाबा ! रूपक इस घर से वापस स्वर्ग को जा रहा है तो देवयानी कैसे उदास नहीं होगी ?

जागरी ने बाबा की मूर्ति की ओर नजरें जमाकर कहा इस ननकी की रूप-छवि तो अलबीरा से मिलती है। बाबा मेरे मन में एक बात आती है। घोली में बुलके साहब की बेटी अलबीरा से नीलकण्ठ की भेंट हुई, तो रेत के घर बनाते हुए किसे मालूम था कि बडे होकर एक ही जहाज में लन्दन जायेंगे। एक साथ गये थे तो शायद एक साथ ही वापस आयेंगे बाबा !

बाबा ने हाथ लहराकर धीर-गम्भीर स्वर में कहा।

नीलकण्ठ आचरण का सच्चा है। अलबीरा के साथ मेल जोल रखते हुए उसने कुल मर्यादा को नहीं भुलाया होगा।

जागरी चुप खडा रहा।

बाबा ने जागरी की ओर देखा जैसे मछुआरा बीच सागर में घबरा कर दिशा ज्ञान के निमित्त आकाश की ओर देखता है और बादलों के कारण मार्ग-दर्शक नक्षत्र का पता नहीं चल पाता। फिर वे प्रसंग बदल कर बोले

'कई बार मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे साथ बैठे अनेक मूर्तिकार अपनी अपनी मूर्ति गढ रहे हैं। सबकी अपनी अपनी मूर्ति गढनी है। सबकी अपनी अपनी पद्धति है।

और अपनी अपनी कला-कहानी। जागरी ने चोट लगाई।

चतुर्भुज एक विशिष्ट पद्धति के अगुआ परम्परा चलाते आए हैं। उन्होंने प्राय पत्थर को ही माध्यम बनाया है। पश्चात् मिट्टी के रूप में भी उन्होंने कुछ प्रयोग किये हैं।

जागरी बोला देखें नीलकण्ठ आकर किस तरह की मूर्तियाँ बनाता

है। उसकी कला को विलायत की हवा लग गई होगी। परसों एक यात्री कह रहा था, जिसने एक बार लंदन का पानी पी लिया, वह बार-बार लन्दन देखने को ललचाता है।'

'अभी क्या नीलकण्ठ के लन्दन देखने की कसर रह गई, जागरी? अब हम उसे कहीं नहीं जाने देंगे।'

'कोई नौकरी मिल गई तो भी नहीं, बाबा?"

'हमें नौकरी नहीं चाहिए।"

समुद्र यहाँ से काफी दूर है। उधर से आने वाली हवा समुद्र की कथा कह रही है।

रूपक बोला 'छनिया के नाम किसने रखे, गुरुदेव? सज', 'मूना' तागी कैसे-कैसे नाम रख दिए। सबसे छोटी छैनी को ही 'तागी' क्यों कहा गया? नीलकण्ठ काका से पूछेंगे कि तागी' का विलायती नाम क्या है?"

जागरी बोला 'नीलकण्ठ इस समय यहाँ होता तो हवा का नमक चख लेता। आये तो सही, मैं उसकी खबर लूंगा। विलायत जाकर बाबा की मूर्तियों पर लेख अलबीरा ने लिखा, नीलकण्ठ ने क्यों नहीं लिखा?"

बाबा नर्तकी की नाक को 'तागी' से थोड़ा बारीक करते हुए बोले नीलकण्ठ से और जो चाहो कहना। पर यह न कहना, जागरी!"

अच्छा तो बाबा, मैं उससे कहूँगा आज ही त्रिमूर्ति पूरी करने बैठ जाओ।

और गली का नाम कब बदलोगे जागरी काका?" रूपक मुस्कराया।

'यह काम तो आज ही कर छोड़ते हैं।' जागरी ने गांजे का दम लगाया, 'बेटा जमूरे, बस यह समझ लो कि गली का नया नाम पत्थर की छाती चीरता हुआ आया है।'

और हम कलकत्ता कब दिखाओगे जागरी काका?'

'कलकत्ते में ऐसा कौनसा जादू है तेरे लिए?" बाबा ने चिढ़कर कहा। और फिर थोड़ी खामोशी के बाद बोले, "पुराने नाम की जगह

वालती रही। आखिर उसे शेक्सपीयर की शरण लेनी पडी 'जीवन तो निरी चलती-फिरती छाया है, किसी सामान्य अभिनेता की तरह जो यह-वह करते समय पूरा करके मच से चला जाता है और फिर सुनायी नहीं पडता।' 'यह मात्र एक ऐसी कहानी है जिसे कोई पागल मूख सुनाता हो और जिसमे बोल और आवेश तो बहुत हो पर अर्थ और भाव कुछ न हो।' 'अलवीरा तो 'मेकबेथ' पर जान देती है। यही उसकी बाइबल है। जब जहाज चलने म थोडी देर रह गई तो अलवीरा ने आवेश म आकर कहा था

'आज स पाँच सौ बरस बाद भी लोग तुम्हारा नाम लेंगे, जसे कोणाक के महाशिल्पी बिशु की कहानी चलती है। तुम्हारा नाम किसी आर्टिक्ल' के फुट-नोट म नही हैडिंग म सजेगा। तुम्हारी परछाई तुम्हारा पीछा करेगी यह देखने के लिए कि तुमने कस पत्थर म साँसो का सगीत भर दिया। छेनी की सलाह लेना हथौडी को भी पूछना और पत्थर की राय लेने म भी कोई हज न समझना। पत्थर भी भूखा है, उसे प्यार चाहिए। पत्थर को मन की गवाही दने दो। दिन चढता है जसे दीवार पर 'पोस्टर' लगता है पर मूर्ति की बात तो आज के अखबार की हैड लाइन नही है। वह तो सदियो का सपना देखती है।

एक साथ गये थे तो एक साथ ही लौटना चाहिए था। अलवीरा न कहा मैं एक साल और रह जाऊँ। घर म बाबा की चिट्ठी-पर चिट्ठी आ रहा था चलना पडा। जहाज चलने स थोडा पहल अलवीरा बोली मरी आत्मा परछाइ बनकर तुम्हारा पीछा करेगा

लडाई छिड जाने से कुछ सप्ताह पहले ही वह लन्दन स चल पडा था जब हिटलर की पग चाप सुनायी द गई हो। उसने सोचा आजकल सभी अखबार युद्ध की खबरो स भरे रहते हैं अलवीरा बहुत घबरानी होगी।

सवेरा हो। म अभी देर था। वह बाहर अँधेरे म झाँकता रहा भले ही कुछ नजर नहीं आता था।

धीरे धीरे बाहर का दृश्य बदलने लगा। डिब्बे में सोते हुए मुसाफिर जाग उठे। अँधेरे का आँचल छोड़कर उभरती-सी चट्टानें देखकर उसे बाबा की विशाल देह का ध्यान आया। जीवन की चिनगारी! अद्भुत प्राणी! महान् मूर्तिकार!

वह मन से बातें करता रहा कुछ ही क्षण में सवेरा हो जाएगा। सूरज को समय से पहले उगने को कौन कह सकता है?

पास ही किसी ने दियासलाई जलाकर सिगरेट सुलगाई।

कुछ लोग इस बात को लेकर बहस कर रहे थे कि लड़ाई दो ताक़तों में हो रही है। एक सज्जन ने ऐनक में से देखते हुए ज्ञान बघारा "एक ताक़त है जर्मनी का नाज़ीवाद, दूसरी फ्रांस ब्रिटेन का साम्राज्यवाद। श्रीमान् जी, यह लड़ाई तो लम्बी चलेगी। नाटक के बहुत-से परदे खुलेंगे। हिन्दुस्तान अंग्रेज़ों के हाथ से किसी भी समय निकल सकता है।" बात को यहाँ पहुँचाकर उसने सिगरेट का कश खींचा और धुआँ छोड़ा।

फिर किसी ने कहा, 'अंग्रेज़ों के दलाल हैं हमारे राजे महाराजे जो कहते हैं—हमारी जान हाज़िर है।"

ऐनक वाले सज्जन बोले, "अहमदाबाद में पटेल ने भाषण दिया कि जर्मनी आकर बम्बई के बन्दरगाह में दो गोले फेंक दे तो क्या हमारे पास दो पटाखे भी छोड़ने को हैं?"

फिर किसी ने रोना रोया, "हिन्दुस्तान के तीन तरफ़ समुद्र है। मगर हमारा न जहाज़ है, न व्यापार। हमारे हाथ में सत्ता नहीं, हमारा देश हमारे पास नहीं।"

नीलकण्ठ ने अपना स्वर मिलाया 'मिट्टी का लोटा चाक पर चढ़ा है। मालूम नहीं, मटका उतरेगा या मटकी। मगर यह तो अंग्रेज़ भी जानते हैं कि एक दिन हिन्दुस्तान आज़ाद होके रहेगा।'

बाहर का दृश्य अब साफ़ दिखायी देने लगा था। गाड़ी महानदी के पुल से गुज़र रही थी।

नीलकण्ठ ने कुछ पैसे निकालकर दूसरे यात्रियों की देखा-देखी पानी

म पकड़ लिए। श्रद्धा से उसका माथा झुक गया। गाड़ी मुश्किल से पुल के बीच म पहुँची होगी। उसे महानदी से सम्बन्धित पुराना कहावत याद आ गई।

महान्ती महानदी, मन्तापो, यों को विश्वास नाही।' अर्थात् महान्ती [कायस्थ] महानदी और जारज सन्तान, इनका कुछ विश्वास नहीं।

उसने मन ही मन कहा "ये महान्ती लोग तो सरकारी मुन्शी रहे। जो भी सरकार आयी उसी के साथ हो लिये। इनका क्या भरोसा? महानदी में बाढ़ आती है तो इसका भी क्या भरोसा कि किस किसको ले डूबे! और जारज सन्तान का भी कौन विश्वास करेगा?

पुल पीछे छूट गया था। गाड़ी कटक के रेलवे स्टेशन पर रुकी। दोबारा चली तो डिब्बे म अधिक जान आ गई। कुछ नये यात्री आ गए थे।

ऐनक वाले सज्जन ऐनक को नाक की फिन्नी से ऊपर सरकाते हुए बोले "हर रोज दस करोड़ रुपये लड़ाई म खर्च करते हैं दस करोड़!

दूसरे ने कहा 'हमे बहुत दूर तक देखना चाहिए। भले ही हमारी इच्छा के विरुद्ध ही फिरंगी ने हम युद्ध म झोंक दिया है पर समझौते की अब भी गुञ्जाइश है।'

बाहर का दृश्य प्रकाश और रंग के मेल से सजीव हो रहा था।

नीलकण्ठ को धौली के जुलाहों की याद आई। पुराना ऋषि कवि की सूक्ति जो बाबा को बहुत पसन्द था मन के तार हिला गई

सूत के तार कातते समय चमकील रंग का ध्यान करो बिना गाँठ के तार बुनो!

उसने अपने मन से कहा 'वह तो बहुत पहले की बात है। अब तो पश्चिम को पूर्व से गले मिलना चाहिए। उसका ध्यान जेब म पड़े मानचेस्टर के रुमाल की तरफ चला गया।

डिब्बे के एक कोने से आवाज आई जैसे पिंजरे म तोता रहता है, वैसे ही हिन्दुस्तान फिरंगी की मुट्ठी म है। उस बाबू को ही लो। कोट-पैंट म फिरंगी का वेश बना बैठा है।

नीलकण्ठ समझ गया कि यह बाण उसी पर छोड़ा गया है। जिस यात्री ने यह फबती कसी थी उसकी लम्बी दोहरी देह थी। गोल चेहरे पर गोल-गोल आँखें। गेहुँए रंग में थोड़ा काजल मिल गया था। उसने उचक-कर आगे होते हुए कहा, "युद्ध आता है तो कारोबार पहले से अच्छा चलने लगता है।"

नीलकण्ठ ने उसके समीप होकर कहा, अजी श्रीमान् जी, युद्ध को तो पीछा करने वाला हाथी समझो।"

पास से कोई बोला, 'घोड़ा हवा के उलट भागता है, गाय हवा के साथ।'

फिर एक तरफ से आवाज़ आई, "बुद्धिमान की सलाह तो यही है कि दो प्राणियों को एक साथ कुएँ में नहीं झाँकना चाहिए। इंग्लैण्ड और फ्रांस तो यही कर रहे हैं।"

कोई बोला, "नौका महानदी के बीच में हो, तो उसका सूराख बन्द करने का सवाल बहुत टेढ़ा है। पर सूराख होगा ही क्या ? हिटलर इतनी कच्ची गोलियाँ खेला हुआ तो नहीं है श्रीमान् जी !"

नीलकण्ठ उठकर बिस्तर बाँधने लगा।

किसी की आवाज़ आई, "खोटा सिक्का कब तक चलेगा ?"

एक और सज्जन बोले, "अजी श्रीमान् जी, पिछली लड़ाई में हिटलर एक सिपाही ही तो था। अंग्रेज़ जीत गए तो उन्होंने सन्धि करके जर्मनी की नाक रगड़वाई। समय-समय की बात है। हिटलर ने अपने साथियों के साथ शराबखाने में बैठकर कसम खाई कि उस सन्धि का गला घोंटकर दिखायेंगे। उन्हीं में से नाज़ी पैदा हुए।"

गाड़ी भुवनेश्वर के स्टेशन पर रुकी।

नीलकण्ठ नीचे उतरा। उसे लगा भुवनेश्वर की हवा उसका स्वागत कर रही है।

स्टेशन के बाहर उस धौली की बैलगाड़ी मिल गई।

जाएगा कि इनका यथार्थ मूल्य क्या है? अभी तो वे गुमनाम हैं। मेरे विचार में यही बात ग्राम-पथ के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।"

चतुर्मुख इतना कहते रहे जैसे उनकी छेनी भी ग्राम-पथ पर चलने वाली नारी हो। पास ही अनन्त बाबू, बधजी और नीलकण्ठ की विचार गोष्ठी चलती रही। अनन्त बाबू बोले, 'शरत् बाबू ने लिखा है—जब नारी के लिए सोने की लंका नष्ट हो गई, ट्राय राज्य विध्वस्त हो गया, और भी छोटे-बड़े न जाने कितने राज्य अब तक नष्ट हो चुके होंगे जिनका वर्णन इतिहास ने लिपिबद्ध नहीं कर रखा है, तब नारी का साधारण मूल्य किस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है? तुम्हारी स्लेट में जगह ही कितनी है जो तुम उसका मूल्य अंकों में निकाल सकोगे? आप क्या कहते हैं बधजी?'

मैं तो मानता हूँ कि नारी का मूल्य मात्र रूपसी होने में नहीं।" बधजी कहते चले गए, "वह कितनी सेवा-परायणा और स्नेहशीला है, कितना कष्ट सहन करते हुए भी मौन रहती है! और फिर सबसे बड़ी बात तो आचरण की पवित्रता है। रामायण, महाभारत, पुराण पुकार-पुकारकर कह रहे हैं कि नारी के लिए सतीत्व ही सर्वश्रेष्ठ गुण है।

चतुर्मुख भी चुप न रह सके। बोले, "मैं कहता हूँ नारी तो मातृत्व के कारण ही पूजनीया होती है। शंकराचार्य न जाने किस झोंक में कह गए कि नारी नरक का द्वार है। मैं उनकी बात नहीं मानता।

अनन्त बाबू बोले, 'शरत् बाबू ने अपने उस निबन्ध में लिखा है कि नेपोलियन ने एक दिन मैडम कण्डोरसेट से कहा—मैं नहीं चाहता कि नारी राजनीति में हस्तक्षेप करे। और इसके उत्तर में मैडम ने कहा—आपका यह कहना तो ठीक है सेनापति महोदय! पर जिस देश में स्त्रियों के सिर काटने की प्रथा हो उस देश में यह बात स्वाभाविक है कि स्त्रियाँ भी यह जानना चाहें कि हमारे सिर क्यों काटे जा रहे हैं?"

नीलकण्ठ ने हँसकर कहा, 'बात तो ग्राम-पथ की चल रही थी। हम उससे बहुत दूर निकल आए।' नारी का प्रसंग एकदम बन्द हो गया।



अन्नदा बाबू चले गए, पर अपनी याद छोड गए। वैद्यजी से सुनकर हितोपदेश का वह श्लोक उन्होंने झट अपनी डायरी मे उतार लिया था। जाने क्यो ?

उस श्लोक म कहा गया था—नदियो का, जिनके हाथ मे हथियार हो उनका नख वालो का, सीग वालो का, स्त्रियो का, और राजकुल के लोगो का विश्वास नही करना चाहिए। श्लोक की भाषा कितनी नपी तुली थी

नदीना शस्त्रपाणीना नखिना शृङ्गिणा यथा।
विश्वासो नैव कर्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च॥

नीलकण्ठ सोचता—अलवीरा पर अविश्वास करने का तो प्रश्न ही नही उठता। वह भुवनेश्वर तक अन्नदा बाबू के साथ गया था, और उसने उन्हे अलवीरा की कथा कह सुनाई थी। काम म मन न लगने की बात भी उसने छिपाकर नही रखी थी।

अलवीरा की मुख छवि याद आती है, जैसे फूलो की सुगन्ध हवा म गमकती है। लय और प्रवाह म बँधे छन्द-सी याद आती है, जैसे आत्मा के द्वार पर खडी हो अलवीरा।

यहीं तो मिली थी पहली बार इसी ग्राम-पथ पर। गुलगुत्थना अंग्रेज-कन्या। धीरे-धीरे का ग्राम पथ। मानस क्षितिज पर स्वप्न-माया के समान आ मिली थी अलवीरा। पर तब तो बचपन था। वह भुवनेश्वर आयी थी कलकत्ते से, अपने माता पिता के साथ। तब किसे पता था कि बड़े होकर एक साथ लन्दन जायेंगे हम दोनों!

भगवान् ने सोचा—एकोऽहं बहुस्याम्! मैं भी तो यही सोचता हूँ। मैं एक हूँ मैं बहु हो जाऊँ! कब मगन मुहूर्त पच आएगा? अविश्वास की बात मैं नहीं स्वीकारता। भगवान पर अविश्वास करूँ? अलवीरा मेरा लय है वही मेरी गति है। पर यह बात बाबा से कैसे कहूँ? वे इसे समझेंगे?

ग्राम पथ आज भी चल रहा है। यह तो चलता ही। कोई कविता इस पर चाहे नहीं। अलवीरा यहाँ से दूर है। उसके लाल रूमाल रिबन यहाँ नज़र नहीं आ सकते। ग्राम-पथ को उसकी क्या चिन्ता? जो है सो ठीक है। इतने जनों के बीच मैं अकेला हूँ।

आज भी व्रत कथा शेष होने पर कहा जाता है

मा कथाटि सरिला फुल गछटि मउला
हइरे फुल गछ तु काहिंकि मउलु?
मोते कारी गाई गाइ गला।
हइला कारी गाई तु काहिंकि गाइ गलु?
मोते गउड जगिला नाहिं
हइरे गउड तु काहिंकि जगिलु नाहिं?
बड बोहू भात देला नाहिं
हइला बड बोहू तु काहिंकि भात देलु नाहिं?
पुत्र कान्दिला।
हइरे पुत्र तु काहिंकि कान्दिलु?
मोते धूलिया जन्ता कामुडि देला
हइरे धूलिया जन्ता तु काहिंकि कामुडि देलु?

मु माटी तले तले थाए
कग्रन माउस पाइले रटकार कामुड दिए।

[मरी क्या शेष हुई। फूल गाछ मर गया। ओ रे फूल गाछ तू क्या मर गया? मुझे काली गाय खा गई। ओ री काली गाय, तू क्या खा गई? मुझ पर ग्वाल ने चौकसी नहीं रखी। ओ रे ग्वाले, तूने क्यों चौकसी नहीं रखी? बड़ी बहू ने भात नहीं दिया। ओ री बड़ी बहू, तूने भात क्यों न दिया? बेटा रो पड़ा। ओ रे बेटे, तू क्यों रो पड़ा? मुझे काली चींटी ने काट खाया। ओ री काली चींटी, तूने क्या काट खाया? मैं माटी तले रहती हूँ। जहाँ भी कोमल माम देखती हूँ, काट खाती हूँ।]

कितनी दूर तक हम एक-दूसरे साथ बँधे हैं! जब-जब क्या शेष हुई, फूल गाछ मर गया। क्या हर बार काली गाय ही फूल गाछ को खा गई? पहले ग्वाले का दोष सामने आता है, फिर बड़ी बहू का। बड़ी बहू कहती है—बेटा रो पड़ा। बेटे को हर बार काली चींटी ही क्यों काट खाती है? काली चींटी का उत्तर कितना पना है कि वह माटी तले रहती है और धरती पर जहा भी कोमल मास पाती है काट खाती ह। पिछले पत्र म नीलकण्ठ ने उड़िया शिशु-गीत का यह बोल लिख भेजा था और पूछ लिया था, 'क्या तुम्हें याद है कि काली चींटी ने तुम्हें भी काटा था?''

अलबीरा की याद आती है, तो नीलकण्ठ सोचता है—मैं क्या अकेला चला आया?

अब अलबीरा लोक-कथा की सोना राजकुमारी होती तो नीलकण्ठ अवश्य पक्षीराज घोड़े पर चढ़कर उसकी खोज मे चल पड़ता। लदन-प्रवास के दिनों म अलबीरा कई बार मिस्र की महारानी क्लियोपट्रा की कथा ले बैठती थी, जिसके सम्बन्ध म यह प्रसिद्ध था कि आयु का भार उसकी मुखश्री पर बिलकुल नहीं पड़ता और न अति परिचय के कारण उसकी लावण्यमयी मूर्ति का जादू कम होता है। इस दृष्टि से तो स्वय अलबीरा भी दूसरी क्लियोपट्रा थी।

मूर्ति में उसका मन नहीं लगता था। न कौशल काम देता, न कल्पना उद्दाम धारा बनती। अलबीरा के बिना सब अपूर्ण था। अब यह बात न बाबा से कहने की थी न ग्राम से। यह दूरी कब कम हो? उसका एकाकी मन किसी सहधर्मिणी के लिए आकुल हो उठा। अलबीरा का पत्र आता तो लगता, अलबीरा ने उसके गले में वरमाला डाल दी। यह बात सोना से कहता तो वह जान कमे-कम मजाक करने लगती।

उसके मन में पुरातन और नूतन में युद्ध हो रहा था। सोना को उसका भी पता था। सोना समन्वय की सलाह देती।

अलबीरा का मायास्पर्श तो पीछे छूट गया, सोना भौजी! नीलकण्ठ अगमपथ के स्वर में कहता 'पत्थर की शोभायात्रा आगे कब चले?'

तो उस लक्ष्य आय होत तीन! सोना इससे अधिक न कह पाती।

पत्थर की आत्म घोषणा का मूल्य समझती है अलबीरा। काश वह इस समय यहाँ होती!

'जब तक वह नहीं आती, मूर्ति बनाओगे ही नहीं?'

उसके बिना पत्थर का आह्वान कैसे सुनूँ?

कई दिन उसने छेनी हथौड़ा को हाथ न लगाया। पत्थर मूर्तिकार को बुलाता रहा और पत्थर की पुकार अनसुनी कर दी जाती।

आज अलबीरा का पत्र आ गया। नीलकण्ठ का मन मयूर नाच उठा।

कितनी लालामयी है अलबीरा! उसने मन ही मन कहा, युद्ध की कथा तो आटे में नमक के बराबर भी नहीं। व मा के धमाकों में भी कला का प्रसंग तीन पन्नों में फैला रहता है।

वह चिट्ठी पढ़ने लगा

पीछे अतीत, आगे अनागत। दोनों के बीच खड़ा होकर सोचता है आज का आदमी। कलाकार भी उन्हीं में से एक है, अलग नहीं।

मैं तो मूर्तिकार नहीं, तुम हो। पर इतना तो मैं भी समझता हूँ कि पत्थर के प्राण बोलें, यह जरूरी है। शायद तुम्हें मेरी बातों में

अपनी ही बातों की गूँज सुनायी दे। अपनी भाषा में कहती हूँ। सुनो। कला के आसन पर जगह पाने के लिए पत्थर में अलभ्य अनुभूति ढालनी होगी।

"इसके लिए इलियट की कविता की शरण लेनी होगी।

उस कविता की बात कर रही हूँ जिसमें तीन सीढ़ियों की चर्चा है। तीन सीढ़ियाँ और त्रिमूर्ति। शायद इनमें कोई मेल बिठाया जा सके। इस कविता में कवि शायद यह कहने की चेष्टा करता है कि ज्यों ज्यों हम परम सत्य के समीप पहुँचते जाते हैं दुनिया के अनिवार्य आकर्षण हमारी अन्तर्दृष्टि को अपने माया जाल में उलझाने को मुँह बाए खड़े रहते हैं। पहली सीढ़ी पर चढ़ते समय मानो कवि को कोई प्रेतात्मा दीख जाती है। सचमुच चहुँ ओर वासना साकार होकर हमारा मार्ग रोके खड़ी है। हम उन जहाज़ों की तरह हैं जो सागर पर चले जा रहे हैं मंजिल का पता नहीं।

"लन्दन की टेम्स नदी को देखती हूँ तो धौली की दया नदी की याद हो आती है भले ही दया नदी धौली से थोड़ा हटकर बहती है।

"इलियट मनुष्य-जीवन को निर्जन प्रदेश में पड़ी चट्टान की छाया कहता है। नीलकण्ठ यहाँ मैं इलियट के साथ सहमत नहीं हो सकती। मैं कैसे मान लूँ कि इस चट्टान का आभास मात्र होता है और वास्तव में यह कुछ भी नहीं है ?

"मैं आशा करती हूँ कि युद्ध शीघ्र समाप्त होगा, और मैं जहाज़ में बैठकर कलकत्ते के लिए चल पड़ूँगी।"



उडती चिन्यिा का पहचानता है धौना। पमा गाँठ का बेटा प्रांत का। जो धान और ईख की गना म नग हैं वे क्या जानें पायुरिया की कला! गुरुचरण रामधारी है मायाधर कसेरा। करवे वालो का अपना धन्धा प्रिय है। गगन महान्ती भुवनेश्वर के हैडमास्टर हैं। पाँचू गोप मुखिया और नोकनाथ मिस्त्री म मुकदमा चल रहा है। पर बडा विचित्र मेल और दुराव है उनम। एक साथ कचहरी म पेशी भुगतने जाते हैं एक साथ कचहरी से धौली लौटते हैं।

जागरी की सती है भुवनेश्वर के यात्रिया की कृपा दृष्टि। वह उस हवा का धन्यवाद देता है जो यात्रिया को इधर उडा लाती है।

अपने अड्डे पर बठे चतुर्मुख पहले के समान ही फिरगी के पर्वत प्रमाण दम्भ की खिल्ली उडाते हैं।

धौली की स्त्रियाँ पहले की तरह ही कौशल्या पुष्करी की सीढ़ियो पर कपडे धोती हैं और स्नान करती हैं। आज भी सोना अण्डो की सफेदी म दूध मिलाकर केशा को धोकर घुघराले बनाने का नुसखा धौली की बहू बेटियो को बताती है जिसे वह मयूरभंज से साथ लाई थी।

सोने वाले अपनी अपनी नींद सो सोकर उठते हैं। यहाँ ऐसे लोग

भी रहते हैं, जो सुनते अधिक हैं और बोलते कम हैं। वे जानते हैं कि भुवनेश्वर में देश के हर प्रान्त के लोग आते रहते हैं विदेश के लोग भी आ निकलते हैं। अश्वत्थामा चट्टान का शिलालेख देखने कुछ लोग धौली भी चले आते हैं। किसी न किसी यात्री के मुह से इतिहास के किसी पन्ने का बोल निकलता है

'पानीपत के मैदान का क्या कहे, जिसने मराठो की किस्मत पर ग़मी मुहर लगा दी कि फिर वे पनपने न पाए। उधर उस अब्दाली पठान ने हिंदुस्तान के तख्त पर कन्धार के अनार को तरजीह दी और जंग जीत कर भी एक बनी-बनायी सल्तनत बखवरी में अंग्रेज़ के हवाले करके खुद वतन को लौट गया!'

किसी यात्री के मुख से कोई ऐसा बोल निकलता है

'वे गलियां याद आती हैं जवानी जिनमे खोई है!'

कौशल्या पुष्करी की सीढ़ियों पर कपड़े धोती और स्नान करती स्त्रियाँ अपनी बातों में बाहर से आने वालो के चेहरे मुहरे और लिबास की चर्चा के साथ-साथ उनके पेशे और विचारो को भी समेटने का यत्न करती और बीच-बीच में गांव की बातें छिड़ जाती।

"कोइली और अपूर्व की जोड़ी कैसी रहेगी?' कोई बहू पूछ बैठती है।

"तुम तो, बहन पाँच महीने पहले का सपना ही देख रही हो,' दूसरी संग-सहेली चहक उठती है 'अरे अब तो सुनते हैं, कोइली का बड़ा ठाठ होगा। कटक में होगी उसकी ससुराल। लड़का वकील है।'

पास से कोई हँस उठती है, जैसे उसे न किसी अपूर्व में दिलचस्पी हो न किसी वकील में।

कोई पूछती है 'बहन, पानीपत का मैदान यहाँ से कितनी दूर है, जहाँ कई-कई लड़ाइयां लड़ी गईं?'

"हम किसी पानीपत को क्या जानें?" पास से कोई कह उठती है, 'हम तो इस तापनी के मैदान को जानती हैं, जहाँ अशोक ने कलिंग की लड़ाई लड़ी थी। उस समय तक तो पानीपत का नाम भी नहीं सुना



"अखबार ही वद्य असमंज महापात्र की पूँजी पूजी है !" जागरी आलोचना करता, "इकन्नी का अखबार लिया। पहले बठकर सबेरे पढ़ते रहे। फिर चार रुपय की पुड़िया बाध डाली। अखबार की रद्दी फिर भी बची रह गई। कोई हाल-मस्त, कोई माल-मस्त, वद्यजी अखबार-मस्त।"

अब वद्यजी को शिकायत थी तो यही कि अखबार म धौली की खबर कभी नही छपती।

'पूर्णमद पूर्णमिद' वाले मन्त्र को 'शून्यमद शून्यमिद' बनाकर वद्यजी पान बघारते कि पूर्ण स पूर्ण निकालने पर पूर्ण नही बल्कि शून्य से शून्य निकालन पर शून्य बचा रह जाता है। 'चिल्लाने स शब्द की मृत्यु हो जाती है !" वद्यजी पुड़िया देत समय रोगी को बताते, जसे यह भी कोई रामबाण औषध हो। कभी कहते, "अपने स अपनी ही सुरक्षा करनी होगी।

जागरा वद्यजी क मुँह से सुनी हुई किसी विदेशी कवि की यह बात गेंद की तरह उछालने लगता कुछ लोग कहते हैं दुनिया का अन्त आग की लपटों से होगा। कुछ कहते है, बरफ म गलने पर अन्त होगा। इच्छाओं

वाह् वद्यजी, फिर अखबार की बात आ गई ! पाप-पुण्य के ब्यौरे म अखबार कहाँ से आ गया ?

''कभी हमारे इस अखबार के सम्पादक महोदय मिल जाएँ, तो उनसे इतना तो पूछना कि धौली की कोई खबर क्यो नही छापते ? कहना, हमारे वद्यजी लाग-लपेट के बिना शिकायत करते है। नीलकण्ठ विलायत गया, तब धौली की यह खबर न छपी, और पाँच बरस बाद नीलकण्ठ लौट आया तब भी इस सम्बन्ध मे अखबार चुप रहा। हो सके तो सम्पादक महादय को यहाँ ले आओ। यह बात हम खोलकर कहगे।'

क्या कहने !' जागरी आँखो-ही आखो म बहुत-कुछ कह गया, अच्छे रहे ! सम्पादकजी के लिए सवारी आप भेजेंगे ?'

'कतव्य का पालन तो होना ही चाहिए, जागरी ! तुम मुस्करा रहे हा ! मैं ऊँच-नीच साचकर बात करता हूँ। अखबार की खबर ही रामबाण औषध है। येनकेनप्रकारेण धौली की खबर भी अखबार मे छपने लग धौली से बाहर के लाग धौली को जान। क्या बताऊँ तुम्हारी बडी आयु हा, धौली का नाम दूर-दूर तक फले। अर तुम फिर मुस्करा रहे हा, जागरी ! तुम्हारी समझ मे खाक पत्थर नही आया। अरे मैं किसी दूसरी भाषा म नहा अपनी भाषा म ही तो बाल रहा हूँ। तुम जिससे भी मिला कसकर धौली का गुण-गान करा।'

'अपने मुह मियाँ मिटठू बनना तो ठीक नही, वद्यजी !'

तुम मरी बात नही समझ सकोगे। तुम्ह ता हर किसी स धौली का क्या कहते रहना चाहिए। कभी ता इस औषध का असर होगा, और यह रोग टूटगा। अश्वत्थामा चट्टान क हाथी मुख और अशाक के शिला लख की बात तो पाथी पर चढ चुकी है। पर उमस भी बडी बात तो यह है कि धौली के मूर्तिकार चतुमुख का विलायत स लौटा हुआ पाता सरकारी नौकरी का खयाल छाडकर कला-साधना म ही जुट गया। अखबार मे यह खबर क्यो नही छप सकती ? इस राग का कोई-न कोई उपचार ता हम करना ही होगा। अरे एसा भी हाता है कि कभी अचानक ही कोई नुस्खा

भी मन-ही-मन ग्रलवीरा से प्रेम करने लगा है। मसे वह उसके प्रेम म पागल तो नही हो सक्ता।"

'प्रेम ऐसी ही चीज़ है, जागरी! इसमें मनुष्य सब सुध बुध विसार वठता है। प्रेम भी शायद एक लाचारी है। सोचो तो सही। ग्रलवीरा बडी सीधी-सादी लडकी है। हम उसे जानते हैं। वह झूठ नही बोलती। थोडी भावुक ग्रवश्य है। पिता की डाँट फटकार का तो ग्रग्रेजो के यहाँ प्रश्न ही नही उठता। मेरा दिल तो नही मानता कि शास्त्रानुसार नीलकण्ठ ग्रौर ग्रलवीरा का विवाह हो सक्ता है। पर जो ग्रनागत है, उसके बारे म ग्रभी हमारे ग्रखबार की खबर क्या बताएगी?"

"ग्रलवीरा चिडचिडे स्वभाव की लडकी नही है, वद्यजी!" जागरी ने ग्राँखें नचाकर कहा, "यह तो ग्राप भी जानत हैं। लो हम चले। ग्राज तो ग्रापको दुकान पर इतनी देर हो गई। वठकर ग्रखवार पढिए या पुडिया बाँधिए। हम भी चलकर ग्रपना काम देख।'

दूर से चतुमुख ग्रात दिखायी दिए।

जागरी बोला, "लो बाबा ग्रा रह हैं। ग्राज तो यही विचार-गोष्ठी जमेगी।"

"कहाँ से ग्रा रहे हो, काका?'

"ग्रश्वत्थामा से।'

"सीधे वही से?"

"वही से ग्रा रहा हूँ।" चतुमुख ने बठते हुए कहा, "जाग्रो जागरी! नील को यही बुला लाग्रो। उसे भी सुनाऊँगा वह बात।"

जागरी चला गया।

वद्यजी ने पूछा, "ऐसी क्या बात है, काका?'

"नील को ग्राने दो। फिर बताऊँगा।'

नील को ग्राते देर न लगी। उसे पास बिठाकर चतुर्मुख बोले, "ग्राज मैंने ग्रश्वत्थामा के शिलालेख पर हाथ फेरते हुए कहा "

"ग्राज कोई खास बात कह डाली, बाबा?" जागरी चुप न रह सका।

चतुर्मुख ने आकाश की ओर आँखें उठाकर कहा "इन्हें सद्‌बुद्धि दो, महाप्रभु ! '

फिर वैद्यजी के चबूतरे पर हाथ फेरने लगे चतुर्मुख, जैसे यही अश्वत्थामा हो । वे कहते चले गए

'अश्वत्थामा पर इसी प्रकार हाथ फेरते हुए मैंने कहा—हे सम्राट, कलिंग के युद्ध में लाखों प्राणियों को मौत के घाट उतारकर आपको जिस अहिंसा और शान्ति के प्रवक्ता बनने की बात सूझी, वह क्या युद्ध से पहले नहीं सूझ सकती थी ? तब तो इसका श्रेय आप ही को जाता । अब तो इस श्रेय के भागी वे लोग हैं जो मर गए । इस शिलालेख को तो आपने ही महत्त्व दिया । पर इसकी महत्ता से तो आपको महान् होने का भ्रम नहीं होना चाहिए "

चतुर्मुख की बात सुनकर सब अवाक् रह गए।



वैद्यजी की पत्नी है नागमती। सोना से सुनकर याद किया हुआ बंगला गान उसे प्रिय है। सुहागरात का गीत ठहरा। गाते गाते आज भी सिहरन-सी दौड़ जाती है। "पुरुष तो क्या, पत्थर को भी प्रेम सिखाया जा सकता है!" नागमती सोचती है, जब वह गाती है

चांपा फूल चाई ना बेला फूल दाओ
जाई दिले जूई दिले केओरा फूल दाओ
ए गाले ते चुमा खेले ओ गाले ते दाओ
चांपा फूल चाई ना बेला फूल दाओ

[चम्पा फूल नहीं चाहिए बेला फूल दो। जाई दिया, जूई दिया, केवड़े का फूल दो। इस गाल पर चुम्बन दिया, उस गाल पर दो। चम्पा फूल नहीं चाहिए, बेला फूल दो।]

यह गीत सुनकर एक दिन वैद्यजी बोले, "यह भी कोई खबर-कागज की खबर है, नागमती?"

गाते-गाते नागमती की आंखें चमक उठीं।

वैद्यजी सोचने लगे—आज तो नागमती प्रेयसी नहीं, पत्नी है।

नागमती ने कहा, "खबर के बाद खबर। खबर-कागज की सब खबरें

क्या सच्ची होती हैं ?

'अरे खबर कागज क्या अपना दरबार है नागमती ?'

"मुझे तो खबर-कागज की कोई खबर ढाई हाथ की ककड़ी प्रतीत होती है, तो कोई नौ हाथ का बीज। खोटा पैसा फिर भी अच्छा है, खोटी खबर किस काम की ?'

वैद्यजी ने बैठकर कहा 'नागमती रविवार के खबर-कागज मे कोई-न-कोई कथा छपकर आती है। इस बार एक कथा आई है।

मुझे नहा सुनाओगे ?" नागमती मुस्कराई।

'पढकर सुनाने का तो समय नही है। सक्षेप में कह सकता हू।

वही कहो।"

'चतुर चोर', यह है कथा का नाम। छोटा चोर अपने गुरु को चाचा कहता है और अन्त तक इस सम्बन्ध का निर्वाह करता है, नागमती! अच्छा तो सुनो। चाचा चोरी करते पकडा गया। भतीजे ने उसकी रक्षा का कोई उपाय न देखकर, उसका सिर काट लिया और उसे लेकर वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गया। राजा ने झट चोर की बिना सिर की लाश पर पहरा बिठा दिया। भतीजे ने पहरेदारो को धोखा देकर पहले चाचा का दाह-सस्कार किया और फिर श्राद्ध। अन्त मे कापालिक का भेस बनाकर मरघट से चाचा की अस्थियाँ लाने और गगा में विधिपूर्वक विसर्जन करने मे सफल हो गया। अब देखो क्या होता है ? राजा ने अपनी रूपवती कन्या को अपने उद्यान मे बिठाकर चोर को पकडने का उपाय किया। चोर इस बार फिर पहरेदारो को धोखा देकर राजकुमारी से जा मिला और थोडा समय उसके पास बिताकर नौ दो ग्यारह हो गया। अन्त में राजा ने देखा कि राजकुमारी तो गर्भवती हो गई। राजा ने उस चोर के साथ ही राजकुमारी का विवाह कर दिया।

नागमती ने हँसकर कहा, 'कौन जाने उस राजकुमारी ने भी यह गीत गाया था—चाँपा फूल चाई ना, बेला फूल दाम्रो!

'जब देखो, इसी गीत की बात। नागमती तुम पागल हो जाओगी।

"और तुम पागल नहीं होगे, जिन्हें कथा सुनाए बिना खाना हज़म नहीं होता।'

वद्यजी ने हँसकर बात टालनी चाही, पर नागमती उन्हें घेरकर खड़ी हो गई, और अपना प्रिय गीत गाने लगी।

"तुम इस गीत से छुट्टी नहीं पा सकतीं नागमती ?"

'बिलकुल नहीं।'

"क्यों, ऐसी भी क्या मुसीबत है ?"

नागमती ने प्रसंग बदलकर कहा, "अच्छा बूझो, मेरे पास आज कौन-सी खबर है ?'

"अरे कहीं अन्तराल की चिट्ठी तो नहीं आ गई ?' वद्यजी मुस्कराए।

'नहीं, उसकी तो कोई चिट्ठी नहीं आई।"

"तो फिर कौनसी खबर है ? मुझमें तो धौली की नब्ज़ पर हाथ रखने की क्षमता है। मुझसे भला धौली की कौनसी खबर छिपी रहेगी ?"

'बूझ लो तो मान जाऊँ।"

"तुम्हें वह खबर प्रिय लगी ?"

'यह नहीं बताऊँगी।"

अरे इस घटनामय संसार की खबरों का क्या ठिकाना ! घटना के अनुरूप होती है खबर। इस खबर का अंचल बहुत भारी है क्या ? पुरी की खबर है या कटक की ?

"धौली की खबर है।"

"धौली की ऐसी कौनसी खबर है, जो मैं नहीं जानता ?" वद्यजी ने मुँह से पान की पीक थूककर पास खड़े केले के पत्ते पर एक चित्र-सा अंकित करते हुए कहा, "हाँ तो बोलो, कौनसी खबर है ? सच्ची खबर होनी चाहिए, नागमती !"

"झूठ कहने वाले की जीभ जल जाय।" नागमती हँस पड़ी।

'गाँव की खबर है क्या कोई ? किसी को ज्वर तो नहीं हो आया ? अरे तुम कहोगी तो औषध के पैसे नहीं लेंगे।"

'मैं विराक्ता झूठ-मूठ बीमार बता दूँ ?' नागमती खिल गई।

'किसी की गाय चोरी हो गई क्या ?' वद्यजी गम्भीर हो गए।

"जाकर उससे पूछो जिसके सिर पर दुःख का पहाड़ टूटा।

'दुःख का पहाड़ ?' वद्यजी के आश्चर्य की सीमा न रही, 'कोई अनाथ हो गया क्या ? किसी का बापू चल बसा ? जन्म-मरण तो साथ-साथ लगा है। अरे एक-न-एक दिन तो सभी ने मर खप जाना है। हाँ तो कौनसी खबर है थोनी की ? यहाँ ऐसी कौनसी घटनाएँ होती हैं ?'

"भला बूझो तो !' नागमती की हँसी में सहानुभूति थी।

कोई अटपटी बात होगी। नागमती तुम नहीं बताओगी। वद्यजी खिसियाने-से होकर जाने लगे।

नागमती की आँखों में मुग्धी की तरगें छलछला उठी। वद्यजी न समझा, कोई खबर नहीं है। ऐसे ही मजाक कर रही है नागमती। यही तो इसकी आदत है। तिल का ताड़ करना ही उसे प्रिय है। 'छोड़ो-छाड़ो !' वे बोले, 'बाधा मत बनो। देर हो रही है दुकान के लिए।'

'रुको रुको, अभी बताती हूँ। नागमती ने एक बार शून्य की ओर देखकर विचित्र-सी मुद्रा बना ली एसा क्यों हुआ यह तुम सोचो। सोना ने मर्यादा तोड़ डाली। अब तक लड़के ही राधा और गोपियाँ बनते आए थे। अब सोना राधा बनेगी।

अच्छा, वह बात ? आ ही गया वह मुहूर्त। कई बार मुहूर्त ठीक किए। हर बार चतुर्मुख रोक देते थे। अब उन्होंने अनुमति दे दी होगी।"

'गुरुचरण की तो चाँदी है। पर जागरी का सर्वनाश समझो।'

'ऐसा क्या कहती हो, नागमती ?

नारी की शोभा घर में है, रासलीला में नहीं। जागरी भी कितना मूर्ख निकला ! उसने चतुर्मुख बाबा की सलाह क्या मान ली ?"

सोना के राधा बनने से कौनसी प्रलय हो जाएगी ?" कहते हुए वद्यजी बाहर निकल गए।



वैद्यजी चतुर्मुख के अड्डे पर आ बैठे और बोले "सुना है, सोना राधा बनकर उतरेगी रासलीला में ? यह खबर तो अखबार-कागज़ में ज़रूर छपेगी।"

नीलकण्ठ कुछ न बोला। वह किसी विदेशी पत्रिका के पन्ने पलटता रहा।

रूपक बोला, "आपसे किसने कहा काका ?

वैद्यजी कहते चले गए कि सोना ऐसी है, सोना वैसी है। उन्होंने बताया कि धौली की स्त्रियाँ बहुत बुरा मना रही हैं। आँखों और हाथों के संकेत से उन्होंने इस विचार की दुर्गति बनाई कि गुरुचरण रासलीला की कला को इस प्रकार लाञ्छित करने जा रहा है।

"यह धरती तो वैसे ही पाप से भरी पड़ी है, काका ! सोना को रोको। गुरुचरण को भी समझाओ। जैसे अब तक चलती आई है रास लीला, आगे भी चलती रह सकती है। सोना से कहो, गुरुचरण की बात मानने से इन्कार कर दे।'

चतुर्मुख मुस्कराते रहे, जैसे वैद्यजी की बात उनके मन न लग रही हो।

यह देखकर वधजी और भी जल भुन गए। नीलकण्ठ क्यों कुछ नहीं बोलता ? रूपक भी चुप हो गया। यह सोचकर वधजी बहुत सटपटाए। उनकी आँखें अपने प्रश्न का उत्तर खोजने लगीं। यह ऐसी बात न थी, जिसे वे सुनी अनसुनी कर देते।

फिर इधर उधर की बातें चल पड़ीं—अमुक की पुत्री बाईस वर्ष की थी, जब वह विधवा हो गई। दामाद देवता है। अमुक का बेटा बावरे जसा घूमता है पर उसकी बातो म इन्द्रधनुष प्रकित हो जाता है। लगता है जसे बहुत दूर स बाँसुरी की ध्वनि आ रही है।

नीलकण्ठ ने बाहर की बात छेड़ दी जसे धौली के साथ बाहर का परिचय कराना इतना ही आवश्यक हो। वधजी पर नीलकण्ठ का प्रभाव पड़े बिना न रहा। लगता था उसे कल्पना की मृदुल गोद प्राप्त है और वह पत्थर मे अपनी प्रतिभा का परिचय देकर छोड़ेगा।

घर के भीतर कोइली झूला झूलती हुई गा रही थी

आखु बाडि खड खड
दुहुदा लगाइ आसुधि कर
कि आँकु सज कर
मो दुलि लो !
कबाट कँ करिला
सउतुणी पुअ मामा कोइला
से लाज मोते लागिला
मो दुलि लो !
जह्न उदे छन छन
उदि आरे जह्न खाइबु पान
तो मुख न्हिे दपण
मो दुलि लो !
दिग्नँक पाखरी कइ
कइ फुल परि वोउ वढाई थिलु लो

पर घरे देवा पाईं
मो दुलि लो !
शिलरे छेपिति अदा
बड घर बोलि देइछ ददा
देहरे गुलिला उदा
मो दुलि लो !

[ईख का खेत खड-खड करता है। मशालों का जुलूस सजाये आ रहा है। वर-कन्या को सजाओ। आ मेरे मूले, विवाह चरचराता है। सौत के बेटे ने मुझे माँ कहकर पुकारा। मुझे बहुत लाज लगी। ओ मेरे मूले, सन-सनकर उगता है चाँद। उगो रे चन्दा, तुझे पान खाने को दूगी। तेरा मुख दपण में दिखायी दगा। ओ मेर मूले ! देवता की पुखरी का कमल। कमल-फूल के समान है मा, तुमने मुझे बडा किया ! पराये घर देने के लिए। आ मेरे मूले ! सिल पर अदरक पीसा। तुमने मुझे बडे घर मे दिया। देह पर यही एक सूखा लुगडा है। ओ मेरे मूले !]

वद्यजी बोले, "सोना ने भी ये गीत गाए होंगे। मशालों का जुलूस सजाकर आने वाले वर के गीत। देव-पुखरी के कमल फूल खिले होंगे उसके सपनों म। उगते चाँद का मुख उसने भी देखा होगा दपण मे। पर अब तो वह राधा बनकर रासलीला में उतरने जा रही है, जिसे हम बिलकुल पसन्द नहीं करते।"

पास से नीलकण्ठ बोला, "यह तो कला का मामला है, वद्यजी ! किसी की कला मरनी तो नही चाहिए। सोना तो सौभाग्यवती है।"

चतुमुख बोले, "पाथुरिया गली की कही अनकही कहानी आगे जाएगी ही। सोना हारेगी नहीं। रासलीला का न्याय उसका साथ देगा। सोना म आस्था है, जो कभी उखडेगी नहीं।'

"रासलीला में किस सत्य का साक्षात् करगी, सोना ?'

"जो अनिवचनीय है।"

"और नागरी ताल देगा—ता थिट् थिट् ता !"

"क्या बुरा है वैद्यजी! जागरी तो वह ताल भी दे सकता है—धीन् धीन् तिटि धाग तितटि धानिरि किट उनम तनाव नहीं बढ सकता। यह तो जागरी भी मानता है कि सोना की कला मरनी नहीं चाहिए। पाथुरियाँ गली भी उसे सराहेगी और मुग्ध-दृष्टि से देखती रहेगी। जो पाथुरिया गली का स्वर है वह तो प्रांतों का स्वर है। आप तो हँस रहे हैं वैद्यजी! मालूम होता है पत्नी की बातों में आ गए। पाथुरिया गली किसी कल्पना-लोक से कम नहीं।

बात सोना की चल रही थी। जब वह रामलाला में नाचेगी, तो उसका रंग-रूप बिसर थोड़े ही जाएगा वैद्यजी?" नीलकण्ठ बोल उठा।

और लोग उसे देखकर मन-ही-मन गायेंगे—नागर द न ए रा सोना! वैद्यजी ने चुटकी ली चलो मान लेते हैं कि सोना के नाच पर जागरी ताल देगा—ता धिन् धिन् ता!

फिर बात उछलकर निर्मूर्ति का काम पूरा करने पर आ गई।

वैद्यजी बोले एक बात पूछूँ? ब्रह्मा और विष्णु की मूर्तियों में *एक पीढ़ी का अन्तर होने पर भी उन्हें देखकर एक ही हाथ की कला* प्रतीत होती है। अब नीलकण्ठ शिव-मूर्ति का जोड़ लगाएगा तो मामला बिगड़ न जाए! विलायत से जो ढंग सीखकर आया है उसे ताक पर रख कर तो वह छेनी चलाने से रहा।

नीलकण्ठ ने हँसकर कहा या तो मैं शिव मूर्ति बनाऊँगा नहीं और बनाऊँगा तो आधा तीतर आधा बटेर वाली बात नहीं होगी।

वैद्यजी चतुर्मुख के समीप होकर बोले 'आप ही क्या नहीं शिव-मूर्ति बना डालते? मुझे तो सन्देह हो रहा है। नीलकण्ठ अब लाख यत्न करे, विलायती ढंग से कैसे बचेगी उसकी छेनी?

पाथुरिया की आँख सृजन-मुख पर लगी रहे तो फिर डरने की बात नहीं। चतुर्मुख गम्भीर मुद्रा में बोले, 'पाथुरिया तो स्वयं ब्रह्मा है और सृजन उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। हमारे पिता कहा करते थे—पाथुरिया वह है जिसका दिल बुझ न गया हो और जिसे पत्थर की दुनिया में भी

आदमी की खोज रहती हो। पाथुरिया वह है, जिसका दिमाग सूरज की तरह चमकता हो।'

नीलकण्ठ ने पत्रिका से आँख उठाकर कहा, "लेकिन आज का पाथुरिया कितना दबा हुआ और पीडित है! सम्मान की भावना के लिए सबसे पहले दाल भात की समस्या हल होनी चाहिए। हमारे हाकिमों को तो कतई चिन्ता नहीं। वे तो कहते हैं पाथुरिया कल रसातल को जाता है तो आज चला जाय।'

"हम गुलाम हैं।' चतुर्मुख की आँखें चमक उठीं 'तुम्हें यह बात सदा याद रखनी चाहिए। पाथुरिया की कला मर रही है। फटे हाल पाथुरिया, जिनमें अभी बुजुर्गों की कला साँस लेती है, मारे-मारे फिरते हैं। बहुतों ने तो यह धन्धा ही छोड दिया। जिन्होंने नहीं छोडा, उनमें से बहुतों की हालत खस्ता है। फिर भी निराश नहीं होना चाहिए। गुलामी तो एक दिन जा के रहेगी। हम फिरंगी को माफ नहीं कर सकते जिसने हमें गुलाम बनाया।'

"आपका मतलब है, शिव के मुख पर यही भाव दिखाया जाए?" वैद्यजी ने जैसे किसी रोग की जाच करते हुए कहा।

चतुर्मुख प्रसंग बदलकर बोले, "सोना का रासलीला में राधा बनने से रोकने वाले गुलामी से उपजी हीन भावना से ग्रसे हुए हैं।"

'इसे छोडो,' वैद्यजी बोले, 'शिव-मूर्ति कैसी हो, पहले इसका निर्णय हो जाना चाहिए।'

चतुर्मुख बोले, "शिव-मूर्ति का सृजन नीलकण्ठ के जिम्मे है। वह चाहे तो विष-पान वाली बात उठा सकता है। पर जहां तक सोना के राधा बनने की बात है, हम व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। पत्थर पर छैनी चलाकर नतकी की मूर्ति गढने वाला पाथुरिया तो यही कह सकता है कि नतकी इसलिए नतकी है कि उसकी भाव भंगिमा में पीढियों का सौन्दर्य-बोध बोलता है।'



चतुर्मुख के हाथ पर जन्मजात चिह्न है जिसे देखकर लगता है कि वह छेनी लेकर ही जन्मे थे। कोइली की दादी ने इस चिह्न का प्रसंग उछालते हुए उसे चिढ़ाने को एक ही साँस में कह डाला 'देखते नहीं तुम्हारी किसी मूर्ति में अभी तक ब्रह्मा ने प्राण नहीं डाले! फिर कहते हो, यह पकाओ, वह पकाओ।

"घर में खुशी हो, तो रसोई सबसे पहले घोषणा करती है।' चतुर्मुख पत्थर पर छेनी चलाते-चलाते बोले, 'नीलकण्ठ को विलायत से लौटे इतने दिन हो गए, अभी तक इसी की खुशियाँ मनाई जा रही हैं। अच्छी बात है। पर मेरे आनन्द का कारण तो यह है कि नीलकण्ठ अंग्रेज की नौकरी नहीं करेगा।

"अरे यह कौनसी बुद्धि की बात है? जैसे आप रहे अब तक, ऐसे ही पोते को रखना चाहते हो। ऐसा नहीं होगा मेरे रहते। पैसा नहीं कमाना था तो फिर नीलकण्ठ विलायत पढ़ने क्या गया?'

विलायत गया तो कौनसे हमारे पैसे खर्च हुए? वजीफा पाकर गया। मैट्रिक में सारे उड़ीसा में पहले दरजे पर आया। मज़ाक नहीं सारे प्रान्त में पहले दरजे पर आना। अब यह इसकी अपनी हिम्मत थी कि

जितने रुपये मिलते थे, उसी में गुजारा चला लेता।"

"पर इसका यह मतलब नहीं कि अब वह नौकरी न करे। नौकरी कर तो घर का दारिद्रय टूटे।"

"घर में क्या कमी है? इसीसे पूछ लो। वह बैठा है तुम्हारे पास नौकरी करनी हो तो नौकरी करे। मैं कब रोकता हूँ?"

"अब कहते हो, रोकते नहीं। हर समय उलटी पट्टी पढाओगे तो कैसे असर नहीं होगा?"

"बोलता क्यों नहीं, नीलकण्ठ? कह डालो न, मैंने जो पट्टी पढाई है, सब कह डालो।'

"मैं अपने लिए स्वयं सोच सकता हूँ, दादी!" नीलकण्ठ ने खीझकर कहा, "नौकरी मिलने की आशा होगी, तो मैं देख लूगा। अपना काम भी बुरा नहीं। जीवन तो लम्बी दौड है। कला के भरोसे नौकरी आगे जाएगी, या नौकरी के भरोसे कला, यह देखना मेरा काम है। मैं नौकरी करना नहीं चाहूँगा, तो कोई मुझे मजबूर नहीं कर सकता।"

दादी ने नीलकण्ठ को पुचकारते हुए कहा, "नौकरी मिलने की आशा तो हो ही सकती है न बेटा! ये पत्थर तो रोटी देने से रहे। नहीं मानोगे तो दुःख पाओगे। तुम्हारे बाबा से तो तुम्हारा बापू ही अच्छा निकला। पैसे के बिना गाडी नहीं चलती।"

'मैं नौकरी नहीं करूँगा, दादी!"

"बाद में पछताओगे।"

"देखा जाएगा।"

"देखा क्या जाएगा? जो लोग ठीक समय पर लक्ष्मी के चरण नहीं सेवते वे हर समय दुखी रहते हैं।"

"यह देखना मेरा काम है।'

'तो सागर पार किसलिए गये थे? किसी की माग में तो तुम्हें सिन्दूर भरना ही होगा। उसे क्या खिलाओगे?"

इस पर नीलकण्ठ भाग्यवादी बन बैठा।

दानी ने कहा, ' सोने की खान चलकर तो नही ग्राती हमारे पास ।"

"मैं नौकरी नही करूँगा ।"

"यह तुम्हारा ग्रतिम फसला है ?

"ग्रन्तिम फसला भी हो तो क्या बुरा है ?"

"तो ले लो पत्थर से दाल भात, मुझसे न कहना ।"

' कसे न कहूँ ?"

तो मेरी बात माननी होगी ।

'सोच लूगा ।

"ग्रब ग्राए न रास्ते पर ! पहले क्यों न कहा ? '

दादी का मुख खिल उठा, जसे उसे विश्वास हो गया हो कि नील कण्ठ उसकी बात मान लेगा ।

सोना ने ग्राकर कहा "ग्राज दादी-पोते मे क्या क्या चल रही है ? कोई मुह मीठा कराने वाली बात, कोई बधाई की बात



मैं कोई द्रौपदी नही कि पाण्डव मुझे जुए मे हार जायँ !" सोना ने कौशल्या पुखरी की सीढिया पर एडियाँ मल-मलकर धोते हुए कहा, "कोई मुझे कौनसा बाण मारेगा ? रासलीला मे राधा बनना कुल-मर्यादा पर सात घडे पानी डालने जसा कैसे हुआ ?"

नागमती बोली "यह भल घर की नारी के लिए शोभनीय नही। छि छि ! तुम कुल-कलकिनी हो, सोना !"

'तो तुम लाग रासलीला देखने जाते ही क्यो हा ?"

'छि छि !" नागमती न हवा म हाथ उछालकर कहा, 'अण्डो की सफदी म दूध मिलाकर केशो को घुघराले बनाने का नुस्खा क्या लाई मयूरभज से, तुझम यह अकड आ गई ! तेरा मतलब है, कोई लडका नही रहा राधा बनने के लिए ? गोपियाँ बनने की सिखावन देगी, धोली की कन्याओ को ?"

इस पर कुछ स्त्रियाँ हँस पडी। एक ओर मे आवाज़ आयी, "नागमती ठीक कह रही है।"

"अपना भला-बुरा मैं पहचानती हूँ।' सोना न ठण्डे दिल से कहा। कुलवधुएँ और कन्याएँ पायलें माँजती रही। कुछ चुपचाप मेमी

लगाकर केश धोती रही, जैसे उन्हें सोना के आचरण पर कोई आपत्ति न हो।

गालों पर हलदी लगाकर सोना जल-दर्पण में अपना मुख निहारती रही।

जल में दौड़ते मेघों की छाया पड़ रही थी।

सोना स्नान करते समय मन ही-मन सोचती रही—धौली की कथा में मेरी कथा जुड़ जाएगी। लोग कहेंगे सोना ने रामलीला का रूप बदल दिया। एक दिन आएगा जब युवकों को गोपियों का वेष नहीं धरना पड़ेगा। लोग कहेंगे, गुरुचरण धन्य है जिसकी प्रेरणा से सोना राधा बनी। सौ-सौ घाट का पानी पीयेगी राधा बनने की कथा। उड़ीसा की पहली नारी, जो राधा बनी! क्या कहेगी, भले ही सोना मयूरभंज की राजनर्तकी की पुत्री थी और चाहती तो वह भी राजनर्तकी ही बनी होती पर उसने धौली के मूर्तिकार चतुर्मुख की प्रेरणा से धौली के गजेंडी जागरी से विवाह किया। लोग कहेंगे, एक दिन सपने में कन्हाई ने स्वयं दर्शन देकर सोना से पूछा—राधा बनोगी सोना? और सोना ने हाँ कर दी। उत्तर-दक्खिन पूरब-पच्छिम, चहुँ ओर चलेगी मेरी कथा। अगवार पिछवाड़, सर्वत्र। चन्दन-लेप के समान महकेगी।

नागमती कभी की जा चुकी थी।

सोना ने मन ही-मन नागमती को क्षमा कर दिया। 'अपनी अपनी समझ है।' उसने मन में कहा 'आज वह जिसे बुरा कहती है, कल अच्छा भी कह सकती है।'

स्नान करते-करते सोना को नीलकण्ठ का ध्यान आया। उसने सोचा—क्या नील भी मुझे बुरा कहेगा? और उसने नील की ओर से स्वयं ही उत्तर दिया, 'सोना भौजी, मैं तो किसी कला को बुरा नहीं कहता।' जैसे कन्हाई की बाँसुरी बज रही हो। जैसे यह रागिनी अपरिचित पथ पर चलने की टेर सुना रही हो। जैसे कोई कह रहा हो—पुरातन रासलीला को नूतन दृष्टि भंगिमा प्रदान करो। मानो बाल्य-काल

का वह बोल कान में आ रहा हो

कथाटिएँ कहूँ कथाटिए कहूँ
किम कथा ? बेंग कथा
कि बग ? काठ बेंग
कि काठ ? तेलि काठ
कि तलि ? घणा तेलि
कि घणा ? आखु घणा
कि आखु ? कन्तारि आखु
कि कन्तारि ? बुढि मन्तारि

[कथा कहूं, कथा कहूँ। किसकी कथा ? मेढक की कथा। काहे का मेन्ढक ? काठ का मेढक। काहे का काठ ? तेली का काठ। कौन तेली ? कोल्हू का तेली। कसा कोल्हू ? ईख का कोल्हू। कसी ईख ? 'कन्तारि' ईख। कसी 'कन्तारि ? बुढिया जादूगरनी।]

लोक-कथा के इस मंगलाचरण को वह अपनी कथा में ढालने लगी

कथाटिए कहूँ, कथाटिए कहूँ
किस कथा ? सोना कथा



दो सौ रुपये पेशगी आ गए थे। आठ सौ काम पूरा होने पर मिलेंगे। भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर का माडल बना रहे थे चतुर्मुख। आर्डर का काम ठहरा, वे मानो खीझकर कहते 'बरजोरी काम करना पड़ रहा है।

कोइली के लिए वर ढूंढने को उन्हें एक दो बार कटक जाना पड़ा। भले ही वे जानते थे कि कोइली का मन लोकनाथ मिस्त्री के पुत्र अपूर्व में रमा है।

भुवनेश्वर स्कूल के हेडमास्टर गगन महान्ती और मायाधर जब भी एक साथ मूर्तिशाला में बैठते, अंग्रेज की निन्दा-स्तुति का नाटक आरम्भ हो जाता। गगन को अंग्रेज प्रिय थे तो मायाधर मानो हर समय उनके विरुद्ध उधार खाए बैठे रहते।

गगन महान्ती बोले *'अंग्रेज इतना ही बुरा होता तो गीतांजली पर सवा लाख का इनाम क्यों देता?'*

मायाधर ने चिढ़कर कहा, जहाँ कहीं भी थोड़ा-सा सुख है, उस पर दुःख की छाया पड़ती है। हमारी सभ्यता बहुत पुरानी है। हमारा इतिहास भी कम पुराना नहीं। पर हम पराधीन हो गए और इसके लिए

अग्रज दोषी है।'

गगन महान्ती बोले, "अंग्रेज को बुरा कहने से तो कोई लाभ नही। नीलकण्ठ से पूछ लो। यह तो अग्रज के देश म रह आया।"

मायाधर ने आवाज मे वेदना का स्वर जगाते हुए कहा

"शास्त्र मे यह बात कही गई है कि हमारे देश म जन्म लेने को तो स्वग के देवता भी लालायित रहते हैं। आज तो दूसरी ही दशा है। आज भारत माता उदास है लाचार है। गोदी के लाल को एक घूट दूध नही पिला सकती। द्वार पर आए अतिथि को हम रास्ता दिखाने पर मजबूर हैं। भले ही अंग्रेज चीजो के भाव ज्यादा चढने नही देता। वह कितना चालाक है!"

गगन महान्ती प्रसग बदलकर बोले

'रासलीला का वह दृश्य मैं कभी नही भूलता जब गुरुचरण कन्हाई के वष म राधा की अलको म कलियाँ टाँकता है। और अब तो सोना ही राधा बना करेगी।'

चतुमुख ने छेनी चलाते हुए कहा, "साना का साहस सराहनीय है। जिसम जो भी कला है, बाहर आनी ही चाहिए।'

मायाधर न अपनी ही बात छेड दी

'नीलकण्ठ के विलायत जाने से पहले एक बार तुमने कहा था—हमारी बहुत सी कला-कृतियाँ अग्रज उठाकर ले गया और उनमे अपने देश के कला भण्डार भर लिए। तुमने तो यह भी कहा था कि अंग्रेज का बस चलता तो भुवनेश्वर के मन्दिर ही नही, हमारी अश्वत्थामा शिला भी उठा ले जाता। कोणाक से तो सुना है बहुत-कुछ ले गया। तुमने आकाश की ओर हाथ उठाकर कहा था कि विदेश मे हमारी कला-कृतियाँ ससुराल गयी कन्याओ की तरह रोती होगी। अब नीलकण्ठ से पूछ देखो न! वह तो उन्हे आँखो देख आया। क्या, नीलकण्ठ?"

नीलकण्ठ मुस्कराकर बोला

'लन्दन में हमारी कुछ मूर्तियाँ तो विक्टोरिया म्यूजियम म रखी हुई

हैं। उन्हें देश-देश में लोग देखने आते हैं।"

'तुम्हारा मतलब है हम उन्हें वहीं रहने दें?' मायाधर ने आवे
में आकर कहा 'समय आने दो। हम अपनी मूर्तियां वापस लाएँगे।'

"कला तो सबके लिए है।" नीलकण्ठ मुस्कराया अब वे मूर्ति
वहां रहें, तो भी कोई हर्ज नहीं।'

तुम पर भी अंग्रेज का जादू चल गया, मायाधर ने व्यंग्यपूर्व
कहा, 'तुम वह बात छोड़ो। पहले हमारी मूर्तियों की बात सुनाओ, जि
अंग्रेज उठा ले गया।'

'हमारी अनगिनत मूर्तियाँ तो वहाँ म्यूजियम के तहखाना में कबा
की तरह भरी हैं। उन्हें सजाकर रखने की किसी को फुरसत नहीं है।"

चतुर्भुज छेनी चलाते हुए बोले, 'पत्थर के साथ मन भी छिल रह
है। मैं सोचता हूँ, लोकनाथ जैसा मिस्त्री और कहाँ मिलेगा जो अपनी
स्वर्गवासिनी पत्नी की पूजा करता हो! नहीं तो लोकनाथ लाठी की मू
पर पत्नी का चेहरा कैसे बना डालता? हाथीदाँत की नक्काशी वाल
पीढ़े पर भी तो उसने दोनों ओर पत्नी का मुखड़ा बनाया है। उस पी
पर उसकी बहू बैठा करेगी। सास का मुखड़ा पीढ़े के दोनों ओर देखक
सास की परम्परा निभाएगी। मुँह से तो नहीं कहता पर मैं सब समझत
हूँ। अपूर्व के लिए कोइली की माँग करना चाहता है। यह तो नहीं होगा
भले ही कोइली आकर मुझसे कहे कि उसने तो लोकनाथ मिस्त्री के उस
पीढ़े पर बैठने की शपथ ले ली है।

मायाधर बोले 'कोइली के भाग्य में अपूर्व लिखा है, तो तुम कै
रोकोगे? भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर का यह मॉडल जल्दी जल्दी
पूरा करो, जिससे कोइली के विवाह के लिए रुपये आ सकें।'

गगन महान्ती भी चुप न रह सके

"मामा की भूमि से साल भर के लिए अन्न मिल जाता है। इसलिए
काका को चिन्ता नहीं रहती कि आर्डर का काम अवश्य आए। स्
मॉडल का आर्डर बुलके साहब का है। फिर भी अंग्रेज को बुरा कहोगे?"

"हम भी दाल भात मिल रहा है।' माधाधर ने हँसकर कहा, "काँसे-पीतल के बरतन कटक पुरी और कलकत्ते जाते रहे, फिर हमें किसी बुलके साहब का सहारा नहीं चाहिए।'

इतने में गाँव मुखिया पाँचू और लोकनाथ मिस्त्री आ निकले।

माधाधर बोले, 'इन दोनों की जोड़ी भी विचित्र है। हाथीदाँत की नक्काशी वाले पीढे को लेकर दोनों में झगडा हुआ, मुकद्दमा चला। दोनों एक साथ कचहरी जाते हैं, और एक साथ ही लौटते हैं।'

इस पर सब खिलखिलाकर हँस पड़े। नीलकण्ठ ने कहा, लन्दन में अलबीरा कहा करती थी—प्रश्न मत करो नहीं तो मिथ्या उत्तर सुनना पड़ेगा। यह अंग्रेज़ी भाषा की पुरातन लोकोक्ति है।'

सब गम्भीर मुद्रा में नीलकण्ठ की ओर देखने लगे। नीलकण्ठ उस पत्रिका के पन्ने पलटते हुए अलबीरा की याद में खो गया, 'वह वहाँ अपने ही झमेलों में फँसी होगी। कभी तो उसे भी मेरी याद आती होगी।'

बाबा और रूपक की छेनियों से ठक ठक का स्वर आता रहा। मित्र मण्डली में वार्तालाप का स्वर कभी ऊँचा हो जाता, कभी नीचा।

नीलकण्ठ अपनी ही कल्पना में बहा जा रहा था, 'क्या तू जानती है अलबीरा कि कोई तेरी राह देख रहा है ?'

मित्र मण्डली में हँसी-मज़ाक होने लगा। नीलकण्ठ का जी उठ चलने को हो रहा था। गली में कोई गाना जा रहा था

जुए करे झिकि मिकि
तो ठारे मो मन रिझीनामी की
भेजी आ कागत चिट्ठी
नागर रे !

[*भाग झकमक-झकमक करती है। तुम्हारे लिए मेरा मन रीझ गया। कागज़ की चिट्ठी भेजते रहना। ओ रे नागर !*]

नीलकण्ठ को ऐसा प्रतीत हुआ कि यह अलबीरा की आवाज़ है, जैसे वह लन्दन में बैठी उसके पत्र की बाट जोह रही हो।

मूर्ति की रूप छवि आज भी कायम थी, मानो काला पहाड के प्रहार के बावजूद मूर्ति के सौन्दय मे तनिक भी अन्तर न आया हो।

"तुम्हारी आँखो म भी मैंने वही भगिमा ग्नेर ली है कोइली, जो उस युग के मूर्तिकार ने पावती की आँखो मे दिखाई है। अपूव मुस्कराया।

'सच ? कोइली की आँखें पल गइ।

"सब दिन यह मूर्ति इसी मुद्रा म रहेगी। अपूव ने गम्भीर मुद्रा म कहा पत्थर कितना कठोर है मुद्रा उतनी ही कोमल।"

"पर मूर्ति की टूटी नाक साफ बता रही है कि काला पहान को कितना क्रोध आया था। वह तो हिन्दू रहकर ही मुसलमान शाहजादी से विवाह कराना चाहता था। पण्डित बोले ऐसी कोई व्यवस्था नही दी जा सकती। वह मुसलमान बन गया। फिर उसमे बदला लेने की आग भडकी। वह मूर्तियो की महिमा खण्डित करने निकल पडा।'

पर यहाँ ता ऐसी कोई कठिनाई नहीं। फिर भी देखता हूँ, तुम्हारे बाबा को वह कटक वाला नया वकील ही तुम्हारे लिए अच्छा लगता है। उनका पलडा उधर ही झुक रहा है। यह भी सुना है कि वह तुम्हे देखने इधर आने वाला है।

'उसे आने से तो मैं कसे रोकू ? और मेरा मन तुम जानते ही हो।'

'तुम चाहो तो बाबा के सामने अड सकती हो। तुम्ह जाना पड गया तो मेरी क्या दशा होगी ?'

यही तो चिन्ता की बात है। मेरा मन तुमसे छिपा नही। और देखो थोडा-बहुत काला पहाड तो हरेक पुरुप म छिपा रहता है। बाबा से वह देखूगी। वे न भी माने तो तुम इस जीवित मूर्ति की नाक तो नही काट डालोगे न !'

अपूव प्रसग बदलकर बोला, "कोई गीत सुनाओ कोइली !'

कोइली गाने लगी

हाथी कान दरपन

माहिनी लगाइ के देला पान
घरे नहिं ताकर मन
नागर रे !

[हाथी के कान जसा दपण है। किसने माहिनी लगाकर पान दे दिया ? घर मे सखी का मन नही लगता। श्रो रे नागर !]

मल्ली फूल गोता साते
मोहिनी लगाइ के देला तोत
पासोरी गलू तु मोते
नागर रे !

[मागरा के सात फूल। तुम पर किसने मोहिनी कर दी ? तुम मुझे भूल गए। श्रो रे नागर !]

अपूव बोला, 'यह शिकायत तो मुझे होनी चाहिए कि तुम पर कटक क वकील हरिपद ने ऐसी क्या माहिनी कर दी कि तुम उसी की होने जा रही हो ?"

'मेरी वेदना तुम नही समझ सकोग, श्रपूव !'

'ये केवल कहने की बातें हैं।'

कोइली गाने लगी

नुवा गिलास र पना
तोर लागी सींग दुरुजा मना
घर करी देल छौना
नागर रे !

[नये गिलास का शवत। तेरे लिए घर का दरवाजा मना कर दिया गया। मरा घर छिनवा दिया। श्रो रे नागर !]

अपूव ने कहा, "अब मैं क्या करूँ ? नये गिलास का शवत तो तुम कटक ले जा रही हो, हरिपद के लिए।'

'तो मैं न जाऊँ ? अब कह दो।"

"तुम जाश्रो। अथाह गगन म विचरो। और मेरा मन सूय की प्रचण्ड

किरणों को नही सह सकेगा कोहला ! इस पर स तुम अपना अचल तो उठा ले जाओगी न ?"

तो मैं न जाऊँ ? अब कह दो ।

"मैं क्या कह सकता हूँ ? मेरे हृदय म आग लगी है । मैं बस यहा कर सकता हूँ कि धुआँ बाहर न निकले ।

'एक बात मैं भी कह दूँ, अपूव ! रात उतर आने पर जस दीये की बाती और चदा की जोत जल उठती है, वसे ही हमारे दिल म विरह की आग जलती रहेगी । तुम कहो तो न जाऊँ ?"



राजा माने सो रानी, धरती मान सो पानी ! चतुमुख की यही आवाज है। बीते हुए कल वापस नही आते। मूर्ति पत्थर की भाषा है। वह रहा तुम्हारा पत्थर, मूर्तिकार होन का दावा है, तो मूर्ति गढकर दिखाओ। अपना हाथ, जगन्नाथ। तुम्हारी सवारी तुम्हारे दोनो पर हैं। अपने ही चले चला जाता है। मौन के गाछ पर शान्ति का फल लगता है। मधु सचय करने का मन है, तो मधु-मक्खियो के छत्ते पर ठोकर न मारो। अमगल विश्वास को जितना धिक्कारो, उतना ही कम है। मूर्तिकार अपने मन मे जसा सोचता है, मूर्ति सदा वसी ही नही बनती। जो पत्थर *छेनी-हथौडे का कहना मानता है फल पाता है। पत्थर के प्राण धनुष के* समान हैं, जो अत्यधिक ताने जान पर टूट जाता है। जसा मूर्तिकार, वसी मूर्ति। पत्थर कितना भी मूर्ति का ध्यान क्या न दिलाये, मात्र पत्थर की ओर देखते रहन से ही तो मूर्ति गढी जाने से रही। मूर्तिकार की समझ बूझ की परख उसके छेनी हथौडे से नही, तयार मूर्ति से ही होती है। पत्थर कहता है—छेनी-हथौडे से छिलना उतना दुखदायी नहीं, जितना एक अनाडी मूर्तिकार के हाथ पड जाना। गूदे की अपेक्षा छिलके पर झगडने वाले मूर्तिकार की मूर्ति निष्प्राण रहती है। पत्थर की

मूर्ति गढने वाले, साथ-साथ दिल पर भी दृष्टि डालना चल ! वह मूर्ति, जो मैं सबसे अच्छी गढ सकता हूँ, अभी तक निगढी ही पडी है।

ऐसी अनेक मूर्तियाँ चतुर्मुख की कला पर छाप लगाती आई हैं।

महानदी की ओर मुह करके कोइली को जाना पडा। अपूर्व मुँह बिसूरता रह गया। कटक वाला वकील ही नारायण को भी पसन्द था। कोइली की माँ ने भी अपने पति और ससुर की पसन्द पर ही स्वीकृति की छाप लगा दी। कुछ दिन विवाह की चहल-पहल रही।

दहेज म चतुर्मुख ने वह तीन फुट ऊँची मूर्ति भी दी, जिसम कोइली का ही मॉडल लिया गया था। दोनो हाथ सिर के पीछे जुडे हुए, मुख पर मुस्कान; आँखो मे जसे कोई प्रश्न सा लहरा उठा हो।

अपूर्व ने कोइली की उस मुद्रा म वही प्रश्न ढूढने का यत्न किया, जिसमे उसे थोडा ढाढस मिल सकता। जसे कोइली अपने बाबा से पूछ रही हो—तुम मेरी जोडी अपूर्व से क्या नही बना सकते ?

नीलकण्ठ की समझ म यह बात नही आ सकी कि अपूर्व अपने पिता से छिपाकर वह हाथीदाँत का पीढा कोइली को उपहार मे दे डाले। जागरी और गुरुचरण ने भी अपूर्व के इस प्रस्ताव का विरोध किया था।

नीलकण्ठ के माता पिता तो जस आये वसे ही कलकत्ते चले गए। वही तो उनकी तीन लोक से न्यारी मथुरा थी।

बचारा अपूर्व ! उसे लगता कोइली अब भी उसके दिल की कुण्डी खटखटा रही है। कई दिन तक वह निढाल-सा पडा रहा। काइली भले ही दूसरे से ब्याही जाती पर वह धौली म ही रहती या फिर भुवनेश्वर म। कटक तो दूर है। कोइली के दशन करने कौन नित नित कटक जाएगा ?

चतुर्मुख की बातें अपूर्व को घाव पर नमक छिडकने वाली प्रतीत होती। कटक के उस वकील पर अपूर्व को रह रहकर क्रोध आ रहा था। पर उसके लिए किसी अनिष्ट की कामना करना तो उसके बस का रोग न था। ऐसी कोई बात तो वह सोच ही नही सकता था, जो अन्त

मे कोइली के लिए अच्छी न हो। उसे लगता, सारा धौली द्रुत गति स घूम रहा है। जब वह साचता कि अब ता कोइली आँख म डालने को भी नही मिलेगी, उसे प्रिय-से प्रिय आवाज सुनकर भी लगता कि फाटक की चूल चीख रही है।

अपूर्व को अब याद आ रहा था कि कोइली उसकी बात सुनते-सुनत मुलायम सा हुंकारा भरती रहती थी। और उस समय तो कोइली की ठोडी का तिल भी मुस्कराने लगता था। न जाने कोइली मे ऐसा कौनसा जादू था। उसकी आत्मा म रूप और स्नेह की कस्तूरी छिपी रहती थी।

उसने अपने मन को समझाया कि कोइली की कविता तो धौली तक आ पहुँचा करेगी। मुझे चुप रहना चाहिए, उसने अपने मन का समझाया काहे बचारी की राह म काँटे बाए जाएँ ? काटा चुभता है, तो मुख स हाय निकलती है। वहा कटक म महानदी के किनारे अपने बँगले की छत की ओर देखते हुए उसके गल की नीली नसें वीणा के तारो के समान तन जाती हागी। मेरी याद उसे अवश्य सताती हागी।

वह चतुर्मुख स बहुत-कुछ पूछना चाहता था।

वह कोइली के लिए किसी पछी को सन्देश-वाहक बनाने की सोच रहा था।

वह कोइली के परो की आहट सुनने को तरस गया। वह धौली की धरती पर कोइली की पतली लम्बी परछाइ देखने को वचित हो गया। वह उसका स्वर सुनता रहता था—वह स्वर, जो काले बादलो मे सुनहरे सपनो की गोट लगा देता था।

वह मस्कारो की चौकी पर बठा साचता रहता—चुप, जसे कुहासा जम जाए।

कभी वह कोइली का सामने लगता—तुमने मान प्रतिष्ठा की डगर अपना ली। हमारे लिए छोड गई वेदना और कसक ! कसे हैं समाज के मूल्य ! तुमने इनके सामने घुटने टेक दिए ! दुख का अन्त नही। क्या कोई स्वप्न-सुन्दरी तुमसे अधिक निठुर हागी ?

कभी वह मन ही मन काइली की ठकुर-सुहाती करने लगता—तुम ससार की सवश्रेष्ठ सुन्दरी हो। तुम गीत लिख सकती हो—प्यार के नाजुक नक्काशीदार गीत। अल्हड प्रेमी के कान मे भुर करने वाल गीत। आँधी आए, मेह आए तुम्हारे गीत तो रुकेंगे नही।

कभी वह चिल्लाकर कहना चाहता

"सुन रही हो, काइली ?

कभी वह हताश होकर हवा म यह प्रश्न उछालता

"आराम से लेटी हुइ धरती के मुख पर झुककर गगन कभी अपने स्पश का जादू नही जगाता, तो फिर धरती क्या निर्मोही गगन के लिए हाथ उठाकर वेदना का स्वर जगाया करती है ?'

एकान्त मे राह चलते उसे प्रतीत होता कि कोइली की मूक परछाइ साथ-साथ चल रही है। जसे वे अश्वत्थामा चट्टान स होकर धौलगिरि के ऊपर जा पहुँचे हो और काइली कह रही हो—अब उतराई म मजा आएगा! जसे उसने स्नेह-कम्पित उगलियाँ उसके होठो पर रख दी हो और फिर सहसा उसके मुह से निकल गया हो—पाथुरिया गली की अपनी कहानियाँ हैं।

उसे याद आता कि एक बार पूनम का चाँद देखकर कोइली ने कहा था—चाँद एक है, पर इसकी परछाइ कौशल्या पुखरी म भी पडती है और दया नदी म भी। उस वद्यजी की बात पर हसी आ जाती जो शूद्रक रचित सस्कृत नाटक 'मृच्छकटक [माटी की गाडी] के नायक चारुदत्त की प्रशसा करते अघाते नही थे। किसी को नाटक म दिलचस्पी हो चाहे न हो, वद्यजी यह बताए बिना नही टलते कि चारुदत्त का उसके साधु स्वभाव और दानशील आदश ने कही का नही रखा था। उसका बसन्त सेना नामक एक वेश्या से प्रेम हो गया। नाटककार दोनो के प्रेम की सराहना मे पीछे नही रहा और अन्त म वेश्या का वधू का स्थान मिलकर रहता है। देखिए न! इस नाटक की मूल-कथा की पृष्ठभूमि म अत्याचारी राजा पालक के पतन और उसके स्थान पर आयक की प्रतिष्ठा की कथा

चलती है।

"तो वद्यजी, ग्रापन कोइली के साथ मेरे प्रेम का पक्ष क्यो न लिया ?
—यह प्रश्न कई वार अपूव के होठो तक आया। पर वद्यजी से यह पूछन की उसकी हिम्मत न हुई।

अपूव का मन दु ख की वेला मे तडप रहा था। अब कोई उसकी मदद नहीं कर सकता था, चाहे वह हड्डियाँ गला देता। दादा के विरुद्ध खडे होने का उसका मन होता, तो वह विवाह से पूव ही काइली को भगा ले जाता।

भय का देवता मानो अपूव के चारा ओर मुह चिढा रहा था।

सभी जानत थे कि अपूव का स्वभाव बहुत शान्त है। पर अब उसका अशान्त मन बार बार प्रश्न करन लगता, "मैंने वह पीढा विवाह के अवसर पर कोइली का क्यो न द डाला ?



जागरी सदा अपूर्व को यही समझाता, ' दुःख तो बारह बहानों से हमारा भेद लेने आता है। दुनिया उतनी बुरी नही जितनी तुम समझ बैठे। दुःख में बडी शक्ति है। कवि चण्डीदास कह गए— सुखेर लागिया ए घर बाधिनु, अनले पडिया गेलो अमिय सागरे स्नान करिलि सकलि गरल भेलो ! देखो न जब सुख के लिए बनाया घर आग में घिर जाता है और अमृत के सागर मे स्नान करने से सब विष बन जाता है तो यह विकट समस्या ही मनुष्य को रास्ता सुझाती है।

दुःख ही रास्ता साफ करता है यह तो मैं मानता हूं। अपूर्व स्वीकार करता 'अकुर वही है, जो अपने लिए अनुकूल माटी खोज ले।

एक दिन अपूर्व ने जागरी से कहा, "मुझे यहाँ से जाना होगा।

'कहाँ ? जागरी ने पूछा।

"बन्ध-देश जाऊँगा कलकत्ते, या कहीं और अभी इसका निर्णय तो नही कर पाया।

'बाहर जाकर क्या करोगे ?'

'सेवा-मार्ग अपनाऊँगा।

"हाथीदांत के पीढे का क्या होगा ?"

'साथ ले जाऊँगा।"

पाचू ने यह पीढ़ा हथियाने का विचार छोड़ दिया था। दिल का दौरा पड़ने से लोकनाथ मिस्त्री चल बसे तो पाँचू ने मुकद्दमा वापस ले लिया। बोला, 'जिससे लड़ाई थी, वह नहीं रहा तो मुकद्दमा लड़ने से क्या लाभ?

जागरी और अपूर्व साथ-साथ रहते—भुवनश्वर जायें चाहे अश्वत्थामा।

'स्नेह सनातन है, जागरी! जैसे समय सनातन है।

"यह तो मैं भी मानता हूँ कि नारी ही सृष्टि की आदि शक्ति है।"

सुख की रेखा अपूर्व के लिए विलीन हो गई थी। वह जैसे अपनी ही आवाज सुनने के लिए बार-बार जागरी से बातें करने लगता।

कहीं से ढोल की आवाज आने लगती। साफ, सुडौल भारी ध्रुव-पद। कोइली की अल्हड़, स्वस्थ और ऊँची हँसी उसके हाथ से निकल गई थी। वह पास रहती, तो ढोल की आवाज भी अच्छी लगती। अब तो न ढोल की आवाज अच्छी लगती थी न हँसी-मजाक का फेर। सब बात बदल गई थी, जैसे उलटी हवा चलने से मशालों की शिखाएँ रुख बदल लेती हैं।

कोइली की रह रहकर याद आती। मुख पर मेघ सौन्दर्य, नयनों में मुग्ध स्नेह भाव। जूड़े पर केवड़े का फूल लगा रखती थी। साड़ी की लपट में स्पष्ट हो उठती देह लता! रह रहकर ध्यान आता कि कैसे कोइली के नयनों में कभी लज्जा उभरती कभी आशंका कभी आनन्द-लहरी। उसके मुख पर हिलती-डोलती थी आनन्द-लहरी पाँच-पाँच सात-सात की पाँत में नाचती युवतियों के समान, आधा पग आगे पौना पग पीछे हाथ में-हाथ दिये, सिर कुछ-कुछ झुकाए। कोइली स्वयं भी तो इसी तरह नाचती थी, सखियों के साथ। कोइली कितनी प्रिय लगती थी जब वह गाती थी! ढोल की थाप पर चार सुरों का आरोह-अवरोह। वह पास बैठी होती थी तो यही प्रतीत होता था कि गगन के तारे समीप आ गए हैं और चन्दा भी बस सात हाथ से दूर नहीं।

उसके जी में आता कि कौशल्या पुखरी के घाट पर खड़ा होकर कोइली को पुकारे

माता कमल खिले पुखरी में कोइली जाग
कमल खिले जाग खिरणों के सोन सुहाग
जाग मान सुहाग कोइली जागी मन की आग

कभी चाहता था कोइली स्वयं कमल के समान खिलकर सामने आ जाए। कभी वह सोचता कोइली अभी आएगी और मगन घट में आम के पत्ते डुबोकर उनसे उसके मुंह पर छींटे मारेगी।

उसे कोइली की याद सता रही थी, जो अपना वचन न निभा सकी और अग्नि को साक्षी बनाकर हरिपद के साथ चली गई।

'चुप क्यों हो गए अपूर्व ?' जागरी ने पूछा।

अपूर्व ने उत्तर न दिया।

क्यों न कंध देश को चल दें ?

किस लिए ?

वहाँ एक छोड़ एक सौ एक कोइलियाँ मिल जाएगी।

मैं तो उम्र भर कोइली के लिए ही तड़पता रहूँगा।

'उधर कोइली भी तो तुम्हें भूल नहीं सकेगी। मैंने तो बाबा से बहुत कहा—कोइली का विवाह करो पर उसे पाथुरिया गली में ही रहने दो। मेरा संकेत तुम्हारी तरफ था।

कोइली मुझसे ब्याही जाती, तो पाथुरिया गली की हल्दी रंगा कहानी में चार चाँद लग जाते। कौन जाने उसमें क्या-क्या लिखा जाता!'

जागरी बोला क्या कोइली के बिना जीवन जीने योग्य नहीं हो सकता ? उसकी वाणी में आत्मविश्वास था।

अपूर्व की आँखों में आँसू आ गए।

नादान न बनो ! जागरी ने अपूर्व को धीरे बँधाते हुए कहा, 'पाथुरिया गली की कथा तो पाथियों की है जैसे हमारे चूल्हों की आग। तुम्हारी प्रेम-कथा तुम्हारी ही नहीं इसके पीछे अनगिन कथाएँ जुड़ी हैं।

अपूर्व को जैसे कोई भूली हुई बात याद आ गई।

"एक बार काइली ने कहा था—हम मरकर केवड़े के फूल बनकर खिलेंगे।'

जागरी ने हँसकर कहा यह तो बड़ी बचकाना-सी बात है। सुनो, मैं तुम्हें कवि जयदेव की वाणी सुनाता हूँ।' और वह 'गीतगोविन्द' का पद गुनगुनाने लगा

ललित लवंग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल, कूजित कुंज कुटीरे।

० ० ०

हर किसी के मुँह पर एक ही बात है

अपूर्व पाथुरिया गली से भाग गया !

चतुर्भुज बोले चार दिन बाद अपने आप लौट आएगा।'

'हमारा अन्तराल तो आज तक नहीं लौटा। वैद्यजी गिला करते।

जागरी ने यह तुकबन्दी चला दी,

हम पाथुरिया गली के वासी, घर उदास गमगीन सीढ़ियाँ।
भानुमती का जादू टूटा, माँग रही वरदान पीढ़ियाँ।
घर से कितनी दूर भागकर खड़ा हो गया हिरन डरा सा।
मैं अपूर्व की याद में गुम-सुम आँसू आँसू भरा भरा सा।

हर कोई यही कह रहा था 'अपूर्व पाथुरिया गली से दूर टिक नहीं सकेगा।'

कौशल्या पुकुरी के स्नान घाट पर जैसे अपूर्व का नाम ही रटन को रह गया हो। कहसा-कहसी चल पड़ती। वही आकुल-व्याकुल-से प्रश्न— अपूर्व कहाँ चला गया? कौन उसे सिर आँखों पर बिठाएगा?

'किस राह पर बँध गए उसके कदम?'

'किस द्वार का भिक्षुक बन गया?

"कहीं बैठा पीडा का अध्याय बाँच रहा होगा।"

"कहाँ जाकर मन का तम्बू गाड़ दिया ?"

'कौन समझेगा उसके तर्कहीन सकेत ?'

स्नान घाट पर ऐसे-ऐसे बोल रमणियों के होठों पर तिरते रहते। देव-मन्दिर के खुलते किवाडों जैसे बोल अपूर्व की याद में घुल-घुल जाते।

कभी कोई साधु अलख लगाता

अलख निरंजन ! भव भय भंजन !

किसकी माया किसका कंचन ?

जसोदा नन्दन !

कभी मथुरा, कभी गोकुल कभी वृंदावन !

साधु के हाथ पर चार पैसे रखकर कोई-न-कोई गृहलक्ष्मी पूछ बैठती "बताओ बाबा, हमारा अपूर्व कब लौटेगा ?

अपूर्व के लिए हर कोई चिन्तित था जैसे उनकी वस्तु खो गई हो।

जाना ही था तो हाथीदाँत का पीढ़ा साथ क्यों न गया ?

वह सीधा कलकत्ते गया होगा ?

'वहीं नौकरी कर ली होगी ?

अरे नौकरी किसने दी होगी उसे ?

जो भी गाँव से चला जाए उसके बारे में मुँह आई बातें करना लोगों का स्वभाव है। हुलू ध्वनि और शख नाद तो आवश्यक है जब वर कन्या के गले में माला डालता है। इसके बिना विवाह अनुष्ठान सम्पूर्ण नहीं होता। कोइली के विवाह में भी यह अनुष्ठान हुआ जब कटक के वकील ने अपनी वधू को माला पहनायी। अपूर्व की आँखों के सामने यह अनुष्ठान हुआ।

वैद्यजी सोचते—अन्तराल घर पर होता तो अब तक वह भी ब्याहा जाता।

दूधो नहाओ पूतो फलो ! यह आशीर्वाद जाने कब से चला आ रहा था। पर इसके लिए विवाह तो आवश्यक था।

लोकनाथ मिश्री का वंशधर घर से भाग गया, जैसे एक मुहूर्त में वैद्यजी का सुपुत्र अन्तराल भाग गया था। इतने वर्षों बाद वह मुहूर्त फिर आ गया। पहली घटना के साथ दूसरी घटना का मेल बैठ गया।

अन्तराल लौटा नहीं, अपूर्व चला गया।

लगता था धौरी उन दोनों के लौटने तक उदास रहेगा।

वैद्यजी को न रामायण महाभारत अच्छी लगती थी न नागमती की कही अनकही। अब सब जादू-टोना व्यर्थ हो गया। वे बार-बार जाकर नीलकण्ठ से कहते, "अपूर्व को ढूँढ़कर लाओ। अन्तराल मिल जाए, तो उसे भी खींच लाना।'

"हाट-बाट के सपने उदास हो गए, वैद्यजी! नीलकण्ठ यही उत्तर देता, 'अब मैं उन्हें कहाँ ढूँढ़ूँ? वे न आएँ तो मैं अन्तिम साँसों तक तड़पूँगा।

"मैंने नहीं सोचा था कि इतना दुर्बल चित्त सिद्ध होगा अपूर्व। वह भी कोई मनुष्य है, जो दुःख की काली चट्टान पर पैर न जमा सके!"

'घर से भागकर अपूर्व ने अच्छा नहीं किया।'

"मेरे पास तो कहने को कुछ नहीं रहा। अपूर्व के पैरों की चाप सुन पाऊँ तो मेरे कान धन्य हो जाएँ, फिर एक दिन अन्तराल भी लौट आयगा शायद!"

'दोनों ही लौटेंगे—कोई आगे कोई पीछे।"

चतुर्मुख का दृष्टिकोण और था। वे वैद्यजी से यही कहते, तो क्या मैं कोइली का जीवन बरबाद कर देता? वैद्यजी, आप भी भोली बातें करते हैं। हरिपद के घर में कोइली जो सुख पाएगी, वह क्या उसे अपूर्व दे सकता था? अपूर्व तो सात जन्म में भी कोइली को इतनी सुख-सुविधा न दे सकता था।



कटक से कोइली की खबर आती रहती थी। विवाह के बाद वह कई बार धौली आयी। अपूर्व के भाग जाने का उसे भी दुःख था। पर अब तो वह दूसरे की हो चुकी थी।

एक दिन कोइली ने सोना से कहा, मुझसे अपराध हुआ।

'तुम्हारी कविता का तो लाभ होगा कोइली!' सोना ने चुटकी ली तुम चाहो तो अपूर्व को अपनी कविता का विषय बना सकती हो।

लगता था अपनी बात कहने के लिए कोइली के पास शब्द नहीं रहे। उसने केवल इतना कहा, कला सम्पूर्ण रूप में स्वयं नारी है।

'नारी? सोना ने चकित होकर कहा जिसके नेत्र-बाण से कोटि-कोटि विश्वामित्रों की तपस्याएँ भंग हो सकती हैं?

कोइली ने इसका कोई उत्तर न दिया। उसे लगा सोना का व्यंग्य एक साथ अनगिन घाव लगा गया।

दूसरे ही दिन वह कटक लौट गयी। हरिपद से भी उसकी उदासी छिपाए न छिप सकी। वह भी जानता था कि अपूर्व धौली से भाग गया और अब उसके लौटने की बहुत आशा नहीं है।

अपूर्व की रेखा कोइली के मन पर इतनी गहरी थी कि उधर मे

उसका मन हटता ही न था। जब एक अभाव में अनमनेपन का शाप लग गया हो—अर्थात्, गहरे अनमनेपन का शाप। पुखरा की साड़ियों की तरह जैसे अनमनेपन की साड़ियाँ नीचे को उतर रही हों। कई बार उसे लगता, अपूर्व उसे पुकार रहा है—'तुम सुनती ही नहीं, कोइली ! मैं कब से चिल्ला चिल्लाकर कण्ठ सुखा रहा हूँ !' वह मानो उसे समझाती—'अब मुझे भूल जाओ, अपूर्व ! मैं तुम्हारी कृतज्ञ रहूँगी। ऐसा न हो कि हरिपद के हाथों तुम बुरी तरह पिटो। मुझे भूल जाओ। मर्यादा का कुछ तो विचार करो।' जब अपूर्व कहता—'जनम अवधि हम रूप निहारल।' कोइला अब इसके सिवा क्या उत्तर देती—'मेरा रूप तो अब हरिपद के लिए है। अब तुम मुझे रिझा नहीं सकते। मुझ पर हरिपद का अधिकार है। तुम पर उसी की रोक लग गई।'

मानो कोइली की कल्पना में अपूर्व की आँखें सजल हो जातीं। और जब वह उसे समझाती—'कोई देख लेगा। तुम भाग जाओ।

पहले अपने मन का चोर तो निकालो !' जब अपूर्व आग्रहपूर्वक कहता, 'नव अनुरागिनि राधा किछु नँहि मानय बाधा ! एक युग तक हमारी कथा चली। अब मैं कैसे भूल जाऊँ ? मैं तो यही कहूँगा कोइली !—नव वृन्दावन नव-नव तरुगन नव-नव विकसित फूल ! मेरी बात गाँठ बाँध लो। मैं तुम्हें भूल नहीं सकता खो नहीं सकता। हमारी राह में कोई व्यवधान नहीं रहेगा। मुख से आँचल हटाओ। मैं तुम्हारा मुख देखूँ। स्नेह की छाया में तुम्हारी कथा सुनूँ। आओ, मैं तुम्हें फूल का अर्घ्य दूँ।'

'अब यह फूल का अर्घ्य सजाना व्यर्थ है।'

'सोचा था हम जन्म-जन्मान्तर तक एक-मन, एक प्राण होकर रहेंगे।'

'अब मैं यह नहीं सुन सकती। लाख तुम्हारा स्नेह छन्द भरे स्वर में गूँज उठे।'

'तो तुम वह दीया बुझा दोगी, जिसे हमने इतने यत्न से जलाया

था ? क्या हमारी कथा यों चुप हो जाएगी ?

'अब तो यह बात काँटे-सी चुभ चुभ जाती है ।

मैं तो तुम्हारी पूजा करता रहूँगा । मेरी आँखों की पुतलियों में अपनी छवि अंकित कर दो ।

'अब यह याचना व्यर्थ है । दूर हट जाओ । मेरी आज्ञा शिरोधार्य करो । समझ लो कि वह मुहूर्त कभी का टल गया ।

'तुम्हारा नाम लिखकर तकिया के नीचे रख छोड़ता हूँ, कोइली ! इतनी दूर से मैं तुम्हारे केशों से आती सुगन्ध मैं सूँघ लेता हूँ ।

नहीं-नहीं, अब मेरे केशों की सुगन्ध तुम्हारे लिए नहीं है । समझ लो कि बचपन की कथा का वह क्षण वहीं कहीं थककर चुक जाता है ।'

मैं एक ही समय दो नावों पर पैर रखूँ मुझसे यह आशा छोड़ दो ।

तुमने तो कहा था हम नूतन स्वर्गलोक रचेंगे । लगता है वह स्नेह सुलभ नहीं रहा ।'

कोइली यह तो नहीं चाहती थी कि अपूर्व को एकदम भूल जाए । यह वैसे भी सहज न था । वह सोचती कितनी दूर बह आये थे हम ! अब जागो मेरी कविता ! अंकित कर दो वह कथा शब्दों में संवेदनों में ।

कविता में कोइली पूछती चीथड़े और रेशम पास-पास क्या साँस लेते हैं ?

कभी वह यह प्रश्न उठाती, पन्द्रह सदियों पहले चीन देश में जो पोथी छापी थी वह क्या कोई प्रेम-कथा थी ? कभी वह सन्ध्या का दम घोटने वाले आँधी-तूफान का चित्र अंकित कर देती गुफा में सोते सपने जागे ! नई स्वर्णिम वेला आई ! कभी वह टेर लगाती, ' मैं युगान्त की कविता हूँ । पाताल में उतरो मेरे साथ मेरे सपनो !

साड़ी के चित्रित अंचल-सा मेरी प्रतिभा । उषा-सूक्त-सी मेरी प्रतिभा । आप कहेंगे नित नूतन कविता की जय ! कोई अध्यापक सहसा पूछेगा— हाथीदाँत के पीछे वाला इसमें ऐसा क्या आशय है ? अमराई में बौर

आना, अजी महाशय !'

कभी कोइली यों अपने भाव अंकित करती

जनम-जनम क्या इसी तरह जीना है ?
माघी माटी में नित-नित खिलती हैं साँस
जैसे नदी किनारे कास
आ रे अनागत, पाँखें खोल
आ रे पत्थर, तू भी बोल
जल प्रपात-सा किसका स्वर ?
उगा चन्दना का दिनवर।
इस शिल्पी ने मेरा कुण्ठित मन चीन्हा है।

कभी उसे बाबा के शब्द याद आते "निजी संग्रहों में मूर्तियों की ठीक से रक्षा हो पाएगी, ऐसा मैं नहीं मानता। अमुक अमुक कला प्रेमी कटक में जाने कब से मूर्तियाँ संग्रह करते आ रहे हैं पर जब भी अवसर पाते हैं, सस्ते भाव की मूर्ति विदेशी मानिनों को महंगे दामों बेचने से नहीं चूकते।'

एक दिन कोइली ने हरिपद को बताया "बाबा कहा करते हैं—मूर्तिकार के लिए अपनी मूर्तियों को अपने से अलग करना बहुत दुखदायी होता है। मेरी मूर्तियों की कुछ अनधिकृत प्रतिकृतियाँ दूसरों ने बनाकर बेचने का धन्धा अपनाया है, यह देखकर दिल जलता है।'

"बाबा की मूर्तियों की छाप मेरे मन से हटती ही नहीं। तुम बाबा पर एक कविता लिखो। हरिपद ने आग्रहपूर्वक कहा।

'लिखूंगी। कई बार सोचा है।

हरिपद ने गम्भीर स्वर में कहा, "चिन्ता की बात तो यह है कि जहाँ लेखक को प्रकाशक द्वारा प्रकाशित पुस्तक के प्रत्येक संस्करण पर बिक्री के अनुसार रॉयल्टी मिलती रहती है, जो उसके उत्तराधिकारियों तक पहुँचती है वहाँ मूर्तिकार और चित्रकार बड़े घाटे में रहते हैं, क्योंकि जब वे अपनी कोई कृति किसी के हाथ बेच डालते हैं, तो सदा के लिए

उसके स्वामित्व से ही नहीं, गायन्नी के रूप में आने वाले लाभ से भी वंचित हो जाते हैं।

"यह स्थिति तो कल्पना होगी।

"कलाकृति के सम्बन्ध में एक और दृष्टिकोण भी हो सकता है। कोई एक व्यक्ति किसी मूर्तिकार या चित्रकार की कृति का एकाकी स्वामी बनकर बैठ जाए तो यह पूरे समाज के साथ घोर अन्याय है। एक अच्छी मूर्ति या चित्र के प्रकाशन द्वारा उसका रस-परिचय लाखों घरों तक पहुँचाया जा सकता है। विदेशों में ऐसे प्रकाशन राष्ट्रीय दृष्टिकोण से किये जाते हैं। कलकत्ते में नेशनल लाइब्रेरी में मैंने लियानार्डो द विन्ची के चित्रों पर आधारित बहुत ही सुन्दर प्रकाशन देखा था जिसका मुद्रण पेरिस में हुआ था। रोदाँ की मूर्तियों पर भी एक बहुत ही सुन्दर पुस्तक देखने को मिली थी, जिसे कलकत्ते से मँगवाकर मैं बापा के जन्मदिन पर उन्हें भेंट करना चाहता हूँ।

अवश्य भेंट कीजिए वह पुस्तक। मेरी भेंट होगी मेरी वह कविता यदि मैं लिख सकी।'



पाथुरिया गली के बड़े बूढ़े अक्सर यह कह डालते थे "चोरी, चुगली और व्यभिचार से बचे रहो तो मामला ठीक है। बाकी स्वाद के लिए तो खुली छुट्टी है।' यह भी कहते थे 'दो कुटुम्बों के बीच मुँह मुँह नाता रिश्ता होना न मानसिक विकास के लिए हितकर है न सामाजिक स्वास्थ्य के लिए।' तीर्थयात्रा का प्रसंग सबको प्रिय था। जो पाप किसी के हाथों हो गए, उनका इलाज था तीर्थ-यात्रा। समाज के किसी कड़े नियम की अवहेलना हो जाए, तो प्रायश्चित द्वारा समाज को सन्तुष्ट करो। देवी देवता के सामने झुके रहने में ही लाभ माना जाता। धार्मिक रीति रिवाज में परिवर्तन की बात भूलकर भी न सोची जाती।

नीलकण्ठ के विलायत से लौटने पर चतुर्मुख ने समाज को सन्तुष्ट करने के लिए प्रायश्चित की बात उठायी तो नीलकण्ठ को हँसी आ गई थी। पर पाथुरिया गली के लोग तो तभी सन्तुष्ट हुए, जब उसने समुद्र-यात्रा का उपचार करते हुए देवता से क्षमा-याचना की और लोगों के लिए भोज भात का प्रबन्ध किया।

"धर्म में रूढ़ियों और अन्धविश्वासों का क्या काम?" नीलकण्ठ

सान्सपूवक कहता । पर जसे घर का कबाड बाहर फेंकने की बात बहुत कम लोगो की समझ म आती है पाथुरिया गली क लोग हँस छाडत ।

परिवतन के लिए जो आग्रह और साहस चाहिए, उसकी कमी नीलकण्ठ को बहुत खटकती थी। पाथुरिया गली पुरातन को कायम रखने के पक्ष म थी, और इस भावना के पीछे सबस अधिक एक प्रकार के अन्धे भय का हाथ था। वही कुलाचार, वही व्रत-उत्सव, वही अन्ध विश्वास—इन्ही का श्रद्धापूवक पालन करना होगा। इसके विरुद्ध वह कोई बात कहता, तो बाबा उत्तर देते, तक और शका की उँगली पकड कर चलोगे, तो पूरे नास्तिक बन जाओगे।"

'तक-शुद्ध दृष्टि क्या इतनी ही बुरी है बाबा? नीलकण्ठ एक जिज्ञासु की तरह कहता "क्या आग के ऊपर से राख हटाना भी नास्तिकता है?'

बाबा मुस्कराकर कहते पुरातन का अनादर तो भूलकर भी न करो।"

"पुरातन के प्रति तो मेरे मन म मुड मुडकर कृतज्ञता जाग उठती है। और भक्ति भी सिर उठाती है बाबा!

लेकिन बाबा के मुख से बचपन म सुनी हुई उस बात पर तो उसे खुलकर हँसने की आदत थी। जब कलकत्ता से पुरी तक रेल की पटरी बिछायी गई और रेलगाडी के दशन हुए तथा धुआँ छाडता इजन सामने आया, तो भोले भाले लोगा के मन म वही देव पूजा वाली भावना जाग उठी। आज यह बात कितनी हास्यास्पद प्रतीत होती थी कि उन दिनो दूर-दूर से लोग पूजा की थाली म नारियल लेकर आते थे। और यह प्रसग तो वाकई अच्छा खासा चुटकुला था कि उन दिना पाथुरिया गली का कोई भी व्यक्ति भुवनेश्वर के रेलवे स्टेशन पर गाडी के डिब्बे मे चढने स पहले डिब्बे की देहली छूकर वह हाथ माथे स लगाना अपना कतव्य समझता था।

रेल के इजन पर नारियल चढाने की बात भी आज किसी चुटकुले से कम न थी। यह बात अपूव को हँसाने के लिए काफी थी। मगर

आज अपूव का किसी को पता न था।

पाथुरिया गली म कहाँ कहा सास-बहू मे तू-तू मैं-मैं हुई या किस किस घर मे क्या-क्या पका, साँझ उतरने से पहले ही खुली पुस्तक की तरह जग-जाहिर हो जाता था। नीलकण्ठ यह बात अपने पत्र म बीरा को कई बार लिख चुका था।

बीरा अपने पत्र मे पूछती "क्या अब भी गर्मियो के दिनो म कच्चे आम का भूनकर बनाया हुआ 'पना'[1] पीने का शौक है ?"

नीलकण्ठ दिल खोलकर अपने पत्र म अलबीरा के अनुभव की दाद देता। वह उसे विश्वास दिलाता कि विलायत से लौटने पर जब वह धौली गाव आएगी तो उन दिनो कच्चे आम का मौसम रहने पर उसे भी अवश्य आम का 'पना' पिलाया जाएगा।

पत्र म नीलकण्ठ यह भी लिखता कि बुढापे के बावजूद बाबा का एक भी दात न टूटा, न कमजोर हुआ। वह यह भी लिखता कि बाबा ने उसकी बहन कोइली का विवाह कटक के एक वकील से करके घोर अपराध किया, जबकि वह जानते थे कि पाथुरिया गली के लोकनाथ मिस्त्री के लडके अपूव को वह सच्चे दिल से चाहती है। एक पत्र म उसने कोइली के विरुद्ध भी बहुत जहर उगला जिसने बुजदिली दिखाकर बेकार उस बेचारे अपूव का घर छोडने पर विवश कर दिया। वह यह भी लिखता कि पाथुरिया गली मे हर कोई अलग अलग कल्पना का घोडा दौडा रहा है, फिर भी यह पता नही चलाया जा सका कि इस समय अपूव कहा रहता है।

सभी जानते थे कि चतुर्मुख को महत्त्वाकाक्षा का रोग नही लगा। पर कोइली की दादी को प्रतिष्ठा का लाभ रहना। वह सदा यही सोचती कि घर मे सोना बरसे और फिर वह परोपकार का यश प्राप्त करे। गली के सावजनिक कामो म जी-जान से रस लेना दादी को सदा प्रिय रहा। उसके मन म सबके लिए स्नेह की गगा बहती थी।

१ शबत।

आकाश की ओर गमन करने वाले मदिरो के शिखर तो हम सदा प्रिय रहेंगे। चतुर्मुख ढेंगी मकान चलाते कहते, "बचपन म मुझे दो ही कल्पनाएँ पसन्द थी—पहाड खोदकर सुरग बनाना और पुल तयार करना। बड होने पर ये दोना काम मुझसे दूर रहे।"

नीलकण्ठ मूर्ति बनाने समय कहता, 'लन्दन म अलबीरा यह सूक्ति नही भूलती थी—जो पदल चलता है उसी की यात्रा सबसे अच्छी होती है।

'अलबीरा का यह आग्रह तो मुझसे भी छिपा नहीं,' बाबा आँखो से चश्मा उतारकर उसे साफ करते हुए कहते 'जब भी वह अपने पिता बुलके साहब के साथ यहाँ आयी, उस मैंने पदल चलन की शौकीन पाया। वह तो कोई पूव जन्म की इण्डिया नही कन्ध-कन्या प्रतीत होती है।

उठती जवानी म बाबा न कन्ध-देश की एक पदल यात्रा की थी यह बात वे नीलकण्ठ को सविस्तार बता चुके थे और मिशनरियों द्वारा कन्ध जाति म धर्मान्तर का आदोलन उन्हें बहुत अखरता था।

बाबा कहते थे 'कोई प्राणी जितना अधिक दूर का हो उसके प्रति हमारा मन उतना ही अधिक खिचता है।

जागरी हँसकर कहता, घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध! और फिर वह यह तर्क प्रस्तुत करता 'जो बात दूसरे लोग कर सकें, उसे हम सब कर सकते है।"

जब कोई सीता के रासलीला म उतरने का प्रसग ले बठता तो जागरी झेंप जाता। यह बात छिपा न रहती कि भले ही चतुर्मुख के कारण उसने विरोध नही किया पर वह इसे ठीक नही समझता।

अपनी बात सुनाते समय हर प्राणी यह चेष्टा करता कि इसमे गली की पुरानी यादो का रग आ जाए। लोग लाख सोचते कि अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना गलत बात है, फिर भी आत्म प्रशसा की पुट आये बिना न रहती। ऐसे लोगो की आलोचना म जागरी सदा यही टकार लगाता

'अरे भया खुद अपने नाम 'सर्टिफिकेट' लिखना यहाँ से सीख आए ?'

पास से गुरुचरण थाप लगाता

"अपने का महान् सिद्ध करने के लिए नहीं, बल्कि दिल का हाल बताने के लिए बात करो, यही तो पायुरिया गली की सिखावन है।

पास बैठा कोई प्राणी चुटकी लेता

'क्या आप यह नहीं मानते कि मौन की अपेक्षा सुनार की कला ही अब बोलती है ?

फिर कोई कहता

"भया यह तो जमीन जोतने वाली बात है। जितना गहरा हल चलाओगे, जमीन का उपजाऊपन उसी हिसाब से बढ़ता जाएगा।'

एक दिन नीलकण्ठ अपने अड्डे पर काम करते-करते जागरी के आग्रह पर लन्दन का प्रसंग ले बैठा

"सुनो जागरी, उस दिन लन्दन की सोथर आर्ट गलरी में इतनी भीड़ थी कि तिल रखने को जगह न थी।

क्या मामला था भया ?' जागरी ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"देश-देश के श्रेष्ठ चित्र-व्यवसायी वहाँ आये हुए थे और ज्यादा भीड़ भड़क्का तो उन सनकी लोगों के कारण था जो चित्र खरीदने के लिए जेब में पैसे नहीं रखते थे, फिर भी वे चित्र-कला के रसिये थे। तरह-तरह के चित्रों की अपनी दुनिया थी।'

"ये कीमती चित्र होंगे ?"

'सुनो तो, नीलाम करने वाले के डंडे की चोट पर ये चित्र बिक रहे थे। बड़े-बड़े 'आर्ट-डीलरों' की आँखें नाच रही थीं।'

जितनी देर चली यह नीलामी ?"

'दूसरे बहुत से चित्र बिकते तो बहुत देर न लगी, पर मजाने के एक चित्र पर तो सब-के सब आर्ट-डीलरों में होड़ शुरू हो गई।'

'आखिर कितने में बिका वह चित्र ?

"सात हज़ार पौंड पर उस चित्र का निपटारा न हुआ। नीलाम की बोलियाँ ऊपर-ही-ऊपर उग्ती गइ। वह था नीली पाशाक वाले किमान का चित्र।'

'आखिरी बोली क्या रही ?

"एक लाख चालीस हज़ार पौंड।

"हरि बोल !

"तुमने यह नही पूछा कि मेज़ाने था कौन ? सन् १६०७ क जाडे की एक बर्फीली रात म सेज़ाने इस दुनिया स चल बसा। किसी ने उसकी मृत्यु का शोक न मनाया। न कोई उसके लिए रोया न किसी न उसकी कब्र पर फूल चढ़ाए।'

' और तुम कहते हो वह बहुत बडा चित्रकार था ?

'सुनो तो। मेज़ाने जीवन भर समाज द्वारा ठुकराया जाता रहा। उसके हिस्से आया अपमान या फिर घृणा का तूफान। सरकारी लोगा ने ही नही उस युग के कला-आलोचकों ने भी जमकर उसका विरोध किया।

"उसका कसूर क्या था ?

'यही कि उसने कला की परम्परागत मान्यताओं और कृत्रिम सीमाओं के विरुद्ध विद्रोह किया। उसकी यही कोशिश थी कि कला को जीवन के समीप लाया जाए। आखिर एक दिन सज़ाने को पेरिस म भाग जाने के लिए मजबूर होना पडा। उसके बाद वह अँधेरे और गरीबी म खो गया।

फिर क्या हुआ ?

'निजन ग्राम के आँचल म गरीबी का जीवन बितात हुए भी सज़ान ने अपनी साधना न छोडी। पेरिस से निर्वासन के ये लम्बे पच्चीस बरस उसने चित्रों की दुनिया म बिता दिए।

"कमाल है !

'धन नही, कीर्ति नही स्नेह नहीं परिवार नहीं। केवल गरीबी की कुछ तस्वीरें ही सज़ाने की पूँजी थी। जिन चित्र-शिल्पियों का उस युग

क परिस म दौरदौरा था उन्होंने सेजाने को पागल करार दिया।

"और उसी पागल सजान का एक तस्वीर सतालीस हजार पौंड म बिकी ?'

"यही तो जमाने क रग ह जागरी ! मैं कहता हूँ कोई आज सेजान की कब्र के पास जाकर यह कह, तो क्या कब्र म सोते हुए पागल चित्रकार को इसका विश्वास हो सकेगा ?'

"मेरा मन तो यह कहता है कि अगर कोई ऐसी हरकत करता भी तो पागल चित्रकार की कब्र क भीतर से एक अट्टहास सुनायी देगा।

"हाँ तो मैं कह रहा था जागरी, कि सेजान का यही अपराध था कि वह अपने युग से, अपन समय से बहुत आग था। अब इस पर मुझे केवल यही टीका करनी है कि अगर कलाकार इसी तरह लाछना, वचना और कगाली की मार सहते हुए भी समय स आग न चल, तो कला लम्बे डग कसे भरेगी ?

तुम्हारा मतलब है, समाज सदा कलाकार क पीछे चलता आया है ?'

"इस सत्सग म पाखुरिया गली देश-काल के भेद लाघती आइ है भया !' कहते हुए जागरी ने गाँजे का दम लगाया।

नीलकण्ठ बोला, 'सेजान की कथा मुझे अच्छी लगी। आज वह जीवित होता तो हम भी उसे अपना परिचय लिख भेजते।'

जागरी ने हँसकर कहा

क्या आत्म-परिचय की भूख ही सबसे बडी भूख है ?

गुरुचरण ने प्रसग बदलकर कहा

आप लोगों को दूर की कौडी ढूढ लाने की इतनी चिन्ता है, पर यह बात क्या नहीं सताती कि अपूर्व घर छोडकर चला गया ?"



अपूर्व कहाँ है, इसकी कोई खोज-खबर न थी। कई मास बीत गए। धौली अपूर्व के वियोग में उदास थी।

गगन महान्ती कहते, "उस देवता को तीन बार प्रणाम जो हमें बता दे कि हमारा अपूर्व कहाँ है।

'उसे कितना क्षोभ हुआ, कैसे न होता? बढ़नी उत्तर देते, पर वह घर से क्यों भाग गया? मेरा वश चलता तो बाबा को राजी कर लेता।

'बाबा तो कभी न मानते। अब तो यह चर्चा व्यर्थ है। कोदली ब्याही जा चुकी है। अपूर्व को लौट आना चाहिए। उसके लिए कन्या की तो कमी न होगी।

लगता था अपूर्व के लिए धौली छल छल आँसू रोती है। धूप-छाँह की आँख मिचौनी को भी जैसे अपूर्व का वियोग छू गया हो। कठिन चट्टानें भी जैसे उदास हो उठी हों। जैसे एक गहरा दर्द सहने की बेला टाले न टलती हो। जीवन का चिर-सत्य जैसे धौली के सिंहद्वार पर आकर खड़ा हो गया हो।

यह अभिशाप कैसे दूर हो बढ़नी जी? गगन महान्ती बार-बार

पूछते। उस समय मानो हाट-बाट करवट बदलकर उत्तर देने को उत्सुक हो उठते। किसे खबर थी, धौली ने कितना सहा है।

वद्यजी अपूर्व की बात करते-करते कहते, "मैंने हाल ही में कहीं पढ़ा था—मनुष्य के जीवन-पुष्प की अनेक पखुड़ियाँ हैं और एक के कुम्हला जाने से दूसरी बहुत देर तक हरी नहीं रह सकती। लगता है, गर्वीले स्वभाव के कारण ही अपूर्व ने गाँव छोड़ दिया।"

गुरुचरण ठण्डी साँस लेकर कहता

'न उसने किसी से सहानुभूति माँगी न दुहाई दी, न किसी को मन का भेद बताया। उठाया पीढ़ा और चोरी-चोरी घर से निकल पड़ा। उससे तो पाचू ही ठीक निकला, जिसने लोकनाथ की मृत्यु के बाद तुरन्त मुकदमा वापस ले लिया था।"

गगन महान्ती भी अपना स्वर मिलाए बिना न रहते

"अब वह जहाँ भी रहता मन की घुटन से पार नहीं पा सकेगा, और उसकी भावनाएँ पोथी के समान बन्द रहेंगी।'

गगन महान्ती के विविध रंगी व्यक्तित्व में वेदना का स्वर सबसे उभरकर आता था। स्कूल में सबको ठण्डा-मीठा रखने के प्रयत्न में वे वर्षों से सफल होते आये थे। उनकी दूसरे विवाह की सबसे छोटी लड़की थी मीनाक्षी, जिसने इसी वर्ष मैट्रिक की परीक्षा में सबसे अधिक नम्बर लिये थे।

एक दिन वद्यजी की दुकान पर बैठे-बैठे गगन महान्ती बोले 'अपूर्व वापस आ जाए तो मैं उसके साथ अपनी मीनाक्षी ब्याह दूँ।"

वद्यजी ने मुस्कराकर कहा

"विचार अच्छा है। अब तो अपूर्व को आ ही जाना चाहिए।'

बातों का क्रम मकड़ी के ताने से होड़ लेता रहा। वद्यजी जानते थे एक प्रकार से मीनाक्षी के कारण ही उनका अन्तराल घर से भाग गया था। उन दिनों अन्तराल ने मीनाक्षी की ओर ताक-झाँक की जिससे गगन महान्ती ने वैद्यजी से शिकायत की। वद्यजी ने घर जाकर बात की।

नागमती क्रोध से लाल पीली होकर अन्तराल पर बरस पडी। उस का यह प्रतिक्रिया हुई कि अन्तराल घर से भाग गया। और अब रगन महाजनी उसी सौनामी को अपूव से ब्याहने को तयार थे।

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर धुआँ छोडते हुए कहा आज एक यात्री ने अपनी भाषा का एक बात सुनाया जो मैंने याद कर लिया। आप भी सुनिए

बात न भइ बात है
चकवा की बरात है
हूँ-हुकारा देत जाना
कथा को चलाते जाना
एक हुकारा छूट गया
चकवा कण्ठ फूट गया
पाप चढा जिसके माथ
ऊँघत बबुआ के माथ

मैंने उस यात्री से कहा— यह पाप जिसके माथ का उत्तर मैं और तरह से दूगा। वह बोला—अच्छा कहो। मैंने कहा—यह पाप अपूव के माथे। उसने पूछा—अपूव कौन ? मैंने उसे अपूव की कथा कह सुनाई। उसे मानना पडा कि घर से भाग जाने के जिम्मे यह पाप आ सकता है।

उपस्थित जनो पर विशेष प्रभाव होते न देखकर जागरी ने कहा 'क्या बताऊँ ! उस यात्री ने अपनी भाषा का एक बोल सुनाया जिसे बच्चे बुढिया का खेल खेलते समय अलापते हैं। आप भी सुनिये

कुबडी कुबडी का हेराना ?
सुई हेरानी।
'सुई लेके का करब ?
कन्था सीबै !
'कन्था सीके क्या करब ?'

'लकडी लाब ।'

'लकडी लाय के क्या करबे ?'

'भात पकइब ।'

'भात पकाय के का करबे ?

'भात खाब ।

'भात के बदले लात खाब !'

इस यात्री ने बताया—बुढी बनी हुई लडकी के जोर से लात मारते हैं। मैंने अपूर्व की ओर प्रसग मोडते हुए कहा—"खेल की बुढिया सुई भले ही ढूढ ले, पर क्या वह अपूर्व को ढूढकर ला सकती है ?"

इस पर सब हस पडे, जैसे अपूर्व का किसी को दुख न हो।

'लगता है, अपूर्व भाग गया जब कि धौली लागो का आशीर्वाद बाट रहा था।" वद्यजी ने रुधे हुए कण्ठ से कहा, "रात को मुझे किसी पशु की करुण पुकार सुनायी दती है, जैसे वह भी अपूर्व को पुकार रहा हो।'

'हम इतना भी नहीं जानते कि अपूर्व कहा है।" गगन महान्ती भी चुप न रहे "आज मानो धौली के मुख म बोल नही।'

"क्या धौली को अपूर्व की आवश्यकता न थी मास्टरजी ?

धौली तो उसे जी-जान से चाहता है, वद्यजी !'

फिर गगन महान्ती ने चतुमुख की बात छेड दी 'कुछ लोग उन्हे अहकारी स्वभाव का प्राणी समझते हैं पर वे तो कहते हैं—हम मनुष्य का विश्वास करते है उसका सम्मान करते हैं उसे मूर्ति म उतारते हैं, और मैं तो कहूँगा—'

"तो फिर उन्होने अपूर्व का विश्वास क्यो न किया ?' वद्यजी गगन महान्ती की बात काटकर बोले।

'मैं कला की बात कह रहा था, तुम उनके घर की बात ले बठे।'

कल मैं उनके पास गया तो बोले—मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं जन्म-जन्मान्तर का पाथुरिया हूँ और जसे इस जन्म में भी मैंने किसी

एक मुहूर्त में मूर्ति गढ़ने का श्रीगणेश न करके सदा से ही मूर्ति गढ़ता आया हूँ।'

"यह तो मैं भी मानता हूँ कि उनके जीवन का उद्देश्य केवल मूर्तिकार बनना ही था पर क्या यही बात नीलकण्ठ के सम्बन्ध में कह सकते हैं ?

"नीलकण्ठ की अभी क्या कह ? वह तो बाबा का हस्तक्षेप भी नहीं सह सकता। स्वयं अपना मार्ग खोजना ही उसे प्रिय है। यह उसका सौभाग्य है कि बुलके साहब ने उसे विनायकी मूर्ति कला की शिक्षा के लिए लन्दन भिजवा दिया था।'

'लन्दन में उसकी नियमित शिक्षा हुई पर उसने आँख मूँदकर अनुसरण करना कभी पसन्द नहीं किया। वह साफ कहता है—मैं उस समय तक छेनी-हथौड़ा लेकर नहीं बैठ सकता जब तक मेरी प्रेरणा के आन्तरिक अर्थ की पुष्टि मेरी वैयक्तिक धारणा द्वारा न हो जाए।'

तो फिर लन्दन जाने की क्या आवश्यकता थी ? उसे अपने लिए स्वयं सोचने और अपना मार्ग खोजने की शिक्षा तो बाबा भी दे सकते थे।

फिर भी लन्दन जाकर उसकी आँखें खुल गईं मैं तो यही मानता हूँ। कल वह स्वयं कह रहा था—पूर्णता का सार है, सरलता !'

यह तो बाबा भी कहते हैं कि आयु के प्रारम्भिक वर्षों में हमारी आँखें आवश्यक साज-सज्जा से मुक्त नहीं हो पाती और तब हम कला की पूर्णता अपने सामने नहीं रखते। पर विवेक बुद्धि का उदय होने के साथ साथ हम सरलता को लक्ष्य बनाकर चलने लगते हैं।"

यह गोष्ठी चल ही रही थी कि बुलके साहब आ निकले। उनका सुझाव था कि मूर्तिशाला में चला जाए।

मूर्तिशाला में पहुँचने पर बुलके साहब ने कहा हमें कोणार्क का मॉडल चाहिए। कितने दिन में बनेगा ?

'नीलकण्ठ से बनवाइए।' चतुर्भुज हँसकर बोले जब से आया है काम को हाथ नहीं लगाता।

"कारा की शिकायत करने का अच्छा अवसर हाथ लगा, गुरुत्व ! रूपर भी चुप न रह सका ।

बुलके साहब चतुर्मुख को सम्बोधित करते हुए बोले, 'कोणार्क का मॉडल तो आप ही को बनाना होगा । बगाल के गवनर का आर्डर है । पाच हजार मिलेंगे । एक हजार पेशगी देकर जाऊँगा ।"

"अच्छा तो बनायेंगे ।" चतुर्मुख मुस्कराए, वसे कोणार्क का मॉडल तो कोई भी बना सकता है ।

वैद्यजी बोले, 'नीलकण्ठ को कहीं नौकरी भी आप ही दिलायेंगे, बुलके साहब !"

"नौकरी तो यह करता ही नहीं ' बुलके साहब ने साफ शब्दों में कहा, "नौकरी तो इसे उसी दिन मिल सकती थी, जब इसने लन्दन से लौटकर कलकत्ते की धरती पर पर रखा ।'

'नौकरी भी नहीं करता, और त्रिमूर्ति भी पूरा नहीं करता ।" चतुर्मुख ने शिकायत के स्वर मे कहा, 'मैंने तो अब कहना ही छोड दिया । पर इतना मैं भी जानता हूँ कि काम तो करने से ही होता है ।"

बुलके साहब ने मुस्कराकर कहा "अमृत शेरगिल का नाम तो आप ने भी सुना होगा । उसके माता पिता उसे और उसकी बहन को क्रमश चित्रकला और सगीत की शिक्षा के लिए परिस ले गए थे । छ वर्ष हुए, उनका परिवार पेरिस से शिमला लौट आया । अमृत शेरगिल ने स्वय लिखा है कि पेरिस मे उसके प्रोफेसर उसके चित्रों के तेज रग देखकर कहा करते थे कि पश्चिम के किसी भी स्टुडियो में उसकी प्रतिभा उतनी विकसित नहीं हो सकेगी । यहाँ लौटकर अमृत शेरगिल ने स्वय अनुभव किया कि परिस मे उसके प्रोफेसरों का कहना ठीक था कि पूर्व के रगों और प्रकाश मे ही उसके कलात्मक व्यक्तित्व को अनुकूल और यथार्थ वातावरण मिल सकेगा । पर उसने लिखा है कि पूर्व से उसने जो प्रभाव ग्रहण करने की आशा की थी, उससे वह इतना भिन्न और गम्भीर निकला कि उसके मन पर आज तक उसकी छाप है ।'

वयनी वाल, कुछ नीलवण्ठ वो भी समझाइए। नौवरी नही करता
ता घर पर ही काम वरे। त्रिमूर्ति ता सबसे पहले पूरा वरे।
बुलके साहब ने मुस्करावर वहा आर्टिस्ट वो वहने वी आवश्यकता
नहा हाती। हाँ तो मैं अमृत शेरगिल की बात वह रहा था। यह भी
सुनिए कि वह क्या छाप थी जो उसवे मन पर लगी। और वह डायरी
खालकर अमृत शेरगिल के अपने शब्द पढ़ने लगे। बाल, अमृत शेरगिल
लिखती है— वह दृश्य था हिन्दुस्तान की सर्दियो का—जब सब-कुछ उजाड
लगता है फिर भी एक विचित्र सौन्दर्य से परिपूर्ण। इस हिन्दुस्तान की
धरती अनन्त दूरी तक फैले रास्तो से भरी थी जो श्वेत-पीले प्रकाश मे
परिपूर्ण थे। यहा के नर-नारियो के शरीर का रग श्याम था चहरो पर
उदासी थी व बहद दुबले-पतले थे और चलती फिरती करुणा जैसे दीखते
थे। एक अवर्णनीय गहरा उदासी जैसे हर समय उन पर छायी रहती थी।
यह उस हिन्दुस्तान से एकदम अलग थी जो आनन्दमय रगीन चमकीला
और बनावटी था। यह वह हिन्दुस्तान न था जिसकी मिथ्या कल्पना मैने
यात्रियो के लिए बनाये गए पोस्टरो मे देखकर की थी।
वचन। हँसकर बाल हम साच रहे थे आज तो आप अमृत शेरगिल
पुराण खोलकर बठ गए। हमारे नीलकण्ठ को कोई उपदेश दने।
यह उसी का रूप करके तो सुना रहा था। बुलके साहब बोल।
चतुर्मुख बाल बुलके साहब की बातें ही सुनोगे या उन्हे चाय भी
पिलाओगे?
चाय पीकर बुलके साहब न एक हजार पेशगी देकर कहा दो-तीन
महीन म यह काम हो जाना चाहिए। अच्छा ता मैं चलूं। मुझे आज ही
कलकत्ते पहुचना है।
चतुर्मुख बाल 'आप हमारा एक काम कर दें। अपूर्व घर से भाग
गया। उसे आप पहचानते हैं। कलकत्ते मे मिल जाए ता अपना आदमी
साथ देकर उसे यहा भिजवा दें। भूलें नही।



कई दिन तक वैद्यजी अमृत शेरगिल की चर्चा करते रहे। उस दिन वे बुलके साहब को छोड़ने गये थे भुवनेश्वर, बैलगाड़ी में बैठकर। नीलकण्ठ साथ था। वैद्यजी के पूछने पर बुलके साहब ने अमृत शेरगिल के परिवार का हाल बता दिया।

अब वे रोगी को दवा की पुड़िया थमाते हुए कहने लगते, "यह भी सुनते जाओ कि शिमले में रहती है अमृत शेरगिल। माँ हंगेरियन, बाप पंजाबी सिक्ख। समझे? क्या समझे?"

नीलकण्ठ को तो वैद्यजी बार-बार याद दिलाते, 'क्या कह रहे थे बुलके साहब? उन्होंने वे सब बातें तुम्हें ही लक्ष्य करके कही थीं। तो समझे? क्या समझे? बोलो, त्रिमूर्ति कब पूर्ण करोगे?'

नीलकण्ठ प्रसंग बदलकर बोला, "कभी आप लोगों ने यह भी सोचा है दुर्वासा ऋषि कैसे होंगे, जिन्होंने शकुन्तला को शाप दिया था?"

'तुम बताओ।" जागरी और गुरुचरण एक स्वर होकर बोले।

'आप लोग भी तो कल्पना का घोड़ा दौड़ाइए।' नीलकण्ठ हँसकर बोला, 'अच्छा मैं बताता हूँ। लम्बी जटा, विशाल चमकती हुई आँखें और क्रोध में लाल भभूका मुख-मण्डल। अब आप बताइए कि पाखुरिया

गली का दुर्वासा कौन है ?

व्यग्यपूर्वक उन्हाने आँखा ही आँखों म एक-दूसरे का देखा।

'कहीं वद्यजी ही ना हमारे दुर्वासा नहीं ?' जागरी चुप न रह सका।

सभी जानते थे कि वद्यजी का अन्तराल की याद अधिक नहीं सताती थी। पर नागमती हर समय कोसती रहती, 'दुनिया भर क काम करते रहते हो ही अपन बेटे की खोज-खबर क्या नहीं निकालते ?

जब से अपूर्व गाँव से भाग गया था अन्तराल की याद उभर आई थी।

अन्तराल की याद म पाँच-सात दुर्वासियाँ लगाकर वद्यजी ममतन गर आ जाते और सोचते नागमती की वाणी म अमृत की अपेक्षा विष की मात्रा ही अधिक है। माँ होकर बेटे को आघात पहुँचाए और बेटा घर से भाग जाए ना इसम बाप का क्या दोष है ?

बात बहुत पुरानी तो नहीं हुई। वद्यजी जानते हैं कि जागरी और गुरुचरण से वह बात छिपी हुई नहीं। नागमती को सन्देह हो गया कि अन्तराल पढाई म जी न लगाकर हैडमास्टर की बिटिया स आँख लडा रहा है। यही मीनाक्षी ही तो थी जिसे अन्तराल अपनी कल्पना मूर्ति समझ बठा था। बात कुछ ठीक ही थी। मीनाक्षी के लिए हमारा नागमती ने दुर्वासा की तरह शाप दिया। पर शाप कदाचित् उसके अपने विरुद्ध पड गया। बेटा घर स भाग गया।

वद्यजी ठण्डी साँस लेकर बोले

हमे कहाँ शरण है ?

उन्हाने संस्कृत कवि की सूक्ति प्रस्तुत की

अपार ससार समुद्र मध्ये
निमज्जतो मा शरणम् किमस्ति।

[ससार रूपी अपार समुद्र म डूबते हुए मुझे कहाँ शरण है ?]

अन्तराल का प्रसग लेकर नागमती उलटी-सीधी सुनाती है और

उन्हें 'उलटी खोपडी और 'कुकुरमुत्ता' जैसी उपाधियों से विभूषित कर डालती है। उस समय उनकी आत्मा निराशा की पुखरी म डुबकियाँ लगाए बिना नहीं रहती। पाथुरिया गली जैसे काटने को दौड रही हो। मुह का स्वाद खराब हो जाता है। घर से भाग जाने को जी होता है। कभी-कभी तो नागमती का क्रोध भूत के समान उन्हें झकझोरकर आधी रात के समय बुरी तरह डराता है। उसने बस एक ही बात रट ली है—मैं अभी जाकर कौशल्या-पुखरी में कूद पड़ूँगी ! अंतराल पर लौट आए, तो शायद जीवन के फीके पड़े हुए रंग फिर से गहरे हो जाएँ।

• • •

सृजन और संग्रह की मूल प्रवृत्तियाँ पाथुरिया गली के इतिहास की साक्षी रही हैं।

वैद्यजी अखबार का मोह नहीं छोड सकते।

नित नित की खबरें अन्न के समान पचती रहती हैं। कभी-कभी महापुरुष की सूक्ति भी अखबार के पन्ने पर पढने को मिल जाती है। इसे वैद्यजी ज्यों की-त्यों तस्वीर की तरह सजाकर किसी न किसी प्रसंग के चौखट में जडने के चिर अभ्यस्त हैं।

गली में लोग आते-जाते रहते हैं। सृजन की चाह ही उन्हें साहस देती है, प्रसंगों का यथाविधि वर्गीकरण सबके बस का रोग नहीं। इसके बिना ही उनका काम चलता रहता है। कोई चलते चलते आँखें झिपझिपाता है। पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन, धर्म की जय होती है। लडाई लगी है सात सागर पार। हिटलर की सेनाएँ लड रही हैं। तो क्या फिरंगी हार जाएगा ? हम कब कहते हैं फिरंगी न हारे ? सौ-सौ बार हम पाथुरिया गली में ही जन्म लेते रहें। पाथुरिया गली की क्या बात है भैया। उत्तरी छोर पर अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान सदा है। दक्षिण छोर पर ब्रह्मा विष्णु वाली चट्टान ने मन्दिर के शिखर की

तरह आकाश की ओर सिर उठा रखा है।

खाना-वाना तो चलता ही रहता है। जिसे तमाखू पीने का शौक है, उसके लिए तमाखू ही स्वर्ग का द्वार खोलता है। कपड़े-लत्ते की तड़क-भड़क रहनी चाहिए, यह इच्छा भी सिर उठाती है।

चूल्हे में आग जलेगी, तो रसोई में धुआँ कैसे नहीं उठेगा?

राह-चलते कोई यों बात करता है जैसे कोई वहीं पर कुछ छौंक रहा हो। बात करते समय अनुप्रास का कुछ ऐसा ही मज़ा आता है जैसे छौंक लगाने से तेज़ गन्ध आकर नथनों को सहलाती है।

सब कमाते हैं। अपना खाते हैं। अपना पहनते हैं।

कभी कथा बीच में टूट जाती है जैसे किसी के हाथ से चौके में माँड भरी हाँडी गिर जाए!

यहाँ से तो दया नदी भी दो-ढाई फर्लांग पर बहती है। सागर तो और भी दूर है। सागर तो पुरी और कोणार्क के पास है। फिर भी सात सागर तेरह नदियाँ लाँघकर आते हैं मन के विचार।

बहुत से दिन लद गए। बहुत से लोग चल बसे। उनके नाम रह गए। कथा में जुड़ गए। कथा में तो गए हुओं के नाम भी झाँकते रहते हैं, जैसे अधबाँही कमीज़ से कुहनियाँ।

हाँ भैया! यह तो सोलह आने सत्य है कि कोणार्क का महाशिल्पी विशु इसी पाथुरिया गली का वासी था। उसी ने कुनारे में वह नारी मूर्ति बनायी थी उत्तर वाली चट्टान पर। मूर्ति अधूरी रही। विशु पाथुरिया छेनी चलाते चलाते चल बसा।

अब विशु पाथुरिया का भूत आधी रात को उस चट्टान पर आकर ठक ठक किया करता है। ठक ठक का स्वर कभी बेसुरा नहीं लगता।

हाँ-में-हाँ मिलाने के लिए यही कहा जाता है

सत्य वचन महाराज!

बच्चों के साथ खेलोगे तो अपने आप तोतली बात करने लगोगे, भैया!

वशीकरण से भी अपरिचित नहीं पाथुरिया गली। हुलू ध्वनि और शंख नाद की भी उसे सार है। विवाह अनुष्ठान के समय नारी-पुरुष कण्ठो से निकली व्यंग्योक्तियो और ठिठोलियां मे जसे वेला-चमेली की सुगंध भी हाथ का चूडियो की तरह खनक उठती है।

नव-वधू का स्वागत यह समझकर किया जाता है जसे सचमुच परी-कथा की राजकुमारी आ पहुँची। या जैसे अखबार के दफ्तर मे नई खबर आ पहुँची। फिर भी वैद्यजी को शिकायत है कि अखबार मे कभी धौनी गाँव की कोई खबर क्यो नही छपती ?

० ० ०

न जाने क्या सोचकर वैद्यजी गुनगुनाते है

दु ख सत्य सुख मिथ्या
दु ख जन्तो पर धनम्

फिर प्रसग बदलकर कहते हैं

औषध जाह्नवीतोय
वैद्यो नारायणो हरि

[दवा तो गगा-जल के समान पवित्र है वैद्य स्वय हरिनारायण।]

रोगी का चगा करने मे वैद्यजी की दवा से भी अधिक उनकी बातें काम करती थी। वाकई वे अपना विद्या मे बडे निपुण थे। वे आराम से नाडी देखते और आवश्यक बातें पूछकर हिसाब लगाते।

'क्यो महाराज!" कहकर वे हर छोटे-बडे का अभिवादन करते। किसी को मुरब्बा देते, तो साथ ही आयुर्वेद की महिमा भी दरसाते। कभी तरग मे आकर कहते

अमत्रम् अक्षरम् नास्ति
नास्ति मूलम् अनौषधम्।

तरह-तरह की वनस्पतियो के गुण गिनाते। कभी कहते, "नीम

के पेड वाले मधु-मक्खियो के छत्ते से शहद के गुण के क्या कहने ! कभी कहते, 'आपने देखा होगा । कभी कभी पुराने नीम का तना फट जाता है । उसके भीतर से गोद सदृश रस निकलता है । यह रस तुरन्त खा लेना चाहिए । नीम के उस ताज़े गोद से अद्भुत शक्ति का बखान किया गया है आयुर्वेद में । जिन लोगो के पर हमेशा फटते हैं, वे उस रस को चाट लेंगे तो समझो उनकी वह शिकायत दूर होते देर नही लगेगी ।"

जागरी और नीलकण्ठ को गले मिलते देखकर वैद्यजी कहते हैं कपड़े लत्ते नये अच्छे, मित्र पुराने !" और फिर पुडिया बाँधकर रोगी के हाथ में देते हुए हँसकर कहते हैं कान को कौशल्या पुष्करी म मछली मिल जाए तो उसकी दृष्टि म यही मानसरोवर है ।

'अरे भया मादर बजिया हो तो बन्द हलक हाथ से भी ऊंचा बजता है । पास से जागरी सकेत से वैद्यजी की राम-बाण जडी-बूटी का गुण-गान करता है ।

वैद्यजी तुम्हें कितना कमीशन देते हैं जागरा ? नीलकण्ठ चुस्की लेता है ।

"कैसी तबीयत रही आज ?' वैद्यजी किसी रोगी से पूछते हैं ।

रोगी के कान्तिहीन मुख पर मुस्कान खिल उठती है । वैद्यजी चुटकी लेते हैं "खूब नीद आई । रात भर सपनो में बच्चो की तरह समुद्र की आग बुझाते रहे ! फिर वे थोडी खामोशी के बाद उसे गरम पानी से नहाने का आदेश देते हैं ।

गाँव मे वैद्यजी को सभी प्रेम करते हैं । उन्हे देखकर सबका मन आदर से भर उठता है । सफेद वस्त्रो मे वे वाकई भव्य मूर्ति प्रतीत होते हैं । उनके चेहरे पर नजर आने वाले सन्ताप की झलक के पीछे कही अन्तराल की याद उन्हे दुखी कर रही है इसका तो अब किसी को भूल कर भी ध्यान नही आता ।

किसी रोगी से वैद्यजी कहते हैं 'सवेरे उठकर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान की सात बार प्रदक्षिणा किया करो ।

"सत्य वचन, महाराज !" कहकर रोगी चला जाता है, तो जागरी पूछता है "उस चट्टान की प्रदक्षिणा म ऐसी क्या बात है, वद्यजी ? ब्रह्मा विष्णु वाली चट्टान की प्रदक्षिणा के लिए क्यो न कहा ?"

"उसमे अभी शिव मूर्ति की कमी है। वैद्यजी नीलकण्ठ की ओर देखकर मुस्कराते हैं 'कौन जाने वह शुभ घडी कब आए जब नीलकण्ठ की छेनी इस चट्टान पर चलेगी !"

थोडी खामोशी के बाद वैद्यजी कहते ह

'नीलकण्ठ को विलायत से लौटे तीसरा साल चल रहा है। चतुमुख बहुत परेशान रहते हैं। कभी-कभी वे सोचते हैं नीलकण्ठ शिव मूर्ति म हाथ नही डालता तो जिन हाथो ने विष्णु मूर्ति बनायी उन्ही से कहें कि शिव मूर्ति भी बना डालो।

जागरी व्यग्यात्मक दृष्टि से वद्यजी की ओर देखकर स्थिति को सभालता है।

"नही वद्यजी, ऐसा नही होगा। शिव मूर्ति तो नीलकण्ठ ही बनाएगा।

● ● ●

वद्यजी की दुकान के सामने पीपल का पेड है जिसके पत्ते हर समय डोलते रहते हैं। यहाँ से थोडा दूर ब्रह्मा विष्णु वाली चट्टान है, जिस पर एक दिन शिव-मूर्ति बनके रहेगी।

पाथुरिया गली के दक्षिण सिरे पर खडी इस चट्टान के पास से गुजरते हुए लोग कई-कई मिनट खडे सोचते रहते हैं—एक मूर्ति पडदादा ने बनायी दूसरी दादा ने, तीसरी नीलकण्ठ बनाएगा, पडदादा का पडपोता !

इस चट्टान के पास से गुजरते हुए लोग कभी-कभी गाली-गलौज पर ही नही हाथापाई पर भी उतर आते हैं।

यह चट्टान लोगो को गरम-सरद म गुजरते देखता आई है। इसने

बच्चा की किलकारियाँ सुनी हैं, बडे हात स्या है। ब्रह्मा की मुखाकृति ग्रन्त मुखी मुद्रा म बनायी गई है तो विष्णु क मुख पर मुस्कान खिल उठी है जिसके पीछे यह आभास भी मिलता है कि विष्णु का नागा का यातनाओं की पूरी खबर मिलती रहती है। बच्ची सोचती है शिव मूर्ति म विष-पान वाली गाथा ही उभरनी चाहिए।

पीपल के पत्ते डालते रहते हैं।

चट्टान के पास खडे चतुमुख किसी बालक स कहते है।

पाथुरिया बनाओगे बेटा ?



घर में पूजा का नारियल साल भर रखने की रीति न जाने कब से चली आ रही थी। यह रीति चतुर्भुज को जी जान से प्रिय थी। वे महादेव की उपासना को सर्वोपरि मानते थे। वैसे घर की पूजा में मंगल-कामना की दृष्टि से अनेक मूर्तियाँ रखी रहती थीं। शिवजी का लिंग था, तो विष्णु का शालिग्राम भी, गणपति का लाल पाषाण था तो सूर्य की सूर्य-कान्त मणि भी। देवी का दीप्तिमान सुवर्णमुखी धातु का टुकड़ा भी इस देव-पूजन में कभी आँख से ओझल नहीं रहता था। पर परिवार की पुरातन मर्यादा की बड़ी सिखावन यही थी कि पूजा के प्रमुख स्थान पर महादेव की नहीं, एक नारियल की प्रतिष्ठा की जाए।

हर रोज़ उस नारियल का अभिषेक किया जाता। चन्दन अक्षत फूल चढ़ाकर भोग लगाया जाता। आरती उतारकर प्रार्थना की जाती।

श्रावण मास के प्रथम सोमवार को पुराना नारियल उठा देते। उसके स्थान पर नया नारियल रखते।

पहले पुराने और नये नारियलों का एक साथ अभिषेक करते। पूजा का नारियल अपना स्थान ग्रहण कर लेता, तो पुराना नारियल उस दिन पूजा के स्थान पर ही एक तरफ टिका देते।

दूसरे दिन पुराना नारियल तोड डालते और खोपे का प्रसाद घर म सबको बाँटते। नारायण और उसकी पत्नी के लिए डाक द्वारा नारियल का प्रसाद भेजना आवश्यक था।

जिस नारियल को साल भर रखना हो, उसे तो बडी सावधानी से चुनना चाहिए, कोइली की दादी ! चतुर्मुख कहते 'यह नारियल पका हुआ होना चाहिए कच्चा नहीं।

आज श्रावण मास का प्रथम सोमवार था। पूजा के पश्चात् कोइली की दादी बोली

कल मंगलवार के दिन पुराने नारियल का खोपा अच्छा निकला तो हम समझेंगे कुल-देवता की हम पर अपार कृपा है। भगवान् करे खोपा खराब अथवा सडा हुआ न निकले। खराब निकला, तो हम समझेंगे कुल-देवता हमसे नाराज़ है।

आज उपवास का दिन था। पूजा के लिए पुरोहित आ गया।

चतुर्मुख ने देवघर के भीतर बैठकर एक बढ़िया कागज़ पर चन्दन कुकुम लगाया और उस पर कुल-देवता के नाम एक पत्र लिखने लगे।

पूजा समाप्त होने पर पत्र कुल देवता के चरणों म रख दिया। वे प्रति वर्ष ऐसा ही किया करते थे। यह पत्र आवश्यक था जिस घर की मर्यादा सृष्टि स्थिति और लय की इसी टेक पर प्राण सागर म तरंगें उठती आई हो।

रक्त पिता की यही भाषा है नीलकण्ठ ! चतुर्मुख गम्भीर स्वर म बोले श्रद्धा भक्ति प्रेम सभी चाहिए। सकल्प साधना सस्कार सभी की यह पुकार है कि सत्यवादी प्रियभाषी और चरित्रवान् बनो। आज यही सकल्प करो।'

सकल्प से इच्छा का भाव है बाबा !' नीलकण्ठ ने जिज्ञासा की।

'निश्चय प्रयोजन उद्देश्य सभी सकल्प के भीतर आते हैं, बेटा !"

"विचार कल्पना, मन ये भी तो सकल्प के अन्तर्गत आते हैं न ?"

'मन्त्रोच्चारण के साथ धार्मिक कृत्य करने की प्रतिज्ञा यह हुई

सकल्प भी आधारभूमि। व्यग्य और अनास्था की भँडती शुद्ध सकल्प का विनाश करती है।'

"मैं समझा नही।"

'सकल्प ही मनुष्य का प्रथम और अन्तिम परिचय है। सकल्प के चरण-स्पर्श द्वारा ही पत्थर की अहिल्या फिर से मानवी बन सकती है।'

'अलवीरा लदन म कहा करती थी बाबा कि क्या स्त्री-पुरुष का पति-पत्नी होकर रह बिना गुजारा नही ? वसे शुद्ध सकल्प को तो वह भी मानती है। उसने मुझे साथी बनाने का सकल्प किया है, जसे एक कध कन्या न विशु के लिए सकल्प किया था।'

"एक बात समझ लो, बेटा ! आहार निद्रा भय, मथुन, इनम तो पशु और मनुष्य एक हैं। दोनो को जो वस्तु अलग करती है वह है सकल्प। वह मनुष्य नही जिसका कोई सकल्प नही।"

"बुरा न मानना, बाबा ! अलवीरा का पत्र आया है, उसने लिखा है कि वह तो महान् मूर्तिकार उसे ही मानती है जो पुरानी मूर्ति तोडकर नई मूर्ति गढ सके।'

'नई मूर्ति गढने के लिए पुरानी का तोडना क्या इतना ही आवश्यक है ?" चतुमुख जसे स्वय ही अपने प्रश्न के उत्तर म उलझ गए।

मेरा तो विचार है बाबा वीरा म भी सकल्प है। और उसने मुझे भी विशु की कध प्रेयसी की तरह सकल्पवान् कर दिया। मैं तो सकल्प को चैत की हवा समझता हूँ, जो कच्चे फल को ऊपर से रग देती है और भीतर रस भरती चली जाती है।"

"यह बात छोडो, नील ! तुमसे मुझे बडी आशा है। मैंने तुम्हे पत्थर समझकर मूर्ति की तरह गढा है। इसे मेरा सकल्प समझो।"

अब यही तो मारा अन्तर पड जाता है बाबा ! मैं पत्थर नहा पाशुरिया हूँ। मैंने अलवीरा को लिखा है—मा, बहन, प्रेयसी, पत्नी, ये एक ही नारी के चार रूप हैं। मैंने तो तुम्हे नारी रूप म ही देखा है वीरा ! मैं पुरुष हू। वही युग-युग का आदम और तुम युग-युग की हौवा।

बाबा बोले, 'सोचा था, सौ साल की उम्र भोगकर मरूँगा ।" कहते-कहते वे रुक गए, जैसे उन्हें गीली लकड़ियों को फूँक मारकर जलाने का ध्यान आ गया हो । उनकी आँखों से प्रतीत होता था कि मन में तूफान उठ रहा है । थोड़ी खामोशी के बाद उन्होंने फिर कहा, 'अनवीरों के पीछे तुम अपना दिमाग खराब करोगे, मैंने यह नहीं सोचा था ।

नीलकण्ठ कुछ न बोला ।

वह समझ गया कि छोटी-सी बात ने बाबा के अन्तर के अन्तस्तल तक को झकझोर दिया । एक गहरी लम्बी साँस छोड़ते हुए बोले, "जी में आता है यह सब छोड़-छाड़ दूँ । एक बात याद रखो । इस विश्वास के साथ कला-साधना में संकल्प के स्वर मिलाओ कि आने वाली पीढ़ियाँ तुम्हारी देन को पहचानें । तुम सस्ते यश के पीछे नहीं भागोगे, यह मैं जानता हूँ । एक बात याद रखो । पुराने सत्य को नया अर्थ दिये बिना पत्थर में प्राण नहीं पड़ सकते । वे कुछ इस तरह मुस्कराए, जैसे बहुत आगे चले गए हों ।

नीलकण्ठ को चुप देखकर वे फिर बोले, 'त्रिमूर्ति तो एक दिन पूर्ण होकर रहेगी । मैं जानता हूँ, जब यह त्रिमूर्ति पूर्ण होगी तो संकल्प साधना और संस्कार की त्रिमूर्ति कहलायेगी ।'

इतने में बड़जी आ निकले और वे छूटते ही बोले, बाबा, उस दिन बैलगाड़ी में तुमके साहब अमृत शेरगिल की कथा कहते रहे । उनके कथनानुसार उसकी वृत्तियाँ यूरोप-यात्रा से पहले अन्तर्मुख थीं । अपने आस पास या बाहर की किसी वस्तु को न वह देखती थी, न उस पर ध्यान देती थी । उन दिनों वह बस कल्पना के सहारे काम कर रही थी । वास्तविकता के स्थान पर चिन्ता से घिरी रहती थी । उसने हिन्दुस्तान की कल्पना एकदम साधारण पाँचवीं कोटि के उन विलायती चित्रों के सहारे की थी, जो आज भी अक्सर चित्र प्रदर्शनियों में देखे जा सकते हैं और कला के अविकसित पिपासुओं के लिए हानिकर नहीं तो संदिग्ध सामग्री अवश्य है ।

'ये सब बात बुलके साहब न स्टेशन क रास्त म बताइ ?' चतुर्भुज न छेनी चलाते हुए कहा।

"हाँ, काका !" वद्यजी मुस्कराए। बुलके साहब देर तक अमृत शेरगिल की कथा कहत रहे।"

"हम भी साथ ल जाते।' रूपक न अपनी मूर्ति से नज़र हटाकर कहा, "हम भी सुन लेत। और वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही फिर पत्थर कोरन लगा।

सहसा वद्यजी की नजर कारणाव के माडल पर पडी। बात यह कब तयार हो गया ? मार लिए पाँच हजार !'

"इसका काम भी साथ-साथ होता रहा। घर का खच तो निकलना चाहिए। घर का खच तो तुम्हारा अमृत शेरगिल भी निकालता होगी।'

'बुलके साहब उस दिन कह रहे थे, काका !' वद्यजी कहते चले गए, 'अमृत शेरगिल न एक लख लिखा है। यूरोपियन चित्रकारा द्वारा चित्रित घटिया चित्र विलायत म ही निर्मित नहीं किये जा रहे अनेक हिंदुस्तानी कलाकार भी अज्ञानतावश खुशी खुशी उनके दोष समझे बिना ही, इनका अनुकरण कर रहे हैं। वह कहती है, ये चित्र न तो हिंदुस्तानी हैं न कला की दृष्टि म उत्तम। उसका तक है, यदि शौकिया कलाकार यात्रा-स्मृति बनाए रखन की खातिर एस तल या जल रग चित्र चित्रित करते हैं, जिनम कोई कलापूर्ण विशेषता दरसाने की चिन्ता उन्हें नहीं रहती, तो यह क्षम्य है। पर जब सामायता को लकर एक नूतन स्कूल की स्थापना की जाती है, जिससे एक नये हिंदुस्तानी कला आंदोलन को उत्साहित किया जाए तो उसकी जितनी निन्दा की जाए, थोडी है। अमृत शेरगिल एसे चित्रो को यात्रा-चित्र कहती है, क्योंकि उनम तो बस यात्री के मन की विशेषताएँ रहती हैं—यथा थकन मन स्थिति की नितान्त हल्कापन तथा अभावा के प्रभाव, जिनम कलात्मक निर्धारण और सूक्ष्म अन्तदृष्टि का कोई स्थान नहीं होता।'

"बडी गहरी बातें हैं। चतुर्भुज न छेनी चलात हुए कहा।



हवा-पानी का जार बढता गया । गली के बच्चे दौड लगान लगे । चतुर्मुख को याद आया, बचपन म इसी तरह भीगे होंगे । आज उपवास है । तब भी उपवास रहा होगा ।

गली म बच्चे हँस रहे थे गा रहे थे, दाँव लगा रहे थे । कुछ मूछ-उठान जवान भी वर्षा म नहान को निकल पड़े । बीती हुई बरसातो की बातें याद हो-हो आती थी । चतुर्मुख चाहते थे खिलखिलाकर हँस पड़े, पर मन ने साथ न दिया । जीवन की प्रवहमानता उन्हें अभिभूत किये दे रही थी । वे बैठे अपनी तबीयत को टटोलते रहे ।

बैठे-बैठे मन न लगा तो मूर्ति गढने लगे ।

छेनी चलाते चलाते याद आया कि उनकी जन्म पत्री म लिखा है अन्तिम काम अधूरा छोडकर मरेगा ।

इधर छेनी चलती रही, उधर वर्षा होती रही ।

वे सोचने लगे—सोना जब राधा बनती है तो परम सुदरी और पूर्ण यौवना प्रतीत होती है । रामलीला म उतरकर वह भूल जाती है कि वह जागरी की पत्नी है ।

छेनी चलाते हुए वे मन ही-मन बोले, 'हाँ ठीक है सोना । इसी

तरह ठीक है। ऐसे ही खड़ी रहो। अरे तुमने तो स्वयं को जागरी के साँचे में ढाल दिया था। फिर, तुम्हारे भीतर में यह राधा कैसे निकल आई ?"

वर्षा के ताल पर छेनी चलती रही। पत्थर छिला जा रहा था। चतुर्मुख मन-ही-मन बोले, "जागरी तो पूरा विदूषक है सोना ! उल्टा कुर्ता पहनकर गली में चलेगा तो लोगों को यह पूछने का अधिकार तो होगा ही कि जेब में हाथ कहाँ से डालोगे, बाबू ? अरे ज्यादा नहीं हँसो सोना ! बस ऐसे ही खड़ी रहो ! सात गाँठ बाँधो एक गाँठ खोलो। एक फूल, सात पखुड़ियाँ। एक तागा, सात गाँठ। इसी तरह हँसो, सोना ! एक कण्ठ, सात स्वर। क्या कहा जागरी के प्रेम में ही मोती जड़े हैं ! अरे कभी मयूरभंज में माँ की चिट्ठी भी आता है सोना ? तेरी हँसी में तेरी कला है। जागरी को लोगों ने बहुत भड़काया। गुरुचरण के साथ तुझे क्या कम बदनाम किया गया ? जागरी की जगह कोई और होता तो तुझे घर से निकाल देता। पर उसने ठण्डे माथे सब सुना, सब सहा।'

वर्षा और भी तेज हो गई थी। गली में जैसे नाला बह रहा हो। बच्चे और बूढ़े उठान युवक घरों में घुस गए।

मूर्ति गढ़ते गढ़ते उन्हें जागरी का ध्यान आया, जिसे गली के कुछ लोग 'गुरु की दुम' कहकर हँस पड़ते थे। सीधी तरह नहीं कहते थे कि सोना गुरुचरण की राधा बनती है, फिर भी जागरी को गुरुचरण का मित्र बनते लाज नहीं आती। जागरी तो ठण्डे दिल से सब सुन छोड़ता है। वह तो मुस्कान में भी विष नहीं घोलता। सोचता है, अपनी सोना ठीक है तो सब ठीक है। जब तब वह तेल मालिश करती है मल मलकर नहलाती है और गमछे से शरीर पोंछते समय मुस्कराती है मैं क्यों उसके चरित्र पर सन्देह करूँ ? घर में पैसा आता है, मुफ्त में तो राधा नहीं बनती सोना।

जोर का पानी पड़ रहा है। गली में नदी बह रही है। भगवान् की लीला ! इतना पानी कहाँ से आता है ? मूर्ति गढ़ते-गढ़ते चतुर्मुख मन

ही-मन प्रश्न करते रहे और जवाब पाते रहे। गुरुचरण की रामलीला देखने वाले टीका टिप्पणी करते हैं और सोना की कथा पर हँसी की फुलझड़ी छोड़ते हैं।

मूर्ति गढ़ते-गढ़ते चतुमुख मानो हाथ वाली मूर्ति से बोले, 'पत्थरों के देवता बन जाते हैं, देवताओं के पत्थर।' थोड़ी खामोशी के बाद वे बोले

"बस इसी तरह खड़ी रहो, सोना! अभी बहुत काम रहता है। मस्ती की झलक तो आ गई। कमल खिल गया। पर अभी काम रहता है।"

उन्होंने सोचा, सोना का रूप मूर्ति म उतर आया और मूर्ति सुन रही है। वे बोले

'सोना, तुम माँ नहीं बन सकी। भगवान् की लीला! बालक जन्म न लें, तो पाथुरिया गली बुड्ढों की ठौर बन जाए सोना। बालक आता है, तो पाथुरिया चिर नूतन बन उठता है। सच्चा पाथुरिया बाल भाव बनाए रखता है। वह बाल भाव से ही मूर्ति गढ़ता है। पत्थर यही कहता है—आओ पाथुरिया दादा हमें गढ़कर प्राणवान् बनाओ!

उनके माथे पर बल पड़ गए। क्रोध आने लगा, "नीलकण्ठ मेरा कहा नहीं मानता। न वह कलकत्ते वाली लड़की से विवाह करता है न त्रिमूर्ति का काम सम्पूर्ण करता है।

'क्या मैं अति तुच्छ हूँ? क्या नील को मेरी आवश्यकता नहीं रही? जितनी नदियाँ हैं, उन सब पर कौन पुल बना पाया? जितनी रूपवती कन्याएँ हैं उन सबको कौन ब्याहकर घर ला पाया? अलबीरा को क्या वर नहीं मिलेगा? पत्थर जसा इस वष है अगले वष भी वसा ही रहेगा। हंस अकेला जाए, अमर तो कोई नहीं।

"पाथुरिया गली को पीठ पर लादकर कौन ले जा सकता है? जो जीव आया उसे जाना है। पत्थर तो घाट-बाट रोकने से रहे। कहते हैं, बाँटा हुआ पानी नहीं पीना चाहिए। माटी का ओढ़ना, माटी का ही बिछौना।

"किसी को मेरी आवश्यकता नहीं। तो क्या जीवन-लीला समाप्त कर देनी चाहिए ? मैं अपनी छाया से पाथुरिया गली को कब तक ढकता रहूँगा ? मेरी मूर्तियाँ में दम होगा, तो वे रहेंगी।

"कोइली की दादी की शिकायत है ब्रह्मा अभी तक मेरी मूर्तियों में प्राण नहीं डाल सके। अब उस चिन्ता के घेरे में बँधकर क्या रहूँ ?"

प्रबल वेग से वर्षा होती रही। वृक्षों की डालियाँ हवा-पानी की मार सह रही थीं। हवा का आर्तनाद बढ़ता गया। कोइली की दादी ने कई बार आवाज देकर कहा, 'छोड़ो यह काम, फिर हो जाएगा।

नीलकण्ठ ने भीतर से आकर कहा, "यह ठक ठक छोड़ो, बाबा!'

चतुर्मुख के हाथ चलते रहे, जैसे आज ही इस मूर्ति को सम्पूर्ण करना हो।

छेनी चलाते हुए चतुर्मुख सोचते रहे 'पुखरी तटों से घिरी रहती है, आदमी कर्तव्य से। घोड़े का विधाता ने हवा से बात करने का स्वभाव दिया है, आदमी उसे लगाम डालकर काबू कर लेता है, उस पर जीन डालकर सवारी करता है। आदमी का काय पकड़े रखता है, उससे भागने का रास्ता नहीं, पर सदा कौन बैठा रहता है ? बहुत काम किया। कलापथ पर पाथुरिया जो विजय प्राप्त करता है, उसमें कोई अशोक भी क्या बराबरी करेगा ? मुझे अपनी एक एक मूर्ति प्रिय है। वह मुझसे क्या कहती है वीणा की तूंबी से लेकर इसके सूक्ष्मतम तार तक सभी सत्य है। पर हम वीणा के नियम ही नहीं, संगीत भी चाहते हैं। संगीत द्वारा ही हम वीणा का अर्थ पा सकते हैं। मूर्ति पूर्ण किये बिना पत्थर मुँह से नहीं बोलता '

सहसा आँखें चौंधिया गई। कड़ाक्ड की आवाज से कान के परदे फट गए जैसे पाथुरिया गली में ही कहीं बिजली गिरी हो।

चतुर्मुख ने छेनी-हथौड़े रखकर पूछा, 'अरे बिजली कहाँ गिरी है ?"

लालटेन के प्रकाश में चतुर्मुख अकेले बैठे छेनी-हथौड़ी चलाते रहे।



रात भर वर्षा होती रही। बाहुली की दादी ने उठकर देखा चतुर्मुख बिस्तर पर नहीं हैं। नीलकण्ठ अभी तक सो रहा था।

नीलकण्ठ जैसे घोड़े बेचकर सो रहा था।

उठो बेटा।' दादी ने घबरायी हुई आवाज़ में पुकारा, 'देखो तुम्हारे बाबा कहाँ चले गये?'

नीलकण्ठ आँखें मलता हुआ उठा। दादी बहुत घबरा रही थी। बाबा का कहीं पता न था। मूसलाधार मेह बरस रहा था।

'मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है।' दादी ने सिर पीट लिया 'हाय वे कहाँ चले गए?'

'मैं जाकर देखता हूँ।' कहते हुए नीलकण्ठ वर्षा में बाहर निकल गया।

वह अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान की ओर हो लिया।

चट्टान के पास खड़े होकर वह सोचता रहा, 'कहीं अश्वत्थामा की ओर तो नहीं गये?'

उसे याद आया, कल उसने अशोक के अश्वत्थामा वाले शिलालेख का पूरा मतलब समझाया था। हो न हो, बाबा वहीं गये होंगे। उसके पर

उधर को उठ गए।

कौशल्या पुखरी का एक ओर छोडता हुआ वह अश्वत्थामा के पथ पर लम्बे डग भरता रहा। मेह का ज़ोर रास्ता रोक रहा था।

बाबा पर क्रोध आ रहा था "सवेरे-सवेरे मेह म अश्वत्थामा जाकर कौनसे वेद पढते थे ?"

वह लम्बे डग भर रहा था। फिसलन का ज़रा भी डर न था।

"बाबा ! बाबा !" उसने पुकारा, पर कोई उत्तर न मिला।

उस थलवारी की याद आई। वह कितनी हँसमुख है कितनी मधुर! बाबा कहते हैं मैं उसे भूल जाऊँ!

वह बार-बार आखो से पानी पोछता था। कई बार उसका पैर फिसला।

उसने फिर आवाज़ दी, 'बाबा! तुम कहा हो ?' और कोई उत्तर न मिला।

उसके पर अनायास आगे उठते गए।

पानी बरस रहा था। अश्वत्थामा शिला उसी तरह खडी थी। हाथी मुख की आकृति जसे ज़माने की गरमी सर्दी सहते ज़रा भी न बदली हो। शिलालेख पानी की बौछार मे धुल रहा था। बाबा का कही पता न था।

"बाबा !" उसने फिर पुकारा। उसके शब्द हवा म गूजकर रह गए।

शिलालेख पर वह हाथ फेरता रहा। वह दृश्य उसकी आखो म घूम गया जब अशोक ने अपने अभिषेक के आठ वष बाद एक विशाल सेना क साथ कलिंग पर आक्रमण किया। कलिंगवासियो ने वीरतापूवक सामना किया। मेगस्थनीज़ के अनुसार महानदी और गोदावरी के बीच वाले पूव सागर-तटवर्ती कलिंग देश म साठ हज़ार पदल एक हज़ार घुडसवार और सात सौ हाथियो की सेना थी। भयानक युद्ध हुआ। भीषण रक्तपात। शिलालेख म अशोक ने स्वीकार किया था कि डेढ लाख बन्दी कर लिए गए, एक लाख मारे गए और उनम कई गुना लाग रोगों और सामरिक

परिस्थितियो स मृत्यु के ग्रास हुए। जस सम्राट अशोक स्वय स्वीकार कर रहे हो कि उस युद्ध की नृशमता ने उनके हृदय पर गहरा आघात किया। जसे वे कह रहे हा—मैं शपथ लेता हूँ कि फिर कभी रक्तपात नहा करूँगा, भेरी घोप का स्थान अब धम घोप को मिलगा दिग्विजय का धम विजय को। अब मैं धम के अनुवरण और प्रसार मे ही दत्तचित्त हूँगा। मैं बौद्ध हूँ, पर सभी सम्प्रदाया का आदर करता हूँ। हममे आपस का मेल तो होना ही चाहिए।

'बाबा !" उसन फिर पुकारा, और कोई उत्तर न मिलने पर उसने सोचा कि बाबा आज दया नदी की ओर निकल पडे हाग। पर इसम उसे कोई तुक नज़र न आई।

वर्षा की आवाज म सब आवाजें डूब गइ।

अश्वत्थामा के नीचे धान के खेता म जल थल एक हा रहा था। उसके पर सहसा गाँव की ओर उठ गए।

पाथुरिया गली के उत्तरी सिरे पर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान उसी तरह महाशिल्पी विशु का स्मरण करा रही थी।

गली के दूसरे सिरे से कोई भागता हुआ आ रहा था।

पास जाकर पता चला, जागरी आ रहा है।

जागरी ने सिर पीटकर कहा "भया, हम लुट गए !

नीलकण्ठ ने कहा, 'क्या बात है ?

'भया, बाबा चल बस !" जागरी ने रोते हुए कहा, 'हम लुट गए ! बाबा चले गए !'

'पागल तो नहा हो गए जागरी ?' नीलकण्ठ ने तेज़ डग भरत हुए कहा, 'तुमने बाबा को कहाँ देखा ?"

"ब्रह्मा विष्णु मूर्ति वाली चट्टान के पास पड हैं बाबा।

"क्या वे गिर गए ? चोट आ गई ?"

नीलकण्ठ और जागरी को ब्रह्मा विष्णु मूर्ति वाली चट्टान के पास पहुँचते देर न लगी।

दुख था कि हमारी एक पीढ़ी पाथुरिया के धंधे से कट गई। पिताजी कलकत्ते में हैं। उन्होंने बाबा की अवहेलना करते हुए यह नौकरी कर ली थी, जो उन्हें बुलके साहब ने दिलवाई थी। बाबा बहुत दिन बुलके साहब से नाराज़ रहे, पर बुलके बराबर बाबा से मिलते रहे। आगे चलकर उन्होंने ही मुझे लन्दन भेजने का प्रस्ताव रखा। बाबा हँसकर बोले "नारायण को छीनने के बाद आप नील को भी छीन रहे हैं?" बुलके सँभलकर बोले, 'मैं तो नील को बड़ा मूर्तिकार बनाना चाहता हूँ। आपकी कला महान् है पर पश्चिम में मूर्ति-कला कहाँ-से कहाँ जा पहुँची। क्यों न नील लन्दन जाकर मूर्ति-कला सीखे?' बाबा ने पूछा "कितने दिन लगेंगे?" बुलके साहब बोले "पाँच साल लगेंगे। बाबा बोले 'मैं तो नील को पाँच दिन के लिए भी अलग नहीं कर सकता।' आखिर बुलके की जीत हुई। उन्होंने बाबा को राज़ी कर लिया। अब उन्हें बाबा की मृत्यु का कितना दुख होगा।

जैसे समुद्र की लहरें एक ही रट लगा रही हों—यहाँ कौन किसी को याद रखता है?

नीलकण्ठ ने समुद्र-तट पर खड़े-खड़े फैसला किया कि वह त्रिमूर्ति शीघ्र ही पूरी करेगा। उसे बाबा याद आ गए। वह फूट-फूटकर रोने लगा, 'बाबा, तुम कहाँ चले गए? क्यों चले गए?



विष-पान की कथा किसी की समझ म न आई।

धौनी म हर किसी को यही आभास हो रहा था कि चतुमुख अपनी ही बात बारम्बार गोष्ठी से उठ गए जसे वे अपन मकल्प का गला घोट गए हों।

'धन्य है वह पत्थर जिसम छेनी कोई सपना जगा दे। जहाँ भी कोई प्रिय कथा कही जा रही हो उसका एक-न एक पात्र मैं भी तो हूँ!' बाबा के य शब्द जागरी हर किसी के सामने ले उठता।

नीलकण्ठ कहता, 'बाबा का वह बोल स्वर्णाक्षरों म लिखने योग्य है—पत्थर म मूर्ति कोरने वाला पाथुरिया वह मब कुछ हुए बिना नही रहता जो उसे अपनी मूर्तियों म नजर आता है।'

दादी ने एकाएक यह कहना आरम्भ कर दिया तुम्हारे बाबा की मूर्तियों म ब्रह्मा ने प्राण डाल दिए।

वद्यजी व्याख्या करन लगते 'जब पाथुरिया चला जाता है तो उसकी कला उसकी कथा कहने को शेष रह जाती है।

दादी को अथाह दुःख हुआ। पर उसके सम्मुख एक ही प्रश्न था—'आगे की कथा किस ओर मुड़ेगा?'

कलकत्ता से नारायण पत्नीसहित आया और कुछ दिन रहकर जाने की तयारी कर ली।

जाते समय नारायण ने तीन चार मूर्तियाँ साथ ले जानी चाहीं, पर दादी ने इन्कार कर दिया।

कोइली को बाबा के चले जाने का बहुत दु ख हुआ। दुनिया को दिखाने के लिए तो हरिपद भी तीन चार दिन धौली म रहा। फिर वह काटली को लेकर चला गया।

नीलकण्ठ को रात भर सपने आते रहते जिनम बाबा यही पूछते—"तुम त्रिमूर्ति कब पूरा करोगे ? '

ब्रह्मा और विष्णु मूर्ति वाली चट्टान के सामने खडा होकर नीलकण्ठ उसे एकटक निहारता रहता जसे वह अभी उस भय से मुक्त न हो पाया हो, जिसे हौए की काल्पनिक मूर्ति के रूप म माता बाल्यकाल मे ही शिशु के सम्मुख खडा कर देती है। वह अपने मन से पूछता, क्या सचमुच प्रेत पिशाच होते हैं ? क्या बाबा की आत्मा इस चट्टान के आस-पास मँडरा रही है ? और फिर इस भय से मुक्त होने के लिए वह कहता, "हौए की मूर्ति कब तक हमे मदारी का बन्दर बनाए नचाती रहेगी ? '

टिकी हुई रात म सियारों की हुआ-हुआ' सुनायी देने लगती तो उसके उत्तर म पाथुरिया गली का कोई कुत्ता भौंकने लगता। जसे प्रत्येक व्यक्ति शून्यता की विराट् मोह का अकिंचन् सा प्रतिनिधि हो और सियारो की 'हुआ हुआ' मे यही रटन चल रहा हो कि उसे अभी तक भीतर से भरा क्यों नही गया ? वह मन से पूछता, 'यह, सब निरर्थक है या इसम कुछ सार्थक भी है ?' हौआ की मूर्ति दन्त्यिल वटवृक्ष की तरह फलने लगता। उसके सम्मुख वह स्वय कितना बौना प्रतीत होता ! वह पूछता, "क्या हौआ ही महान् है ? अनगिन पीढियो का दाम चुकाने का मैं क्यो महान् बन नही सकता ? पहले के पाथुरियो द्वारा उत्कीर्ण पत्थर मूर्तियों के रूप म क्या सचमुच उन लोगो की कथा नहीं कहते, जिनकी छेनियों ने उन्ह यह रूप दिया ? क्या पाथुरिया स्वय अपने भय से आतंकित होकर छेनी

रख दे ? इस अन्तहीन घुटन का क्या अन्त भी है ? पुरातन मूर्तियों के स्पष्ट कटाव और कसा हुआ गठन तो यही कहता है कि हर पीढ़ी का संकल्प युग-परम्परा को नूतन आलोक से परिपूर्ण कर देना है।'

कभी नीलकण्ठ वेदना के प्रवाह में बहता हुआ सोचता 'सृष्टि-सूक्त का यह कथा-सूत्र कितना महान् है कि स्रष्टा की वासना में ही सृष्टि की रचना हुई। उन पाथुरियों में कितना साहस और धैर्य रहा होगा जिनकी कला भुवनेश्वर और कोणार्क में आज भी जीवित है! मूर्ति में स्वयं मानव ने देवत्व प्राप्त किया! सौन्दर्य-बोध द्वारा बौना मानव महान् बना! पत्थर में पाथुरिये ने नये अर्थ उत्कीर्ण किए, नये प्रतीक खोज निकाले, नये लक्षणों में अपनी कल्पना का रूप निहारा, फिर यह हौआ इतना मुखर क्यों हो उठा है?'

कभी वह आज की दुनिया की राजनीतिक पृष्ठभूमि में सोचता, पूर्वकाल में कितने युद्ध हुए! आज भी एक युद्ध हो रहा है। क्या पूर्वकाल का हौआ ही हिटलर बनकर सारे संसार पर अपना राज्य स्थापित करने जा रहा है? पूर्वकाल के युद्धों में तलवारों से नर मुण्ड कट-कटकर गिरा करते थे। कलिंग के युद्ध में हमारी इसी धरती पर कितना रक्त बहा होगा! सत्य और मिथ्या का युद्ध क्या इसी तरह होता आया है? कलिंग और अशोक में कौन सत्य था, कौन मिथ्या, इसकी खोज किसने की है?

फिर जैसे विवेक का स्वर गूंज उठता 'नीति शास्त्र की पुरातन वाणी हम कब तक अनसुनी करते रहेंगे— जो कर्तव्य है वह तो उपेक्षित

हो जाएगी ? उत्कीर्ण पत्थरों का गला घोंट दिया जाएगा कि वे अपनी कथा न कह सकें ? कोणार्क के खण्डहर भी ढह जाएँगे ? सूर्य रथ की रही-सही कल्पना भी मिट जाएगी ? "

दया नदी के पुल पर खड़ा होकर वह सोचता, इस पुल के नीचे से प्रति पल कितना जल लाँघकर सागर की ओर बढ़ता रहता है ! यह सब तो सूर्य की बात नहीं हो सकती । क्या दया नदी का प्रवाह परिवर्तन का तर्क प्रस्तुत नहीं करता ? हेराक्लिटस ने पुल के नीचे बहते जल को देखकर कहा था—सब-कुछ बदल जाता है । ठीक ही तो कहा था क्योंकि इतिहास के एक युग द्रष्टा के रूप में उसने परिवर्तन का ताप अनुभव किया था, वह बर्बरता और असभ्यता के लोप का आँखों देखा हाल जानता था, सभ्यता के रंग मंच पर उसने नये मानव के दर्शन किये थे ।'

केन्ना ने उसे विचारवान् बना दिया था । लन्दन प्रवास का ध्यान आते ही वह सोचता, 'दीवार की दरार में फूल देखकर टेनिसन को नूतन मानव का आभास हुआ था और वह पुकार उठा—"दीवार की दरार के ओ फूल, मैं तुझे जान सकता तो मैं सब कुछ जान सकता !" यह बात कि मानव-स्वभाव परिवर्तनशील है हीगेल की मति को सबसे बड़ी चुनौती है ।'

पुरातन मूर्तिकला का अध्ययन उसे इस चिन्तन धारा में बहा ले जाता, 'उत्कीर्ण पत्थर की कथा का एक ही स्वर है कि पाथुरिये के मन की बात ही छेनी द्वारा अग्रसर होती है ! आज भी छेनी चलेगी और त्रिमूर्ति पूर्ण होगी । पर बाबा न होंगे ।'



साधना



साधना

मानवता पर आज जो गहरा संकट छाया हुआ है, उसके समस्त कारणों के मूल में है मानव की अपरिमित तृष्णा। हमारा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन वास्तविक विकास के रास्ते से दूर जा पड़ा है। विकास की दिशाओं में एक असन्तुलन है जिससे वास्तविक विकास मारा जाता है। केवल राजनीतिक या आर्थिक उपाय इस अवस्था का सामयिक प्रतिकार ही कर पाते हैं। किन्तु इसका अधिक प्रभावशाली और अधिक स्थायी प्रतिकार तो केवल ऐसी प्रेरणाएँ हैं—अगर हैं तो—जो केवल इस जीवन की परिधि अपने ही अहं की तुष्टि और अहं के प्रसार तक ही सीमित न हों।

सच्ची कला बिखरे हुए तत्वों को संयोजित करती है और आदमी को ऊपर उठाती है। कला की साधना विराम नहीं, न स्वप्नलोक में पलायन है। कला तो हमारे स्वभाव की एक विशिष्ट आवश्यकता है।

प्रत्येक मनुष्य में कहीं-न-कहीं एक कलाकार है। अपने अतीत की कला शैलियों पर गौरव करने से कोई लाभ नहीं, जब तक उन्हें समझ न सकें और स्वयं भी नव निर्माण न कर सकें। हमारी अपनी ही कला के प्रति हमारे अज्ञान की बलिहारी है जिसके कारण यह आवश्यक हो गया कि यूरोपीय कला-मर्मज्ञ और आलोचक आकर हमें उसका मर्म समझाएँ और तब उस झूठे ज्ञान के बल पर ही हम उस महान् वैभव को समझ सकें जिससे हमारे राष्ट्र का अतीत पला था।

—नन्दलाल वसु



सात महीनों में जाकर त्रिमूर्ति में महादेव की कल्पना साकार हुई। ब्रह्मा के रूप में चतुर्मुख के पिता मूर्तिकार उपेन खड़े थे, हाथ में नटराज की मूर्ति लिये हुए। विष्णु के रूप में दरशाये गए थे महात्मा गांधी, हाथ फैलाए चन्दा मांगने की मुद्रा में। महादेव के रूप में विराजमान थे चतुर्मुख शंख में विषपान करते हुए।

ब्रह्मा और विष्णु की मूर्तियों में पचास वर्ष का अन्तर था। विष्णु और महादेव की मूर्तियों में पच्चीस वर्ष की दूरी। बेलू काका, चतुर्मुख और नीलकण्ठ इस त्रिमूर्ति के निर्माता थे। फिर भी ऐसा प्रतीत होता था कि त्रिमूर्ति एक ही शिल्पी की रचना है।

पाथुरिया गली के दक्षिणी छोर पर वैद्यजी की दुकान के सामने मुंह किए खड़ी थी त्रिमूर्ति। पीठ खेतों की ओर थी, जो नदी तक चले गए थे।

मूर्तिशाला में त्रिमूर्ति का प्रसंग चल रहा था। जागरी बोला, 'बाबा कितने गम्भीर लगते हैं त्रिमूर्ति में, जैसे वह कह रहे हों—मैं विष को कंठ से नीचे नहीं उतरने दूंगा।'

पास में रूपक ने दाद दी, 'बाहर से जो लोग अश्वत्थामा चट्टान का

फोटो लेने आते हैं वे त्रिमूर्ति का फोटो लेने से नहीं चूकते। क्यों, बाबा!

जागरी ने अब नीलकण्ठ का कन्धा भकभोरकर कहा तुम तो नाम के नीलकण्ठ हो। असली नीलकण्ठ तो बाबा हैं। त्रिमूर्ति में उन्हें देखकर मैं उन्हें प्रणाम किये बिना नहीं रह सकता।

रूपक आखों में चमक लाकर बोला 'क्या गुरुदेव का यह रूप उनके जीवन-काल में ही पत्थर में साकार नहीं किया जा सकता था?

मूर्तिशाला की मूर्तियाँ भी हाँ में हाँ मिलाती प्रतीत हुईं जैसे उनकी शान्त स्थिरता कुछ-कुछ बदल गई। माना अपने निर्माता की प्रशंसा सुनकर उनमें निखार उभर आया। किसी के मुख पर माना यह भाव आ गया—हाय, हमारे निर्माता की जीते जी न हुई पहचान! किसी मूर्ति की आँखों में जैसे कोई सपना-सा तरने लगा, मानो वह मुहूर्त सामने आ रहा हो, जब पत्थर चुना गया और फिर छेनी हथौड़ी से उसमें साँसों का संगीत भरा गया।

दीवारों पर सीलन के दाग मूर्तिशाला की सामान्य स्थिति की घोषणा करते प्रतीत हो रहे थे। छत पर इधर उधर मकड़ी के जाले लगे रहते, जैसे मकड़ियों को यहीं जाले बनाने की ज़िद हो। कई बार उन्हें हटाया जाता, पर लगता था ये जाले यों ही रहेंगे। मूर्तियों पर जमने वाली धूल बार बार हटायी जाती, पर धूल फिर आ जमती, जैसे उसे भी यही जगह पसन्द हो।

नीलकण्ठ को नारी का मुख कोरते देखकर जागरी ने हँसकर कहा, 'अब तो लड़ाई बन्द हो गई और अंग्रेज़ी सरकार ने बड़े-बड़े शहरों में रोशनी करके विक्टरी डे भी मना डाला। अब तो अलबीरा को लन्दन से आ जाना चाहिए। तुमने बहुत दिनों से उसे चिट्ठी नहीं लिखी।'

नीलकण्ठ ने कोई उत्तर न दिया।

'अलबीरा ने ही चिट्ठी लिखी होती!' जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, 'मालूम होता है, अलबीरा नाराज़ हो गई।'

"नाराज़ होती है तो हो जाए !" रूपक ने शह दी, "यहा उसकी दाल नहीं गल सकती। गुरुदेव की अवहेलना तो कसे की जाएगी ?"

जागरी ने हँसकर कहा, कल एक यात्री गा रहा था

भाग रे भाग, फकीर के बालके !
कामिनीकाचन बाघ लागा।
दास पलटू कह बचेगा साई
जो साधु के सग दिन-रात जागा।

पलटूदास की इस वाणी पर वह यात्री झूम उठा था, या भुवनेश्वर मे पत्थर की नारी का देखकर, यह तो कसे कहूँ ?

नीलकण्ठ ने चुप रहना ही उचित समझा।

जागरी ने गाजे का दम लगाकर नाक से धुआ छोडते हुए कहा 'बाबा एक कथा कहा करते थे न ?'

"कौनसी, जागरी काका ? रूपक ने आख मटकाकर पूछा।

"इसका सच झूठ तो बाबा के सिर पर है, जिन्होंने मरने से तीन दिन पहले मुझे कोई सातवीं बार यह कथा सुनायी। अब भी मैंने यह कथा उसी उत्सुकता से सुनी जिसस पहली बार सुनी थी। हा, तो बाबा बोले—ब्रह्मा न दुनिया म पत्थर का पहला आदमी गढा और उस मूर्ति-शाला के एक कोने म खडा कर दिया। पुरुष की मूर्ति इतनी सुन्दर बनी कि ब्रह्मा स्वय इस पर मुग्ध हो गए। फिर बहुत सोच-समझकर उन्होंने पत्थर मे नारी मूर्ति गढकर उसकी आखो म रूप का ससार लहराते देखा, तो वे चिंता म डूब गए। आख भरकर नारी-मूर्ति का रूप निहारा, तो उनकी बाहे अपने आप नारी मूर्ति की ओर उठ गईं। वे उसे अक म भर लेना चाहते थे। नारी-मूर्ति परे हट गई। ब्रह्मा को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—मैं तो अनादिकाल से उसकी हूँ, वह जो कोने म खडा है। उसने पुरुष मूर्ति की ओर सकेत किया। ब्रह्मा न नारी मूर्ति से कहा—चुप रहो। या फिर बहुत धीरे बात करो। इसस पहले कि मैं पुरुष मूर्ति म भी तुम्हारी तरह प्राण जगा दू आओ, मैं तुम्हें एक बार अक मे भर

लूं। क्या, तुम्हारा मन क्या कहता है ? सच जानो, तुम्हारा सौन्दर्य उस समय तक नहीं निखरेगा, जब तक मैं तुम्हें स्वर में नहीं भर लूंगा।

"यह तो बहुत ही मजेदार कथा है, नागरी काका !" रूपक ने कह दी, "गुरुदेव मेरी अनुपस्थिति में ही ऐसी कथा कहा करते थे। आखिर उनकी कथाएँ मुझ तक कैसे नहीं पहुँचेंगी एक एक करके ?

"हाँ, तो सुनो, रूपक ! नारी-मूर्ति मान गई। बोली—किसी को पता न चलने पाए कि आपने मेरा आलिंगन किया। इस पर ब्रह्मा ने कहा—मैं तुम्हारे मुंह पर ताला डाल दूंगा। यह बात तुम्हारे ही मुंह से निकलने का भय हो सकता है। मुंह पर ताला लगाने से तो तुम्हारा रूप बिगड़ जाएगा। मैं तुम्हारा मन लाज से भर दूंगा। तुम यह कथा किसी से न कहना कि मैंने तुम्हें गले लगाया और तुम्हें परम सुन्दरी बनाने के लिए तुम्हारा चुम्बन ले लिया। मैं तुम्हें रोने की शक्ति दूंगा। तुम्हारे जीवन-साथी के मन में मूकता भर दूंगा। एक बात याद रखो। तुम्हारे साथी के अतिरिक्त जब भी कोई अन्य पुरुष तुम्हें प्रिय लगेगा, तो उसमें तुम्हें मेरी ही झलक दिखायी देगी। तुम सदा उस पुरुष में मुझे ढूंढने का यत्न करोगी। तुम्हारा यह भ्रम बना रहेगा। ब्रह्मा ने पुरुष मूर्ति में प्राण जगाए और प्राणवान नारी-मूर्ति को उसके हाथों में सौंपकर कहा—अब तुम अपनी जय-यात्रा आरम्भ करो। तब से आज तक पुरुष और नारी की यात्रा चल रही है। उनकी यह यात्रा कभी शेष नहीं होगी। कल मैंने यह कथा उस यात्री को सुनाकर पूछा—अब कहो पलटूदास क्या कहते हैं ?"

'तो वह यात्री क्या बोला ?' रूपक ने उत्सुकता से पूछा।

मूर्तिशाला की मूर्तियों को देखकर नागरी को लगा, रूपगर्वित सुन्दरी की मुस्कान मुखरित हो उठी जैसे पलटूदास की सूक्ति उसे गुदगुदा गई। आँखों में काजल आँजने की मुद्रा वाली सुन्दरी भी जैसे इधर कान दिये खड़ी हो। अलक्तक लगाने वाली नववधू और मुक्त वेणी के मोतियों से हंसों को लुभाने वाली अप्सरा भी मानो दर्पण में अपना रूप निहारकर

मुग्ध होने वाली रूपसा का आखो ही-आखो मे पूछ रही हो—पलटूदास न हमारी रूप-लीला पर जो व्यग्य कसा, उसका क्या उत्तर दिया जाए ?

जागरी ने नीलकण्ठ को सम्बोधित करते हुए कहा, 'क्या अलवीरा को बिलकुल भुला दिया ?

"वह जहाँ भी है प्रसन्न रह। नीलकण्ठ न छैनी चलाते हुए कहा, 'उसका जीवन सुख से बीते। पिताजी स पता चलन पर कि व मेरे लिए एक कन्या ठीक कर रह ह, बुलके साहब ने अलवीरा का लिख दिया। बाबा न भी अपनी ओर से गगन महात्ती के हाथ स एक पत्र अलवीरा को लिखवा दिया कि वह मेरा खयाल छोड द। फिर उसने मेरे पत्रो का उत्तर दना छोड दिया और मैं भी चुप हो गया।'

'अब क्या सलाह है ?'

"मैंने विवाह का विचार ही छोड दिया।

'पत्थर से विवाह कराग ?'

जागरी और नीलकण्ठ क प्रश्नोत्तर सुनकर मानो पत्थर की रूपसी मुस्कराने लगी, जिस पर इस समय नीलकण्ठ की छनी चल रही थी।

'अब स्थायी रूप स यही रहाग न ? कही हम छोडकर कलकत्ते जान की बात तो नही साचते ?

'अभी ता धौली मे ही रहने का विचार ह।'

रूपक बोला 'गुरुदेव मेरी अँगुली नीलकण्ठ काका के हाथ म द दिए। काका आगे आगे म पीछे-पीछे। कही भी जाएँ, मैं इनके सग रहूँगा।

"सग रहोगे तो तर जाओगे।' जागरी ने शान्त भाव स कहा, कला का रास्ता लम्बा है। बीच म गडबड कर बठ, ता उधर के हाग न इधर के। बाबा कहा करते थे, बहुत-कुछ पहुँच मे बाहर रह जाता है जिसकी हम थाह नही पा सकते। ये बातें गाँठ बाध लो, रूपक।

बाहर सूरज आग बरसा रहा था। गली म एक बलगाडी जा रही

थी, जिसका धूं चरर मरर उभरी और खो गई।

नीलकण्ठ बोला "जब बलगाडी की धुरी म तल नही दिया जाएगा, तो ऐसी ही रुदन भरी आवाज निकलेगी। जीवन की धुरी भी तेल माँगती है। वह है अपने काम म साँसा का सगीत भरने का विश्वास।'

जागरी ने कहा 'बाबा कहा करते थे, पौधे के लिए चिकनी उपजाऊ मिट्टी चाहिए। अपने आप को स्थिति के अनुकूल ढालने की क्षमता पौधे मे प्रकृति से आती है। यही ढग आदमी का है। कल मैंने उस यात्री से पूछा—नारी जादू बनकर हमारी आत्मा म क्यो उतरने लगती है?'

"तो उसने क्या उत्तर दिया?' रूपक चुप न रह सका, 'कभी-कभी हम खुद भी नही जानते कि जिसके हम सचमुच इच्छुक हैं, वह क्या है।

'वह यात्री कह रहा था, पलटूदास मिल जाएँ ता मैं उनस पूछूँ—महाराज, क्या भगवान् बुद्ध ने यही सोचकर कहा था—'आनन्द! मैंने जो धम चलाया था, वह पाँच सहस्र वष तक चलन वाला था, किन्तु अब वह केवल पाँच सौ वष चलेगा क्योंकि मैंने नारी को भिक्षुणी बनने का अधिकार दे दिया है। यह यात्री अवाक सा मेरी ओर देखता रह गया।

'तो आपने उस पर रोब डाल लिया? रूपक हँस पडा 'वाह बाबा!'

नीलकण्ठ बठा पत्थर कोरता रहा। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह पत्थर को जी जान से चाहता है। जसे गढी जा रही नारी मूर्ति के ओठ उसके चुम्बन के लिए फरफरा रहे हों और इसके उत्तर म वह कहना चाहता हो—मेरी तो जान भी हाजिर है। चुम्बन न हुआ, जादू हुआ! जिसके ओठ हैं उस चुम्बन कस नही मिलेगा? नीलकण्ठ ने मानो मूर्ति से बातें करते हुए कहा, 'क्यो सुन्दरी, तुम अपने रूप से बेसुध तो नही हो न! मैं वचन देता हूँ तुम्हारे मन को ठेस नही पहुँचाऊगा।'

जागरी हँसकर बोला, तो क्या इस मूर्ति को ही अलबीरा समझ

वठ ?"

रूपक ने मूर्ति गढते हुए कहा, "गुरुदेव कहा करते थे, जब भाव जाग उठे, तो छोड दो। थोडा-सा काम रह गया। पत्थर म भाव उसी तरह जागता है, जसे फूल खिलता है।"

दोपहर कभी का ढल चुका था। फिर भी वाहर धूप का जोर कम नहीं हुआ था। लगता था, समय की गति धीमी पड गई है। नीलकण्ठ और रूपक बार-बार पसीना पोछने लगते। जागरी को उतना पसीना नहीं आता था। "बतियाने मे कौनसा जोर लगता है, जो मुझे पसीना आएगा ?" जागरी हँस पडा।

नीलकण्ठ न प्रसग बदलकर कहा, "कोइली जब यहाँ थी, तो यहाँ लटटू की तरह घूमती थी—कभी घर म, कभी मूर्तिशाला म। अब महा नदी क किनारे बैठकर कविता लिखती होगी।'

'सुना है, अन्नदा बाबू ने उसकी कविताओं क अग्रजी अनुवाद किये हैं।' जागरी चुप न रहा।

मैंने भी सुना है। पर अन्नदा बाबू के अनुवाद मरी नज़र से नहीं गुज़रे।"

"सुना है अन्नदा बाबू न वे अनुवाद लन्दन भिजवाए है और एक प्रकाशक को लिखा है कि शानदार पुस्तक छपनी चाहिए।

'अब यह अन्नदा बाबू का काम है।

कोइली न तुम्ह नहीं लिखा ?'

"उसन जरूरत नहीं समझी होगी।'

"सुना है, अन्नदा बाबू ने कोइली की वे चौदह कविताएँ खासतौर से अनुवाद के लिए चुनी है जिनम उसने हाथीदाँत वाले पीढ पर बठन की लालसा दरसाई है।

'तुम तो मुझसे ज्यादा जानत हो, जागरी !'

'तो तुम बुरा मान गए ?"

'मैं क्या बुरा मानने लगा ?'

"कवयित्री के रूप में कोइली का सितारा दूर दूर तक चमकेगा।" जागरी कहता चला गया, 'पहली बात तो यह है कि कोइली की कविता की भाषा उसके रक्त में बहती है। दूसरे, वह मन की राजधानी में बैठकर लिखती है। इतने घर्षे खाकर भी जीवित रह गया हमारा प्रेम! कितनी भारी क्रान्ति आज मनुष्य के भीतर हो रही है! हम तो बाहर ही-बाहर देखते हैं'

"तुमने कोइली की यह कविता भी तो पढ़ी होगी" नीलकण्ठ ने जागरी की बात काटकर कहा, जिसमें उसने शिकायत की है हाय हमारे भीतर एक बौना आदमी छिपा बैठा है जो आज भी हमारे मन को राहु की तरह ग्रसे हुए है।

बाहर से डाकिए ने पुकारा चिट्ठी ले लो।

नीलकण्ठ ने उठकर लिफाफा ले लिया। लिफाफा देखकर ही वह समझ गया कि श्रावीरा का पत्र है।



नीलकण्ठ ने यह पत्र तीन बार पढा। मूर्तिशाला से निकलकर वह त्रिमूर्ति के सामने जाकर खडा हो गया। त्रिमूर्ति मे बाबा की मूर्ति को प्रणाम करके उसने कहा 'बाबा, विष पीछे पीना। पहले अलबीरा का पत्र सुन लो।

बाबा क्या बोलते ? वह तो पत्थर के देवता थे।

अलबीरा ने लिखा था

'प्रिय नील,

इतने दिनो बाद यह पत्र लिख रही हूँ। तुम्हे यह जानकर खुशी होगी कि शेक्सपियर पर मेरा थीसिस लन्दन यूनिवर्सिटी म स्वीकृत हो चुका है और मुझे इसी सप्ताह डी० लिट० मिल जाएगी। इस थीसिस की तयारी म युद्ध के कारण वे सुविधाएँ तो न मिल सकी, जो शान्ति के युग म सम्भव होती फिर भी मैं अपने काम मे लगी रही और वह सम्पूर्ण हो गया।

लन्दन अब फिर से मुस्कराने लगा है। इगलिश चैनल म पहले के समान ही जहाज आने-जाने लगे हैं। छोटे-बडे जहाजो, समुद्री वायुयानो और मोटर किश्तियो का दृश्य फिर से देखने वालो को प्रसन्न करने लगा

हिन्दुस्तान को छेद वाले छोटे पैसे के दर्शन कराए और किसी दूसरे सिक्के में छेद नहीं कर पाया?

"यहाँ की हालत क्या बताऊँ? ऊपर से देखने से लगता है यहाँ कोई गड़बड़ नहीं है, पर भीतर बहुत-कुछ खोखला हो चुका है। महायुद्ध से जो नुक्सान हुआ उसकी क्षति-पूर्ति में बहुत दिन लगेंगे। इन्सान अपने को खूब धोखा दे सकता है। लोग बात-बात पर आज भी 'लवली', 'स्वीट', 'नाइस', 'एक्सलेण्ट' और 'वण्डरफुल' कह उठते हैं। लगता है हर शब्द अपना मतलब खो बैठा है। हर शब्द भीतर के दुःख को और भी कुरेदने लगता है।

"हिन्दुस्तान को राजाओं, महात्माओं और सपेरों का देश कहने वालों की यहाँ आज भी कमी नहीं। इन्सान इतिहास से कुछ भी नहीं सीखना चाहता। क्या यह बात आज के इन्सान को शोभा देती है कि कुछ जहाज़ी कम्पनियाँ अपने जहाज़ों में एशिया के यात्रियों को जगह नहीं देतीं, भले ही केबिन के अनेक स्थान खाली रह जाएँ? इन्सान का यह भेद-भाव कब तक चलेगा?

"मैं तो उस दिन की राह देख रही हूँ जब जहाज़ में बैठकर कलकत्ते के लिए चल पड़ूँगी। कलकत्ता में मेरा जन्म हुआ। उसके साथ बचपन की यादें जुड़ी हुई हैं। चौरंगी देखे इतने दिन हो गए। कलकत्ते की न्यू मार्केट देखने को भी दिल उछल-उछल पड़ता है। ट्राम में बैठे बंगाली लोग किस तरह न्यू मार्केट जाकर 'हिल्सा' मछली खरीदने की बात करते हुए चटखारा लेते हैं! यह बात भुलाए नहीं भूलती। आज इतने दिनों बाद एक बूढ़े बंगाली का चेहरा आँखों में घूम गया, जिसने ट्राम कण्डक्टर को क्वीन विक्टोरिया की तस्वीर वाला घिसा हुआ पैसा वापस करते हुए कहा था—'यह नहीं चलेगा।' कण्डक्टर ने हँसकर कहा—अरे कभी पैसा भी चलने से रहा है, मोशाय? कण्डक्टर के लाख समझाने पर भी वह बंगाली सज्जन यही कहते रहे—क्वीन वाला पैसा नहीं चलेगा। किंग जाज वाला चलने सकता है। हम तो सुनता है किंग जाज

वाला भी बन्द हो गया। अरे, हम तो नया वाला किंग का तस्वीर पर ही विश्वास करने सकता।' काश तुमने उस चश्माधारी बूढ़े बंगाली की मूर्ति बनाई होती! उसकी आवाज़ में बदलते हुए इतिहास का स्वर था। आज भी टाइम पीस के अलार्म की तरह बज रही है वह आवाज़।

"तुम तो मेरी आवाज़ सुन ही नहीं रहे नील! तुम तो बस छेनी चलाए जा रहे हो। यह किसकी मूर्ति तराश रहे हो? लन्दन की नयी तराश सीखकर उडीसा की पुरानी तराश तो भला कैसे पसन्द आएगी? पर निर्मूर्ति में बाबा की मूर्ति तराशते समय तुमने पहले की दोनों मूर्तियों का ध्यान रखा, यह अच्छा किया। उसमें लन्दन वाली तराश रखी होती तो पहले की दोनों मूर्तियों के साथ उसका मेल कैसे बैठता? फिर भी वह पुरानी उड़िया तराश की ही नकल नहीं है, उसमें नई तराश ने भी स्थान पाया है। पत्थर भी कोई एक ही तरह का नहीं होता। पत्थर का स्वभाव समझकर ही छेनी चलानी होती है।

'कभी कलकत्ते भी जाना होता है या नहीं? डैडी से तो मिलते ही होगे?

"मैं चौदह जुलाई को कलकत्ते पहुँच रही हूँ। पहली अगस्त से मैं रावेन्शा कालिज, कटक में अँग्रेजी विभाग की मुख्य अध्यापिका का पद सँभाल रही हूँ। महानदी के किनारे रहना होगा। महानदी मुझे अच्छी लगती है। पर यह बात तो तुम्हारे कान में कहने की है, नील! महानदी में बाढ़ भी आती है। शब्द की नदी में भी बाढ़ ले आता है कविता का जादू। यही जादू पत्थर को मूर्ति में ढाल देता है।

तुम्हारी अपनी

अलबीरा"

यह पत्र नीलकण्ठ ने एक बार फिर पढ़ा और बाबा की मूर्ति के सामने हाथ फैलाकर कहा, "बाबा अलबीरा का पत्र सुनोगे?" पर बाबा क्या बोलते? वह तो पत्थर के बाबा थे।



सोना ने यह पत्र सुना होता तो गाँव म ढोल बजवा दती। पर वह गुरुचरण की रासलीला-मण्डली के साथ बाहर गयी हुई थी। जागरी ने दो चार जगह अलवीरा के पत्र की चर्चा अवश्य की। किसी ने ध्यान न दिया।

न तो अलवीरा की इस खबर म किसी को रस आया कि वह चौदह जुलाई को कलकत्ते पहुँच रही है, न किसी को यह बात झकझोर सकी कि वह कटक के रावेन्शा कालिज मे पहली अगस्त स नौकरी करेगी। वैद्यजी की दुकान पर जागरी ने अपनी यात्रा का बात चलाकर कहा "मैं सिलीगुडी से पूर्णिया गया। सफर अच्छा कटा। कटिहार होकर स्टीमर से गगा पार करने की याद तो कभी भूलने की नहीं।'

'उस यात्रा म भी हमारा अन्तराल कहीं न मिला? वैद्यजी ने रुँधे कण्ठ से कहा, 'तुम उसका पता लगा लो, तो पूरे पाँच सौ गिनकर तुम्हारे हाथ पर रख दूँ।

"पाँच सौ का इनाम तो कम नहीं, वैद्यजी। पर अन्तराल को कहाँ ढूँढा जाए? अपूर्व का भी तो पता नहीं चला। दोनों गाँव से ऐसे गायब हुए जसे

वद्यजी बोले, "क्षेना लौटकर आएँगे एक दिन।"

इतने मे मायाधर और गगन महान्ती आ गए। 'आओ, महाराज! धन्य भाग हमारे जो आप पधारे!" वद्यजी ने दोनो महानुभावो को फटी हुई दरी पर बिठाते हुए कहा।

"अखबार की क्या खबर है?" मायाधर मुस्कराए, "हम और कुछ नही पूछते। देश का क्या बनेगा?"

'देश का और क्या बनना है?" गगन महान्ती बोल उठे, 'जब तक हिन्दू मुसलमान एक नही होगे, देश का यही हाल रहेगा। ये एक होगे नही और अँग्रेज को बागडोर अपने हाथ म रखनी पडेगी।"

मायाधर ने गम्भीर स्वर मे कहा, "युद्ध के दिनो म बगाल को अकाल और महामारी की मार सहनी पडी। उस हाहाकार की आवाज तो धौली तक आ पहुँची थी।

"वे दिन याद न कराओ दादा! वद्यजी ने दवा की पुडिया बाधते हुए कहा, "अखबार म बस एसी ऐसी खबर भरी रहती थी कि चटगाँव, गोहाटी और कोहिमा म युद्ध की तयारिया हो रही हैं। कभी शिवोई, दीमापुर, फेनी, मेदिनीपुर और प्याराडोबा की छावनियो की खबरें उछलकर ऊपर आती, तो कभी पानागढ, वासुदेवपुर, उखरा और खडगपुर की छावनिया की खबरें ही पढने का मिलती। आज इतने अमरीकी और आ गए अँग्रेजो की मदद के लिए। बाप रे! अब तो बहुत-से फौजी अड्डे अपने आप उठ गए। ज्यादातर असर तो बगाल पर ही हुआ था, जापान के डर मे! अब वह हालत नही रही। फौजी काफिले अब उन सडको पर नजर नही आते होगे। उन दिनो तो हमारी पुरी वाली सडक पर भी जीप, टक, वपन करियर और न जाने कसी-कसी विचित्र-सी मोटर-गाडियो वाला काफिला नजर आ जाता था। धरती का यह हाल था तो आकाश पर भी अँग्रेज और अमरीकी जहाज मँडरात रहते थ। अखबार म यही लिखा रहता था कि वे सब बे-सर लडाकू हवाई-जहाज हैं। अब तो उनकी याद रह गई। शान्ति ही अच्छी है। भगवान करे,

फिर कभी युद्ध न हो।

जागरी हँसकर बोला, "पर आप तो अन्तराल को याद कर रहे थे, वैद्यजी !"

"अन्तराल को कैसे भूल जाएँगे ?' गगन महान्ती ने कहा, 'कौन जाने, वह किस हाल में होगा। गुस्से में आकर वैद्यजी ने उसे इतना मारा कि वह घर से निकल भागा और आज तक हाथ नहीं आया।'

"अपूर्व को तो किसी ने नहीं मारा था,' वैद्यजी चुप न रह सके, "वह क्या घर से भाग गया ? अब अन्तराल को कहाँ ढूँढें ? लौट आएगा एक-न-एक दिन।'

गगन महान्ती हँसकर बोले 'तुम अपूर्व को ढूँढो। अन्तराल अपने आप घर आ जाएगा।'

'भगवान् की कृपा होगी तो अन्तराल और अपूर्व दोनों लौट आएँगे।' मायाधर ने विश्वासपूर्वक कहा दोनों में से एक के पास भी फूटी कौड़ी नहीं थी, जब घर से भागे। जाने किस-किस मुसीबत से गुज़रे होंगे ? वे जहाँ भी हैं भगवान् उन्हें प्रसन्न रखे।'

जागरी हँसकर बोला, 'वे सोचते होंगे इतना क्या बदल गया होगा धौली ? कलकत्ते जाकर रिक्शा तो खींचने से रहे। पढ़ाई लिखाई कुछ तो काम आई होगी।'

"तुम भी तो भाग गए थे, जागरी ! वैद्यजी ने घोर गम्भीर स्वर में कहा 'तुम तो कई बार भागे कई बार लौटे। धौली के लिए बड़ी लज्जा की बात है कि अन्तराल और अपूर्व लौटकर नहीं आए।

मायाधर प्रसंग बदलकर बोले 'अंग्रेज हम पहले के समान ही गुलाम बनाए रखेगा या अपनी नीति बदलेगा ? युद्ध में भले ही वह जीत गया, पर भीतर से कमज़ोर हो गया। हमारी गरदन पर उसका पंजा नहीं रह सकता।"

गगन महान्ती ने कहा, अंग्रेज कहीं नहीं जाएगा, और न उसे जाना चाहिए। सच्चे और ईमानदार लोगों की अपने यहाँ इतनी कमी है। हम

स्वराज्य के योग्य नहीं बन सके। अंग्रेज तो चाहता है कि एक दिन हम स्वराज्य दे डालें।'

"वाह श्रीमान् गगन महान्तीजी महाराज!" मायाधर ने व्यंग्यपूर्वक कहा, "आपको गुलाम रहना ही पसन्द है। अंग्रेज के कसे-कसे पिट्ठू पड़े हैं इस देश में!"

वैद्यजी बोले, 'इसे छोड़िए। मैं कह रहा था अन्तराल और अपूर्व कहीं भी रहें, हम अपनी खबर भेज दिया करें। उनसे तो अलकीरा ही अच्छी है, जिसने नीलकण्ठ को खबर भेज दी कि वह चौदह जुलाई को कलकत्ते पहुँच रही है और पहली अगस्त से कटक के रावेन्शा कालिज में अंग्रेजी पढ़ाया करेगी।

गगन महान्ती ने कहा, 'फिर तो वह यहाँ भी आया करेगी। त्रिमूर्ति देखने तो जरूर आएगी।"

मायाधर बोले, हम उसे बताएँगे कि अन्न के अभाव में कैसे हाहाकार मचा रहा कैसे भिखारियों को भीख मिलनी कठिन हो गई थी!'

"हम यह भी बताएँगे कि फौजी लोग मोटर इतनी तेज चलाते थे कि कभी गाड़ी उलट जाती और कभी किनारे के पेड़ से जा टकराती। गट-गट मदिरा के गिलास चढ़ाकर मोटर चलाने पर जाने कितनी बार उनका यह हाल हुआ।' कहते-कहते जागरी हँस पड़ा।

'ये पथ की बातें छोड़ो!' गगन महान्ती कहते चले गए 'हममें यह जो देश-प्रेम की भावना आयी अंग्रेजों से ही आयी। जिसे गुलामी कहते हैं उसमें भी हमने बहुत कुछ सीखा है। इससे कौन इन्कार कर सकता है? हमारे महात्मा गांधी भी तो अंग्रेज की ही देन हैं।

और आप भी?" वैद्यजी चुप न रह सके, "इसे छोड़िए। आज के अखबार में एक लेख आया है। उसमें फ्रांसीसी कवि रेनर मारिया रिल्के का एक अछूता विचार उद्धृत किया गया है। सुनेंगे?"

"जरूर सुनेंगे!" मायाधर ने कान लगाये।

वैद्यजी अखबार खोलकर बोले, 'सुनिए। कवि लिखता है—

'और सब कुशल हैं ?' अलवीरा ने पूछा।

रूपक जाने क्या सोचकर बोला, 'हम तो गुरुत्व की याद बहुत सताती है।'

'वह तो युग पुरुष थे।' अलवीरा ने रुँधे हुए स्वर में कहा।

त्रिमूर्ति पर पानी बरस रहा था, जैसे हर बूँद टकराकर पीछे हट जाती हो।

अलवीरा बार-बार कलाई की घड़ी में समय देखने लगती।

कटे घुंघराले बाल झटककर साड़ी का पल्लू ठीक करते हुए अलवीरा मुस्करायी, 'वर्षा ने रोक रखने की कसम खा ली है पर मुझे तो आज ही जाना है।'

काला किनारा वाली सफेद साड़ी के साथ अलवीरा ने काला ब्लाउज़ पहन रखा था। लगता था लन्दन में दस ग्यारह बरस के प्रवास में वह ज़रा भी नहीं बदली।

गहरी साँस लेकर वह बोली, 'अच्छा तो अब चलें।'

'अभी रुको।' कक्काजी मुस्कराए 'इतनी वर्षा में हम नहीं जाने देंगे।'

"शाम की गाड़ी तो मुझे हर हालत में लेनी है। मैं फिर आऊँगी।

"अभी बहुत समय है अलवीरा!' नीलकण्ठ चुप न रह सका "तुम्हें शाम की गाड़ी चाहिए या कुछ और ?"

तुम और क्या दोगे ?" जागरी ने चुटकी ली।

अलवीरा ने गरदन ऊँची करके त्रिमूर्ति पर नज़र डाला और उसने कहा, त्रिमूर्ति ने धौली की शान बढ़ा दी नील! विषपान का भाव बाबा के मुख पर देखते ही बनता है! नीलकण्ठ, इससे अच्छा काम तुम्हारी छेनी नहीं कर सकती थी।' वह गहरी साँस लेकर बोला "ऐसे ही थे हमारे बाबा! गुस्सा तो उन्हें छू भी नहीं गया था।'

"तुम्हारा मतलब है वे विष पान न करते तो अब तक जीवित रहते ?' जागरी ने पूछ लिया।

"अब तो दो चार भी जीवित हैं," अलवीरा ने रुँधी हुई आवाज़ में कहा, "अब तक विभूति रहेगी, बाबा जीवित रहेंगे।"

बधेजा ने कहा, "बाबा इस देश को स्वतन्त्र देखने का सपना लिए हुए चले गए। वह सपना जाने कब पूरा हो!"

"वह तो पूरा होकर रहेगा।" अलवीरा मुस्करायी।

बँधेजा की आँखें चमक उठीं।

"देखिए, इतिहास के पहिये अब और भी तेज़ घूमेंगे!" अलवीरा ने विश्वासपूर्वक कहा, "बाबा का सपना अवश्य पूरा होगा।"

विभूति में महात्मा गान्धी के मुख पर भी जैसे अलवीरा के इस बात की प्रतिक्रिया हुई। चन्दा माँगते हुए उनका हाथ आगे को बढ़ा हुआ था जैसे वे कह रहे हों—चन्दा दोगे तो स्वराज्य ज़रूर मिलेगा।

"बुद्ध के रूप में गान्धी के मुख पर कितना अपनापन है!" बधेजा ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा, "बुद्ध का यह मूर्तिकार वाला रूप हमारे धौलों के बूढ़े बाबा की कला है। आदमी चला जाता है, उसकी कला रह जाती है। कला की आयु आदमी की आयु से बहुत ज़्यादा होती है।"

वर्षा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। बिजली कड़कती तो लगता यहीं कहीं गिरती।

"कलकत्ता कहीं भागा जाता है?" बधेजे बोले, "तुम आज यहीं रहो, अलवीरा!"

"यह कैसे हो सकता है?" अलवीरा ने नीलकण्ठ की ओर गरदन घुमाई।

"ऐसा ही होगा अगर वर्षा न रुकी।" नीलकण्ठ ने कहा, "इस वर्षा में तो बैलगाड़ी वाला भी हमें स्टेशन नहीं ले जाएगा।"

बाबा तो इन सब बातों की अनसुनी करते हुए विष-पान कर रहे थे। उन्होंने तो सचमुच विष-पान किया था।

अलवीरा को लगकर भी ध्यान न आया कि कटे हुए घुँघराले बालों के साथ उसकी साड़ी इन बालों को कैसा लग रहा है। कलाई की घड़ी में

समय देखकर बोली, अच्छा तो अब चलें, नील ।'

नीलकण्ठ बोला इस वर्षा में बनगाड़ी वाला हम कैसे न जाएगा ?

'अच्छा ता मैं चलती हूँ नील ।'

कैसे ?'

पैदल हा ।

वर्षा म भीगते हुए ? गिर गइ ता हड्डी पसली का पता नहीं ।'

मैं जाऊंगी ।

हम तुम्हे यह मूर्खता नहीं करने देंगे । नील ने बलपूर्वक कहा 'आराम से ता सब हो जाएगा ।

नील मे क्या जानती थी कि धौली म इतनी मुसीबत होगी । उसने नाल की तरफ देखकर घुघराले बालो को झटका दिया ।

इतने म एक बलगाड़ी आती दिखायी दी । मूसलाधार वर्षा की परवाह न करते हुए बनगाड़ी इधर ही आ रही थी ।

नीलकण्ठ बोला 'गाड़ी वाला मान गया ता इसी म हम स्टेशन चलेंगे ।'

अभी रुको । वद्यजी मुस्कराए ।

बलगाड़ी आकर वद्यजी की दुकान के सामने रुकी ।

अंग्रेजी सूट पहने एक नौजवान नीचे उतरा, और आकर दुकान में बेंच पर आकर बैठ गया ।

नीलकण्ठ ने गाड़ी वाले से वापस चलने का मामला तय कर लिया और वह अनगौरा को लेकर गाड़ी म जा बैठा ।

गाड़ी स्टेशन के लिए चल पड़ी । जागरा ने अपरिचित युवक से पूछा क्या अश्वत्थामा चट्टान पर अशोक का शिलालेख देखोगे ?

देखेंगे जो भी दिखा सको ।

वद्यजी ने आवाज पहचानकर कहा "अरे तुम अन्तराल तो नहीं ?

हाँ पिताजी ! कहते हुए अन्तराल वद्यजी के चरणों से लिपट गया ।



अन्तराल का घर से भाग जाना अच्छा था या बुरा — इस विषय पर बदला तक न कर सका। भागमती भी बेटे को पाकर धन्य हो गई। उसने रुककर बेटे को डाँटा 'तुम घर से क्यों भाग गए थे?' उत्तर में अन्तराल हँसता रहा। बड़ी लापरवाही से माँ की बात सुनता रहा।

बदला का गुस्सा फिर अपने-आप दूर होता हुआ सा गया। अन्तराल को घर की राह याद आ गई और वह फिर से चला आया यही क्या कम था? खुशी से उनकी आँखें चमकने लगीं। बोले 'मुझे पूरा भरोसा था, तुम लौट आओगे।'

'इतने दिन कहाँ रहा अन्तराल?' गाँव में हर कोई यही प्रश्न करता था।

विभूति पूजा हो रही है। अब गाँव की सबसे बड़ी खबर यही है। पास से गुजरते लड़के ठिठोली करके हँसा करते, उस विभूति का मजाक उड़ा रहे हैं। सहसा आगे बढ़कर अन्तराल लड़कों को हँसने से मना करता। कोई लड़का पत्थर का छोटा-सा टुकड़ा उठाकर विभूति पर फेंकता, जैसे निशाना साधने के लिए विभूति ही रह गई हो। अन्तराल उन्हें मना करता। 'विभूति पर किसी ने पत्थर फेंका, तो उसे पुलिस में दे दिया जाएगा।'

बघजी वाल किम किमसे उलभाग बटा ! जब तुम छोट थे, तुम भी यही सब किया करते थे। तब त्रिमूर्ति अपूर्व थी। बच्चे शतानी नहीं करेंगे, तो और कौन करेगा ? पहले तो बच्चों के थप्पड भी लगा देते थे। अब तो कोई किसी को कुछ नहीं कह सकता। हवा बदल गई।

नीलकण्ठ और जागरी का विचार था अन्तराल खूब मौके से आया जसे कोई गडा खजाना हाथ लग गया हो। अन्तराल बार बार चौंक उठता। कभी सोना के रासलीला में उतरने की बात उसे चकित कर देती कभी वह यह सोचकर झूम उठता कि अलबीरा और नीलकण्ठ में हृदय का सम्बन्ध हो गया है।

जागरी कहता हमारी तरह कितने आये कितने गये।

अन्तराल प्रसंग बदलकर उत्तर देता जब भी मैं धौली का नाम सुनता था मेरे कान खडे हो जाते थे।

नीलकण्ठ पूछता पर तुम रहे कहाँ इतने दिन ? कुछ भेद क्यों नहीं देते ?

अन्तराल अपनी बात छोडकर अपूर्व की बात ले बैठता।

अपूर्व कहाँ है इसकी कोई खोज खबर न थी। उसका नाम आते ही मानो स्वप्न-संगीत बीच में टूट जाता।

कौन जाने अपूर्व भी कब तुम्हारी तरह आ धमके ! जागरी हँसकर अन्तराल का कन्धा झकझोरता एक समय होता है जब आदमी घर से भागता है और फिर मन-ही मन गाँव का बुलावा पाकर लौट आता है।

अन्तराल ने बताया, घर से भागकर मैं कलकत्ते पहुँचा। कलकत्ते से पटने का रास्ता लिया। पढाई लिखाई में मन लगाया। बडा बनने का शौक कभी ठण्डा न पडा। पढते-पढते ग्रेजुएट हो गया। पढने के साथ साथ जान मारकर काम किया। तीन-तीन, चार चार ट्यूशनें की। खैरात नहीं माँगी। पटना में उडीसा के एक राजा साहब से भेंट हो गई। उन्होंने मेरी कथा सुनी और मुझे अपने राज्य में ले आए। राजा की नौकरी

करते करते मुझे धौली की याद आती थी पर राजा साहब छुट्टी नहीं देते थे। राज्य में रहें चाहे बाहर जाएँ प्राइवेट सक्रेटरी का तो साथ ही रहना होगा। राजा साहब के साथ मैं यूरोप की सैर कर आया। अमरीका भी हो आया। इन यात्राओं में राजकुमारी कुन्तल भी साथ रही। मैं कैसे कहूँ कि राजा साहब कितने खुश हैं? कैसे समझाऊँ कि राजकुमारी कुन्तल के मन पर मेरी छाप लग चुकी है? अलबीरा परम सुन्दरी सही, पर राजकुमारी कुन्तल से उसकी क्या तुलना करना चाहें? राजा साहब तो छुट्टी नहीं देते थे। राजकुमारी कुन्तल की सिफ़ारिश करानी पड़ी, तब काम बना। कैसे बताऊँ कि राजकुमारी कैसे हाव भाव दिखाती है?

जागरी और नीलकण्ठ ने सारी बात सुनी। फिर एक-दूसरे से आँखें मिलाकर मानो राजकुमारी के मन पर छाप लगने वाली बात तौलने लगे।

जागरी और नीलकण्ठ की आँखों में सन्देह देखकर अन्तराल ने कहा, सन्देह की दवा तो कहीं नहीं मिलेगी। देखो मैंने राजकुमारी की बात तुमसे कह दी। घर में तो इतना ही बताया है कि राजा साहब की मुझ पर विशेष कृपा है।

गाँव में यह ख़बर मशहूर हो गई कि अन्तराल राजा साहब का निजी मन्त्री है। राजा का मन्त्री होना बहुत बड़ी बात थी। लक्ष्मी को घर में आने से अब कौन रोक सकता था?

अन्तराल राजा साहब की नौकरी करता था अपने लिए। पर धौली वाले सोचते, इसमें उन्हें भी बल मिला है।

आप-ही आप अन्तराल के पैर मुन्शियाना की ओर उठ जाते।

रूपक हँसकर कहता, "हमें भी राजा साहब की नौकरी में ले चलो बाबा!"

"पहले काम सीख रे। पूरी तरह!" अन्तराल मुस्कराता "हाथ में गुण हो, तो काम मिलते देर नहीं लगती।"

रूपक के सामने राजकुमारी की बात तो नहीं की जा सकती थी। उसे तो यह नहीं बताया जा सकता था कि राजकुमारी के कारण स्वामी

बातें घुलती रहती हैं। उससे कम कहा जाता कि राजकुमारी परम सुन्दरी है और उसकी तो डाँट भी प्रिय लगती है। उससे कम बताया जाता कि राजकुमारी ने उसकी आदत खराब कर दी है? कम कहे कि विधाता की विचित्र रचना है, राजकुमारी! कितनी बार उसने मेरे सपनों में आकर कहा—मैं सब समझती हूँ! कितनी बार उसने झुंझलाकर कहा—तुम क्या जानो! यह सब प्रसंग स्वर के स्तर में बहुत ऊँचा था।

नीलकण्ठ को तो अन्तराल बता चुका था कि राजकुमारी कितनी सुन्दर और पढ़ी-लिखी है। राजकुमारी ने एक बार कहा था—मेरा तो दिमाग भी दिल की तरह धड़कता है! भगवान् करे सदा प्रसन्न रहे राजकुमारी!

राजकुमारी का फोटो भी तो था अन्तराल के पास। पहले जागरी ने देखा, फिर नीलकण्ठ ने। राजकुमारी से कैसे परिचय हुआ यह न उन्होंने पूछा न उसने बताया। एक सुर एक लय में तीनों मित्रों की बात चलती रहती। धीरे-धीरे अन्तराल के आगमन से एक नया रंग लहरा उठा था। राजकुमारी की कथा सुनकर जागरी हँस पड़ता, दुनिया में कोई किसी का नहीं, तो फिर राजकुमारी कैसे तुम्हारी बनी होगी?

अन्तराल मुस्कराकर चुप हो रहता।

गलत बात है। जागरी छेड़ता।

राजकुमारी लजाती है तो लाख कथा की परी प्रतीत होती है! एक दिन अन्तराल ने कहा, मैं उसकी पायल की आवाज़ पहचानता हूँ। वह सामने आती है तो मन-मयूर नाच उठता है।

अरे राजा साहब को पता चल गया तो नौकरी चली जाएगी। जागरी ने चुटकी ली।

राजा साहब सब जानते हैं। अन्तराल मुस्कराया, उन्होंने राजकुमारी को स्वयंवर का अधिकार दे रखा है।

राजकुमारी को तुमसे अच्छा वर नहीं मिला?

तुम क्या जानो? एक दिन वह हँसकर बोली—मैं चाहूँ तो पत्थर

म भी फूल खिला सकती हू । तुम क्या जानो जागरी ! उसने तो मेरी ही सौगन्ध खाकर राजा साहब को बता दिया कि वह मुझसे विवाह करेगी ।'

'पहले अलकारा व्याहा जाए धानो म फिर तुम राजकुमारी का व्याह होगा । जागरी खुशी स नाच उठी ।

अलकारान बोला, जागरी, सच जानो, राजकुमारी कुन्तल क मुख पर कुन्तलराशि घन की तरह छा जाती है तो वह स्वय अपने रूप पर झूम उठती है ।'

'तुम पर राजकुमारी कस रीझ गई '

'मुझसे नहा तो उसस सही । हसती है तो फूल भरत है । बात बात म मेरा सौगन्ध खाती है ।

जागरी और नीलकण्ठ को स्वीकार करना पडा कि राजकुमारी कुन्तल न अपनी अगुलियाँ अलकारान के दिल पर रख दी हैं ।

छुट्टी पूरी होन म एक दिन पहले ही अलकारान चला गया ।



मूर्तिशाला की बगिया के पेड़ पौधे सिर ऊँचा किये खुशी से झूमते रहते। नीलकण्ठ को रह रहकर ग्रलबीरा का ध्यान आता जो ग्रब कटक में पढ़ती थी और महानदी के किनारे रहती थी।

मूर्ति गढ़ते समय वह सोचता ग्रलबीरा तो ग्रपने आप में मग्न है शायद हमारी बात नहीं बनेगी। पर वैद्यजी ने गाँव भर में यह बात उड़ा दी कि ग्रलबीरा पूरे जोर से नीलकण्ठ पर डोरे डाल रही है।

वैद्यजी ने काइली की दादी के पास जाकर कहा नीलकण्ठ को ग्रलबीरा से बचाओ। नीलकण्ठ के मन प्राण अपनी मुट्ठी में रखो। जिस जाति ने हमारे देश को गुलाम बना रखा है क्या हम उसी की एक कन्या को धोती में बहू बनाकर लाएंगे? इससे बड़ा कलंक क्या होगा? नीलकण्ठ को समझाओ इससे तो बाबा की आत्मा को बहुत कष्ट होगा। नीलकण्ठ को समझाओ।

दादी बोली मेरे रहते नीलकण्ठ ऐसा नहीं करेगा।

वैद्यजी देर तक कोइली की दादी को तरह-तरह की दलील देकर समझाते रहे जैसे घोड़ा दौड़ रहा हो और सुमों के नीचे से चिनगारियाँ छूट रही हों। उन्होंने यहाँ तक कह डाला मैंने तो ग्रतगल से भी कह दिया

है कि राजा साहब की नौकरी करो, पर राजकुमारी के चक्कर में न पड़ो।

दादी ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, 'नीलकण्ठ को भी नौकरी मिल जाए तो मैं मना नहीं करूँगी।

'नौकरी तो कल मिल सकती है। वह हाँ तो करे। बुलके साहब के लिए उसे नौकरी दिलाना क्या मुश्किल है?'

यह सुनकर रूपक उदास हो गया। वह नहीं चाहता था कि नीलकण्ठ उसे छोड़कर चला जाए।

जब से गुरुदेव चल बसे थे, रूपक ने जागरी शाखा में कलकला दिखाने का अनुरोध करना छोड़ दिया था। वैद्यजी उससे कहते 'नीलकण्ठ को नौकरी की प्रेरणा दो, रूपक! पैसा आए तो घर भी सँभल जाए। याद रखो नौकरी तुम्हें भी करनी होगी एक दिन। हमारे अन्तराल को देखो। राजा साहब की नौकरी करता है तो क्या बुरा है?''

रूपक पर वैद्यजी की बात का जरा असर न हुआ। उसने कहा 'नीलकण्ठ दादा नौकरी करेंगे तो गुरुदेव की आत्मा को कष्ट होगा।''

वैद्यजी को अब अखबार से यह शिकायत नहीं रह गई थी कि धौली की खबर नहीं छपती। दवा की पुड़िया रोगी को देते समय वे उसे यह भी बताते ''हमारे अन्तराल ने घर से भागकर इतनी मेहनत की कि ग्रेजुएट हो गया। अब वह राजा साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी है। आया तो क्या-क्या उपहार लाया? गया तो मनीआर्डर भेजने लगा।

वैद्यजी नीलकण्ठ को समझाते 'तुम भी नौकरी कर लो, तो घर मनीआर्डर भेजने लगो। धौली में कितनी शोभा होगी! तुम्हें तो अन्तराल से भी बड़ी नौकरी मिल सकती है। राजा साहब से कहना हो, तो मैं अन्तराल को लिख दूँ। बुलके साहब का तो तुम्हारा संकेत ही काफी है।

सगन महान्ती भी वैद्यजी की हाँ-में हाँ मिलाते, 'मूर्ति पूरी करने की बात थी, वह कभी की हो चुकी, अब तुम्हें नौकरी करनी चाहिए।'

रूपक यह सुनता तो और भी उदास हो जाता, जैसे सबने

नीलकण्ठ का नौकरी पर भेजने की सौगंध खा ली हो।

'नीलकण्ठ को नौकरी करनी चाहिए ग्रन्तरात्मा की तरह।' वद्यजी थाप लगाते रहते।

मूर्तिशाला की धूल में अटी मूर्तियों पर नज़र जमाकर जागरी कहता "तीन चार सौ मूर्तियाँ बाबा छोड़ गए। अब तुम पत्थर छीलते रहते हो तीन! इससे क्या होगा? पैसा तो आता नहीं।

रूपक शिकायत भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता, जैसे कह रहा हो—जागरी काका आप भी नीलकण्ठ काका को नौकरी के जाल में फँसाने पर तुल गए!

टेढ़ी मेढ़ी युक्तियों की कुंज-गलियों से होकर नौकरी की बात आगे बढ़ती रहती। जागरी गाँजे का दम लगाकर धुआँ रूपक पर छोड़ते हुए कहता वटे जमूरे तुम नीलकण्ठ को नौकरी पर जाने से नहीं रोक सकोगे। जैसे नौकरी सामने खड़ी हो और रूपक ही बाधा डाल रहा हो।

वद्यजी नौकरी के पक्ष में युक्ति देते समय आँखों और ओठों से भी उतना ही काम लेते जितना जबान से। बात करते करते वे अपना कंधा नीलकण्ठ के कंधे से टकराकर कहते 'सब काम लक्ष्मी को प्रसन्न करके घर में घेर लाने के लिए ही तो किये जाते हैं।

यह नहीं कि गाँव की मूर्तिशाला में नीलकण्ठ का काम करना लोगों को बुरा लगता था पर अब तो हर कोई नीलकण्ठ की नौकरी के लिए ही चिंतित प्रतीत होता था।

'आप लोगों को ऐसी क्या मजबूरी है कि मुझे नौकरी की सलाह देते हैं?' नीलकण्ठ उत्तर देता और रूपक प्रसन्न हो जाता।

मैं नौकरी नहीं करूँगा, जागरी!' एक दिन नीलकण्ठ ने मूर्तिशाला में मूर्ति गढ़ते हुए कहा।

भूखे देश में नौकरी ही आज़ादी का रास्ता है।' जागरी ने हँसकर कहा 'गाँव में रहने का मतलब है ठनठन-गोपाल। विलायत गये, वहाँ पाँच साल लगाए फिर भी चार दिन मौज न की, दादी को सुख न

लिया। धिक्कार है इस जीवन पर !"

नीलकण्ठ ने उदास होकर कहा इन्सान का कोई साथी नहीं। अकेला आया अकेला जाएगा। जिस पत्थर की मूर्ति गढ़ता हूँ, वह मानो मूक भंगिमा से पूछता है—अच्छे तो हो मूर्तिकार ? और तब मैं सोचता हूँ, मैं अकेला नहीं हूँ, पत्थर मेरा साथी है।

जागरी बोला, "बाबा मूर्ति आरम्भ करने समय पत्थर से पूछा करते थे—अच्छे तो हो मित्र ? पर बाबा का युग और था। अब तो पत्थर से पूछकर मूर्ति आरम्भ करने की बात पर हँसी आ जाती है।

कई बार वद्यजी मूर्तिशाला में चले आते और नौकरी के पक्ष में पूरा भाषण झाड़ देते। 'पत्थर से पूछ देखा,' वद्यजी गम्भीर स्वर में कहते, 'यही सलाह देगा कि पैसा कमाओ। लड़ाई बन्द होने के बाद हर चीज़ के दाम बढ़ रहे हैं।

'नौकरी नहीं करोगे, तो खाओगे कहा से ? हम तो नौकरी मिलती नहीं। मिले तो झट कर लें।

जागरी कहता अलबीरा को भी तो नौकरी करनी पड़ी। फिर तुम्हें किसकी शरम है, नील ?'

वद्यजी और जागरी में इस मामले पर समझौता हो गया था कि नीलकण्ठ को नौकरी पर भिजवाकर ही दम लेंगे। दोनों एक-से एक बढ़कर युक्ति देते। दोनों यही तोलते—नीलकण्ठ को नौकरी करनी ही होगी ! वद्यजी अत्युक्ति में संकोच करते, न जागरी।

गाँजे का दम लगाकर धुआँ रूपक पर छोड़ते हुए जागरी कहता, बच्चे जमूर, तुम क्यों चुप हो ? नीलकण्ठ की नौकरी के लिए भगवान् से प्रार्थना करो। तुम्हारी नौकरी के लिए हम प्रार्थना करेंगे।"



एक दिन वद्यजी का एक पत्र मिला। यह अपूर्व का पत्र था। कन्ध-प्रदेश से आया था। पत्र के नीचे अपूर्व का नाम पढ़कर वद्यजी खुशी से उछल पड़े। सोचने लगे—आखिर पत्र लिखने के लिए अपूर्व ने मुझे ही क्यों चुना? जाने क्या लिखा हो? शायद कुछ माग भेजा हो।

अपूर्व की पहली सूचना तो यह भी थी कि वह कन्ध प्रदेश के एक स्कूल मे अध्यापक है। दूसरी खबर यह थी कि उसने एक कन्ध-कन्या से विवाह कर लिया है।

वद्यजी से सुनकर जागरी ने यह बात गाँव भर मे फैला दी।

यह बात जागरी की समझ मे नही आ रही थी कि अपूर्व ने किस तरह की कन्ध कन्या से विवाह किया है। उडिया कन्याओं की ऐसी क्या कमी हो गई थी कि कन्ध कन्या से सम्बन्ध जोडना पडा? इस प्रश्न का उत्तर तो वद्यजी के पास भी नही था।

नीलकण्ठ ने यह खबर सुनी तो कहा वद्यजी आदमी अकेला नही रह सकता। अपूर्व ने अच्छा किया कि विवाह कर लिया। वह कन्ध कन्या इतनी बुरी तो नही होगी।

वद्यजी छूटते ही बोले दूसरी बात क्यों भूल रहे हो नील? अपूर्व

स्कूल म पढाना है। तुम्ह भी नौकरी करनी होगी।

नीलकण्ठ मुस्कराकर बोला, क्या नदी किसकी नौकरी करती है? सदियो से मछुआरे मछलियाँ पकडते रहे हैं और पकडते रहेंगे। पर क्या नदी का काम है बहते रहना और मछलिया पैदा करते रहना। मेरा काम है मूर्तियो गढते रहना। नौकरी की बात कहाँ आती है?

बडजी भी कब दबने वाले थे! बोले 'यह किधर की युक्ति है? देखते नहीं? क्या नदी आगे बढती है। आगे बढना ही जीवन है। और आगे बढने के लिए नौकरी करनी पडे तो क्या बुरा है?

वह देखता रहा। बडजी घुटनो के बीच म ठुड्डी जमाए बैठे न जाने किस सोच डूब म गए। जब भी युक्ति काम करती नजर न आती वह इसी तरह बैठते थे।

उह अपूर्व का पत्र पाकर उतनी ही खुशी हुई जितनी अन्तराल से मिलकर हुई थी। फिर उन्होंने बोलना आरम्भ किया तो बोलते ही चले गए। बोले, आज बाबा जीवित होते, तो अपने आप नीलकण्ठ को नौकरी करने की प्रेरणा देते। अन्तराल नौकरी करता है, और अपूर्व भी।'

अपूर्व का पत्र नौकरी की दलील बनकर आएगा, इसकी तो नीलकण्ठ को आशा न थी। नौकरी की बात टालकर नीलकण्ठ बोला, 'यह तो लिखा ही नहीं कि विवाह कब किया।'

मूर्तिशाला म मूर्ति गढते हुए नीलकण्ठ को ऐसा प्रतीत होता कि यह पत्थर जिस पर वह छेनी चला रहा है उसके मुह पर चाँटा मारकर पूछ सकता है—क्या तुम नौकरी पर जाने की सोच रहे हो?

जैसे हाथ की अधूरी मूर्ति पूछ रही हो—क्या तुम बाबा की आत्मा को धोखा देकर नौकरी कर लोगे?

हर कोई यही पूछ रहा था इतने दिन बाद अपूर्व ने पत्र लिखा। क्या पहले नहीं लिख सकता था?'

बडजी के पास तो इसका कोई उत्तर नहीं था। वे हँसकर यही

कहते अपूव के मन का रग बिलकुल ही बदल गया होता तो वह यह पत्र न लिखता।

जागरी कहता यह तो ठीक है बाबा! उसके मन का राग अनुराग नहीं बदला। फून की मुस्कान बता देती है बसन्त आ गया। अपूव ने अपने मन पर व्यथ का भार नहीं पडने दिया और एक वध कन्या का घर म बसा लिया। यह ता अच्छा हुआ।

बद्यजी मुस्कराकर कहत, 'घी की आहुति देने म आग की ज्वाला ऊपर उठती है वस ही यह पत्र आया है।'

नीलकण्ठ उत्तर देता यह ता ठीक है बाबा! जानत हो आकाश की ओर अधिक कौन देखते है?

'जो आँखो पर रगीन चश्मा लगा लते हैं।

'वाह बाबा! बूझ लिया। मैं कह रहा था कि अपूव ने आँखो पर रगीन चश्मा नही लगाया होगा। वह बराबर धरती की ओर देख रहा है। तभी तो उस धौली की याद आई।

धरती की उपासना से ही मानवता की जय होगी। पर हम तो गुलाम हैं। खुशी की बात है अग्रज हमारी जन्मभूमि की आशा आकाक्षा को ऊपर उठाने म हाथ बटा रहा है।

आज के अखबार की क्या खबर है?

अखबार ने बता दिया था कि क्रिप्स मिशन दिल्ली आया है और राष्ट्रीय नेताओ स बातचीत की तयारियाँ जोरो पर हैं।

'आज बाबा होते तो देश के आज़ाद होने के लक्षण देखकर कितने प्रसन्न होते!' जागरी ने त्रिमूर्ति की ओर देखकर कहा, आप तो आज भी विष-पान कर रहे है बाबा!'

क्रिप्स मिशन का प्रसग छूट गया। त्रिमूर्ति सामने आ गई।

'त्रिमूर्ति तो युग युग तक रहेगी, काका! जागरी मुस्कराया 'इसके सामने यह बात तो किसे याद रहेगी कि धौली के अपूव ने किसी वध कन्या से विवाह किया था।

मामन पीपल के पत्ते खेल रहे थे। त्रिमूर्ति पर बैठा कबूतर कबूतरी का जोड़ा गुटरगू का स्वर साध रहा था। ठक-ठक ठक! जैसे कबूतर-कबूतरी के गुटरगू के पीछे भी मूर्तिकार की छेनी चल रही हो। गली में आने-जाने लोगों की पग ध्वनि भी जैसे ठक ठक के ताल पर चल रही हो। यही जीवन का ताल था। पीपल की पूजा होती आई थी, जैसे दूर पीढ़ी के बच्चे दादी-माँ से कहने आए थे—कथा कहो, दादी! वैद्यजी बैठे सोचते रहे और इस कथा में क्रिस्म मिशन की कथा तो जुड़ने से रही। शायद जुड़ जाए। उस कथा में अपूर्व का प्रसंग भी जुड़ सकता है। जिस कथ-कथा को लेकर उसने घर बसाया है उसे लेकर क्या वह एक बार खाली नहीं आएगा? वाह बेटा अपूर्व! तुमने तो कोणार्क के महाशिल्पी बिशु की याद ताज़ा कर दी। बिशु की उर्वशी भी तो कथ-कथा थी जिसे छोड़कर वह चला आया था। बाद में बिशु ने उस कथ कथा की छवि अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान पर दिखाने की चेष्टा की थी।

वैद्यजी बहुत प्रसन्न थे। उनके विचार तालियाँ पीटते बच्चों की तरह जैसे किसी दादी माँ से कह रहे थे—कथा कहो दादी! क्रिस्म मिशन की कथा कहो। अन्तराल की कथा तो वाह अपूर्व की। जैसे दादी माँ टालना चाहती हों और बच्चे लिपट रहे हों जिद कर रहे हों। पीपल के मुँह में जैसे दादी-माँ कथा कह रही हो।

अग्रवाल पर नज़रें गाड़े बैठे थे वैद्यजी। कोई खबर दौड़ा आती है, जैसे चील के पंखों की फड़फड़ाहट पीपल की फुनगी पर जाकर थम गई हो। कोई खबर बिल्ली की तरह दबे पैरों आती है। कोई ऐसे जैसे रात को एक हाथ में लालटेन दूसरे में लट्ठ लिये चलता है गाँव मुखिया। कोई ऐसे, जैसे धामले में बैठी चील टिटकार उठे। कोई ऐसे, जैसे गली का कुत्ता आकाश की ओर मुँह उठाकर एक विचित्र-से स्वर में रोने की आवाज़ निकाले। कोई ऐसे, जैसे कोई पगला मुँह पर हाथ रखकर हँस पड़े। वैद्यजी यही नहीं सोच पा रहे थे क्रिस्म मिशन की खबर सचमुच कैसे आई है।

क्या क्रिप्स मिशन की खबर एसे आई है जैसे अपूर्व का पत्र ?
वैद्यजी ने पूछा, 'तुम्हारा मन क्या कहता है जागरी ?

जागरी हँसकर बोला मुझसे पूछो तो कहूँगा यह खबर ऐसे आई है, जैसे गुरुचरण की घरवाली की कोख हरी होने की खबर जो आज तक पूरी नहीं हो सकी।

ऐसा मत कहो जागरी ! कौन जाने, क्रिप्स मिशन हमें स्वतन्त्रता दिला जाए !

अरे काका हम क्या अंग्रेज़ की बात भूल हुए हैं ? न नौ मन तेल हो, न राधा नाचे ! अंग्रेज़ तो हम ही दोष देगा।

'फिर भी आशा तो नहीं छोड़नी चाहिए।

आशा तो गुरुचरण की घरवाली भी नहीं छोड़ती। बेचारी न जाने कितने वर्षों से त्रिमूर्ति वाले चौराहे पर पीपल से सटकर जाड़े की आधी रात में अपने सिर पर नये घड़े का पानी डालकर नहाती आई है। स्नान के बाद वह टोना करना भी नहीं भूलती।

'मिठाई आटे का गोला और घी का दीया तो मैं भी देखता आया हूँ।'

'और यह नहीं देखा कि बेचारी की गोद तो भरी नहीं उल्टा उसे दौरा पड़ने लगा है।

'हे भगवान् ! किसी को यह दौरा न पड़े। न मुँह में झाग आए न आँखें लाल हों। वह तो अण्डबण्ड बका करती है। मरी तो कोई सुनता नहीं। हिस्टीरिया रोग का दौरा है, यह बात कोई मानता नहीं।

हाँ काका ! सब यही कहते हैं भूतनी लग गई। हर बार आभा आकर उसकी अंगुली ऐंठकर झोंटा खींचकर और नाक में लाल मिर्च की धूनी देकर भूतनी उतारता है। और फिर गुरुचरण की घरवाली होश में आकर साड़ी का आँचल सिर पर ले लेती है।

वैद्यजी देर तक समझाते रहे, "नारी की गोद न भरे तो उस आशा-स्थान कहाँ नजर आएगा ? गुरुचरण अपनी रासलीला मण्डली लेकर एक

छोर स दूसर छोर तक डाल सकता ह। पर इसमे क्या होता हवाला है ? उसकी घरवाली तो आज तक मा नही बन सकी। बेचारी कभी हँसती है, कभी गम्भीर बनने की कोशिश करती है। न जान किस उधेड़-बुन म लगी रहता है। गुरुचरण को रामलीला म अवकाश नहीं।"

'पेट जा लगा है काका' पट के लिये चलती है गुरुचरण की राम-लीला पट ही के लिए अपन की अध्यापकी और पट ही तो अन्तराल को राजा साहब की जी हुजूरी पर मजबूर करता है।

वैद्यजी फिर अपनी बात पर आ गए, हमार नव्य-काग मे तो एक ही गाद है नौकरी या कोई एसा धधा जा पसा दे। यह नहीं कि नीलकण्ठ की तरह वठ पत्थर छीलत रहा और कभी भूला भटका ग्राहक गाये भी तो मूर्ति वचा मे इकार कर दा। यह ता समभा, घर की जमीन है और दाल भात चल जाता है। पर व० सब तो नहा कर सकते। कल का विवाह करगा पराई बटी को कहा स खिलाएगा ?

'अलवीरा तो नौकरी करती है।

"तो क्या अलवीरा उम खिलाएगी ? उनी गगा बहगी ?

त्रिमूर्ति पर बठा कबूतर कबूतरी का जाडा गुटरगू-गुटरगू कर उठा, और वद्यजी का ध्यान त्रिमूर्ति की ओर चला गया। बोले, "रहती दुनिया तक बाबा इसी तरह विष पान करते रहगे।'

जागरी बिना कुछ कहे एकटक त्रिमूर्ति की ओर देखता रहा। उस लगा, समय भी त्रिमूर्ति को देखन के लिए रुक गया ह। वह बोलता, "सूरज गवाह है कि त्रिमूर्ति कैसे पूरा हुई। पर धौला के पल-पल का परिचय तो भला यह त्रिमूर्ति कहा स देगी ?'

वद्यजी न जान क्या सोचकर बोले, "क्रिश्न मिशन हम स्वतन्त्र कर द, तो समभा हमारे सोए भाग्य जग जाएँ। बोलो क्या कहते हो ?'

'मैं तो वही कहता हूँ जो अलवीरा कहती है।' जागरी मुस्कराया।

'वह क्या कहती है ?

जागरी न दृढ़तापूर्वक कहा, 'वह भी यही कहती है कि हिन्दुस्तान

—१५

स्वतन्त्र हो जाए। बाबा, कभी कभी तो मुझे विश्वास नहीं होता कि यह कोई अंग्रेज की पुत्री बात रही है। परसों नीलकण्ठ मुझे अपने साथ कटक ले गया। अलवीरा ने बहुत अच्छी चाय पिलायी। और चाय की चुस्की भरते हुए उसने पहली बात यही कही कि क्रिप्स मिशन से मिलकर हमारे नेताओं को अवश्य देश की स्वतन्त्रता का फैसला कर लेना चाहिए।

तो नीलकण्ठ क्या बोला ?

'वह तो मूर्ति की बात ले बैठा और इसी बात पर ज़ोर देता रहा कि मूर्ति की रेखाएँ केवल सशक्त होती हैं पर दर्शक को मूर्ति की रेखाएँ एक अर्थ देकर उसकी भावना और कल्पना को उभार देती हैं और इस तरह मूर्तिकार की प्रिय वस्तु अथवा कल्पना दर्शक की चेतना में साँस लेने लगती है।

'यह तो कोई नयी बात नहीं। चतुर्मुख भी यही बात कहा करते थे। अलवीरा ने क्या कहा ?

वह बोली इसका यह मतलब हुआ कि मूर्तिकार की लय पत्थर में उतरकर दर्शक की लय बन जाता है। दर्शक उस पत्थर की कविता का कर सीने से लगाता है। वह देर तक बाबा की मूर्तियों की प्रशंसा करती रही। फिर इस बात को यहीं छोड़कर अलवीरा ने पूछा—आज मैं तुम्हें कैसी लगती हूँ नील ?

नीलकण्ठ ने क्या जवाब दिया ?

वह बोला जैसी पिछली बार लगी थी। अलवीरा भी चुप रहने वाली न थी। बोली मुझे तो लगता है हम एक-दूसरे के लिए पैदा हुए हैं नील! मैंने हँसकर कहा—इसीलिए तो बचपन में मिलकर रेत के घर बनाये थे! इस पर हम तीनों हँस पड़े।

'तो मामला दूर नहीं। मैं समझ गया। दोनों एक दूसरे की कमी पूरी करने पर तुल गए हैं।

बुरा भी क्या है बाबा ? अपूर्व एक कंध कन्या से सम्बन्ध जोड़ सकता है, तो नीलकण्ठ को अलवीरा क्यों नहीं वर सकती ?

'पर ज़िम्म मिशन का क्या होगा ?

'ज़िम्म मिशन को गोली मारो बाबा ! अलबीरा और नीलकण्ठ की बात हो रही है। हां, तो नीलकण्ठ ने अलबीरा के बार-बार पूछने पर यही उत्तर दिया—शायद मैं तुम्हारे बिलकुल योग्य नहीं हूँ।

"तो वह क्या बोली ?'

"वह नीलकण्ठ को बरामदे से उठाकर ड्राइंग रूम में ले गई, जहाँ नीलकण्ठ का बड़ा फोटो रुपहले चौखटे में लगा था। हँसकर बोली—मेरे लिए मुश्किल है कि इस फोटो से ही बातें करती रहूं। मैं पागल हो जाऊँगी नील !"

' फिर नील ने क्या कहा ?

"नील ने उसकी बात हँसी में उड़ा दी। फिर सँभलकर बोला—तुम एक सौ एक बार सोच लो, अलबीरा ! पत्थर गढ़ने वाला मूर्तिकार तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता। बाद में तुम पछताओगी।



वैद्यजी के अनुरोध पर अपूर्व ने स्कूल की छुट्टियों में पत्नीसहित धौली आने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। उन्होंने नागमती को समझा दिया 'देखो, अपूर्व हमारे प्रेम का पात्र है क्योंकि न उसकी माँ है न पिता।'

'तो तुम्हारा मतलब है हम उन्हें अपने घर में ठहराएँ?' कहकर नागमती हँसती चली गई।

हसने की तो कोई बात नहीं। वे हमारे यहाँ ठहरना चाहेंगे तो क्या हम मना कर देंगे?

उस कन्ध कन्या से मैं कैसे बात करूँगी, यही सोचकर हँसी आ गई।

उसे अपनी भाषा के अतिरिक्त तुम्हारी भाषा भी आती होगी।

नागमती हँसी के मारे दुहरी हुई जा रही थी। बोली 'हँसी इसलिए आई कि कहीं मैं बातों-बातों में अपूर्व को शिशु कहकर न बुला बैठूँ।

तुम्हारा मतलब है उस कन्ध-कन्या को वह कहानी नहीं आती होगी कि कोणार्क के महाशिल्पी ने एक कन्ध-कन्या से गन्धर्व विवाह किया था। उन्हें नाराज न करना, नहीं तो वे रूठकर कन्ध देश को लौ-

आएँगे।'

"तुम कहते हो मैं उन्हें छुईमुई समझकर घर में रखूँ और उन्हें हाथ लगाने भी डरती रहूँ?" हँसते-हँसते उनके पेट में बल पड़ गए।

"उन्हें बस ही रखना, जब अन्तराल का विवाह होने पर बड़े प्यार बहू को रखोगी।

एकाएक नागमती की हँसी थम गई, और उसने उदास मुँह होकर कहा, "अन्तराल को मैंने बहुत समझाया राजकुमारी कुन्तल का मूल जाओ। उसी चीज़ पर हाथ डालना चाहिए जो अपना हो सके।

'मैंने तो उसे ऐसी कोई बात नहीं कही। मैं जानता हूँ अगर राजकुमारी ने ही बहू बनना है तो मैं विधाता के लेख को बदल नहीं सकता।'

नागमती फिर हँस पड़ी "तुम सोचते हो, राजकुमारी ही बहू बनकर आएगी।"

"राजा घर की बहू पाने का विचार ऐसा सपना है जिससे मना करने का सवाल ही नहीं उठता।" वैद्यजी ठहाका मारकर हँस पड़े "हम इतने मूर्ख तो नहीं हैं। जब इतने दिनों बाद खोया बेटा मिल गया, वैसे ही राजा-घर की बहू भी मिल सकती है।'

नागमती हँसी के मारे लोट-पोट हो गई और देर तक निरन्तर हँसती रही। वैद्यजी ने उसके मुँह पर हाथ रखकर कहा, बात तो अपूर्व और उसकी कथा पानी हो चल रही थी।

सामने छत पर बैठे कबूतर के जोड़े ने चोंच में चोंच डालकर गुटरगूँ की, तो उसे सुनकर पति-पत्नी हँस पड़े।

वैद्यजी जानते थे नागमती मस्तानी है। 'तुमने जो सपना देखा है, नागमती! वे उसकी आँखों में आँखें डालकर बोले, 'उसे तुम्हारा दिल नित नये-नये रूप में देखता आया है।

'किसी की मानिनी छवि मेरे सामने पल-पल नाचती रहती है। उसे मैं औरों को नहीं दिखा सकती। पर मैं तो उस मानिनी छवि के आलोक

म नहा उनी हू।

गव बार फिर हँसवर दिखायो।

पर नागमती अब चेष्टा करने पर भी न हँस सकी।

वद्यजी न आराम से बठकर जागरी से सुना हुआ प्रसग छड दिया—एक गीत की भावभूमि जो उस भुवनेश्वर के मदिर दसन आए किसी यात्री स प्राप्त हुई—"मेर घर के पिछवाडे है लोगा का छोटा-सा गाछ। उसके नीचे मैं भरती हूँ पानी। मरी उमरिया है बाली-नादानी। जल भरा घडा उठता ही नही मुझसे। मुझे लाज आती है। मैं घबरानी हूँ रह रहकर। नीली घोडी का छल सवार मिलता है बीच डगर। एक हाथ स घडा उठवाता। दूजे स ठोडी छू छू मुझे लजाता।'

नागमती वाली नीली घोडी के सवार की तरह ही अपूव न उस बन्ध कन्या का घडा उठवाया होगा, और फिर उसकी ठोडी छूकर

'आए ता उनस पूछ कि वह नाटक कस हुआ?

हम उनम बन्ध देश का हाल पूछेंगे।

वही देश अच्छा है जहाँ मनुष्य सुख की साँस ले सक।

बासुरी की लम्बी खिची धुन की तरह पति पत्नी की बात लम्बी होती गई।

दोपहर स पहले ही अपूव अपनी पत्नी को लेकर आ पहुँचा और नागमती ने अपने हो बेट और बहू क समान उनका स्वागत किया।

व रलवे स्टेशन स बलगाडी म बठकर आये थे।

अपूव का सकेत पाकर उसकी पत्नी ने नागमती और वद्यजी के चरण छूकर प्रणाम किया और दोनो न उसे आशीर्वाद दिया।

साडी म लिपटी बहू के सिर पर हाथ फेरकर नागमती ने पूछा "बेटा, क्या नाम तुम्हारा?'

श्यामली। बहू न बारीक आवाज म उत्तर दिया और उसके गाल चमक उठे।

यह नाम शुभ हो! वद्यजी न दोबारा आशीर्वाद दिया।

नागमती कल्लीनाम का यह गान गाती:

सजनि कैबा सुनाइला श्याम नाम ?
कानेर भीतर दिया मरम पशिला गो
आकुल करिला मोर प्राण !

[सखी, मुझे यह श्याम का नाम किसने सुनाया ? मेरे कानों के भीतर से होकर मेरे मर्म में पैठ गया और मेरे प्राणों को आकुल कर दिया।]

उसी से होता हुआ यह खबर सारे गाँव में फैल गई कि अपूर्व अपनी कन्ध पत्नी को लेकर आया है।

गाँव भर की स्त्रियाँ और कन्याएँ बहू को देखने आयीं। सबके मुँह पर श्यामला की प्रशंसा के शब्द थे। अपूर्व को देखकर सब खुश हुए।

अपूर्व प्रसन्न था कि त्रिमूर्ति पूरी हो गई। वह मूर्तिशाला में जाकर नीलकण्ठ से मिला। श्यामला ने दादा की चरण-रज उसने माथे पर लगायी, तो दादा बोला, 'आनन्द-मगन बना रह बेटा!'

दादी बहू का रूप भा गया था। वह देर तक बहू के रूप-गुण की प्रशंसा करती रही।

दूर कहीं बाँसुरी बज रही थी, मानो बाँसुरी की लय के अनुसार ही नीलकण्ठ की छेनी चल रही हो।

पीछे से आकर जागरा ने अपूर्व को बाँहों में कस लिया।

'इतने दिन कहाँ पापस्या कस्या अन्तर्वास किया?' जागरा ने पूछा।

'मैं कथकल्प में रहा। तुम्हें भी ले चलूँगा।'

जागरा ने गाँजे का दम लगाकर धुआँ फेंकते हुए कहा, 'मुझे तो कल्पसनी नहीं चाहिए।'

'बाबा की मूर्ति कभी बनेगी त्रिमूर्ति में?' नीलकण्ठ ने पूछा।

अपूर्व ने मुस्कराकर कहा, 'तुमने बाबा को अमर कर दिया।'

दोनों मित्र चन्द्रकुमार की ओर देखते रहे, जैसे कोई अनबूझी याद बुनते

'क्योंकि तुमने अन्तर्मुखी होकर अपने मन को पहचानने म इतना दर लगायी।'

नीलकण्ठ चौकी पर बठा ऊँची मूर्ति गढ रहा था। बडी मुश्किल से वह अलवीरा को माडल बनने के लिए तयार कर पाया था।

चूल्हे मे धुआँ छोडती आग की तरह उसे उन दिनो का याद आन लगी, जब वह लन्दन से चला आया था और अलवीरा पीछे रह गई थी, और फिर वह उस समय तक न आ सकी जब तक लडाई खत्म नही हो गई।

अलवीरा ने मुस्कराकर कहा 'जानते हो, गेटा न प्रेम की क्या व्याख्या की है—'ए मिरर हूज सरफेस रिफ्लेक्ट्स ओनली दि फार्म्स आफ प्यूरिटी एण्ड ब्राइटनेस।''

रूपक मुह बाए देखता रह गया। वह कुछ न समझ सका। न जान क्या सोचकर बोला 'जिस दिन कोई मूर्ति पूर्ण हो जाती है उस दिन जसे मूर्तिशाला नयी महक स भर जाती है।

रहन भी दे रूपक! नानी के आगे ननिहाल का बखान!' नीलकण्ठ हँस पडा।

कोइली की दादी ने भीतर स आकर मूर्ति पर नजरें जमा दी। बोली, 'पत्थर मुँह स बोल उठा नील बेटा!

मैंने वादा ले लिया है नील! यह मूर्ति मुझे ही द डालनी होगी।' अलवीरा मुस्करायी।

'तुम ल लेना बेटा! दादी न थाप लगाई यह पत्थर का टुकडा क्या तुमसे महगा है?

मैं हँसती नही नील! सचमुच मूर्ति लेकर छोडूँगी।

'मैं कब इन्कार करता हूँ! पहले बन तो जाने दो।

तुम्हारे वादे पर मुझे पूरा भरोसा है नील!

दादी के मुह पर एक फीकी सी हँसी आ गई। बोली, अगर नील न मूर्ति न दी तो तुम इसे झूठा कहोगी?

'एक सौ एक बार झूठा करूँगा।'

नीलकण्ठ ने कहा जानता हो तुम्हारी मूर्ति कब पूरी होगी ?— कल, परसों, तरसों, नरसों ?

इसका ज्ञान तो तुम्हें ही हो सकता है। अलबीरा मुस्कराया "तुम मुझे पत्थर में बाँध रहे हो। मैं तो कहती हूँ आज ही बाँध डालो पूरी तरह।

तुम्हारे मन का आलोक तो आना चाहिए पत्थर में।

'लाओ न ! मैं क्या रोकती ?'

इतने में जागरी और अपूर्व आ पहुँचे। अलबीरा को यह पता चलते देर न लगी कि अपूर्व कच-ब्रदर्स के एक स्कूल में पढ़ाता है और उसने एक कच-कन्या से विवाह किया है।

"मुझे भी जरूर दिखाना कच-देश से आयी हुई बहू। अलबीरा ने आँखें नचाकर कहा।

"जरूर दिखाएँगे।" जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, "पहले तुम पत्थर में उतर लो।

'तुम इस गाँजे से मुक्ति नहीं पा सकते जागरी !' अलबीरा ने बात की।

'यह तो अब प्राणों के साथ जाएगा।

नीलकण्ठ बोला 'तुम जागरी की खोपड़ी से गाँजा छुड़ा सको, तो यह मूर्ति तुम्हारी हो गई समझो।

'पहले इसे पूरा तो करो। यह तो अब हो मेरी हो चुकी।'



कॉलिज मे तान छुट्टियाँ थी। तीनों दिन निरन्तर आती रही अलबीरा। मूर्ति पूर्ण होने पर साथ ले जाने को तयार हो गई। उसकी कल्पना मे यह बात नही आई थी कि मूर्ति इतनी सुन्दर बनेगी। "अच्छा तो मैं इतनी सुन्दर हू ?" सहसा ही यह प्रश्न उसके ओठो पर आ गया।

नीलकण्ठ हँस पडा, आधा सौन्दर्य तुम्हारा है आधा मैंने अपनी ओर से जोड दिया, विधाता के समान !

जागरी ने दर्पण ऐसी अपूर्व ने भी कह डाला, "बस-बस तो शादी वाली। अब तो मौसम है ! क्यो अलबीरा दीदी ?

बलगाडी मे मूर्ति रखवाते समय अलबीरा बोली सिर पर साडी का पल्लू अच्छा लगता है।

'मूर्ति म भी और वधू भी। जागरी हँस पडा।

तो फिर शादी कब कराओगी, अलबीरा दीदी ? अपूर्व न गम्भीर मुँह बनाकर कहा।

अलबीरा ने कहा "यही प्रश्न कालिज मे सभी प्रोफसर करते हैं। बस वे मुझे दीदी नही कहते। वह उदास हो गई, जसे विवाह का मुहूर्त उसकी पकड से निकला जा रहा हो।

|

मुन्निआल में रानी ने अलबीरा के सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद दिया।

इतने में श्यामली आ गई। अनूप बोला, 'यह है मेरी पत्नी।'

अलबीरा ने श्यामली को बाँहों में कसते हुए कहा, 'अनूप तुम्हें खूब तो रखता है न?'

'क्या कहूँ?' श्यामली मुस्करायी, 'तुम अपनी कहो, दीदी! तुम्हारा पुनर्विवाह कब और किसके साथ हो रहा है? हमें भी बुलाओगी न?'

'क्यों नहीं, क्यों नहीं?'

'अब तक तुमने शादी क्यों नहीं की, दीदी?' श्यामली चुप न रह सकी। 'किसका नम्बर है तुम्हारे दिमाग में? कुछ हमें भी बताओ।'

रानी ने अलबीरा का मुँह देखते हुए कहा, 'अरे श्यामली, तुम तो पीछे ही पड़ गई आते ही। यही समझ लो, अभी तक अलबीरा ने कुछ सोचा ही नहीं।'

'यही तो मैं कहती हूँ, क्यों नहीं सोचा? यौवन बीता जा रहा है।' श्यामली हँस पड़ी, 'घर की रानी बनने से चूक जाना, इससे बड़ी मूर्खता क्या होगी?'

'शाबाश, श्यामली!' अनूप ने अपनी पत्नी की पीठ ठोकी।

'कुछ कमाने-खाने वाली लड़की को घर की रानी बनने की क्या ज़रूरत है?' नीलकण्ठ ने चोट मारी।

बाबरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, 'हम तो अलबीरा को अपने साथ पकड़ लाई हैं।'

'तो अब चलना चाहिए।' अलबीरा मुस्करायी।

'अभी बहुत समय है रानी माँ।' नीलकण्ठ ने चिलम लेते हुए कहा, 'गाड़ी पर पहुँचा दूँगा। गाड़ी लेट आएगी।'

'तुम विवाह का बन्धन तो नहीं मानतीं अम्मा?' श्यामली ने पूछा, 'हम दोनों [illegible] हैं। हममें न कोई भी विवाह का बन्धन नहीं मानता।'

बाबरी ने कह दी, "मेरी माँ ने पुष्करराज की रासलीला-मण्डली

म काम शुरू किया तो मुझे बुरा जरूर लगा था। अब तो बुरा नहीं लगता। काम करने और पसा कमाने म क्या बुराई है ? चार पसे मैं भी कमा लेता हू भुवनेश्वर के यात्रियो को मन्दिर दिखा दिखाकर।'

दादी ने कहा 'कभी फिर वहस कर लेना जमकर। गाडी न निकल जाए।

अभी बहुत समय है। नीलकण्ठ न टकार लगाई।

थोडी देर की चुप्पी के बाद अलबीरा ने कहा तुमने मुझे पत्थर म उतार दिया नील ! अब चाहे मैं मर भी जाऊँ तो चिन्ता नहीं।

मरें तुम्हारे दुश्मन ! जागरी चुप न रह सका।

अलबीरा के होठो पर मुस्कान नाचने लगी।

श्यामली हँसी को दबा रही थी। बाहर से कोचवान ने चिल्लाकर कहा अभी चलने म कितनी देर है ?

अभी चलते हैं। नीलकण्ठ ने तुरन्त उत्तर दिया।

जान की घन्टी साँस गिन रहा था। अलबीरा चाहता था श्यामली कुछ कह चाहे फबती ही कसे।

दादी ने कहा 'याद है, नील ! तुम्हारे बाबा कहा करते थे—ब्रह्मा पत्थर की मूर्ति म भी प्राण डाल सकते हैं। मैं उनकी इस बात का विरोध करती तो व कह उठते थे जब मैं नहीं रहूगा तो मेरी मूर्तियाँ तुम स बात करेंगी। अब मैं ऐसा ही देख रही हू। व नहीं रह। उनकी मूर्तियाँ मुझस बातें करती है। मैं तो सोचती हू व पत्थर म चार नहीं चौदह अध्याय लिख गए।

जागरी बोला, उसका क्या बना ? अन्नदा बाबू कलकत्ते म बाबा की मूर्तियो की प्रदर्शनी करना चाहते हैं न ?'

होने को तो वह प्रदर्शनी पिछले साल ही हो जाती। दादी ने गम्भीर मुह बनाकर कहा पर मुझे डर है कि नारायण प्रदर्शनी के बाद बहुत सी मूर्तियाँ हथियाकर बेच न डाले।

'तो क्या बुरा है दादी ? पसा आएगा। पसा क्या बुरा है ? यहाँ

पड़ी पड़ी कौनसा दूध दे रही है मूर्तियाँ ? जागरी ने बलपूर्वक कहा।

'पर मैं जाने जी ये मूर्तियाँ नहीं बिकने दूंगी।' दादी ने गम्भीर मुह बनाकर कहा, "कलकत्ते में प्रदर्शनी तभी हो सकती है जब अन्नदा बाबू गिनकर मूर्तियाँ ले जाने और फिर यहाँ लौटा जाने का जिम्मा लें।"

'बाबा की मूर्तियों की प्रदर्शनी तो हर हालत में होनी चाहिए।' अलवीरा ने सुझाव दिया, 'मैं अन्नदा बाबू को लिखूंगी क्यों न बाबा-पान की मूर्तियों की प्रदर्शनी एक साथ की जाए ?

"मेरी मूर्तियों को अभी छोड़ो। अभी मेरी सम्भावना ने प्राप्ति का रूप नहीं लिया।' नीलकण्ठ ने मूर्तियों में एक ओर रखी अपनी मूर्तियों को देखा जैसे आँखों ही आँखों में वह उनका मूल्य आँक रहा हो।

दादी बोली 'अब अलवीरा को छोड़ आओ, वरना नहीं तो गाड़ी निकल जाएगी।'

जागरी ने दादी की बात पाकर नीलकण्ठ को उठाकर खड़ा कर दिया और पास पड़ी मूर्तियों की ओर देखकर बोला 'अलवीरा, पत्थर का अपने आपमें क्या मोल है ? उसे कीमती बनाते हैं मूर्तिकार के हाथ, जो उसे मूर्ति में ढालते हैं। अच्छा तो अब चलना चाहिए।"

अभी बहुत समय है। नीलकण्ठ ने घड़ी देखकर कहा।

बाहर से बैलगाड़ी वाले ने आवाज दी 'नहीं जाना तो गाड़ी छोड़ दो बाबू !

अलवीरा हिरनी की तरह कुलाँचें भरती हुई गाड़ी में जाकर बैठ गई। उसके पीछे पीछे नीलकण्ठ और जागरी आ बैठे।

गाड़ी चली तो बातें होने लगीं।

"रथ-यात्रा देखने चलेंगी न ?" जागरी ने पूछा।

'क्यों नहीं ?' अलवीरा ने सिर हिलाकर कहा, 'कलकत्ते से अन्नदा बाबू भी आएँगे। वहीं प्रदर्शनी की बात भी कर लेंगे उनसे।"

जब वे स्टेशन पहुँचे, गाड़ी छूटने ही वाली थी। नीलकण्ठ टिकट ले आया। जागरी ने मूर्ति उठाकर डिब्बे में जा रखी। अलवीरा भी वहाँ

ऊँची उठती गई। पास खडा कोई यात्री कह रहा था, "यह एक आश्चर्य-जनक बात है। भगवान् की लीला! एक निश्चित अवधि के पश्चात् भगवान् की मूर्ति बदलनी होती है। तभी निश्चित समय पर उडीसा के समुद्र में बहती हुई लकड़ी पण्डो के हाथ लग जाता है और उसी से तीनो मूर्तियाँ बनाई जाती हैं।

सभी जानते थे कि भगवान् के रथ प्रति वर्ष बनाए जाते हैं। इस जोर की वर्षा में असाधारण आकार वाले रथ भाग रहे थे। उन्हें खींचने के लिए हजारों वाहक तैयार खड़े थे। वाहकों को मन्दिर की ओर से काफी भूमि मिलती है, यह बात किसी से छिपी न थी। रथ खींचने में अन्य श्रद्धालु भी हाथ बटाने को तैयार खड़े थे।

ठीक समय पर जगन्नाथजी का पतालीस फुट ऊँचा और पतीस फुट लम्बा रथ चल पड़ा। उसमें सात फुट व्यास के सोलह पहिये लगे थे। साथ में बलरामजी का रथ था चवालीस फुट ऊँचा चौदह पहियों वाला। सुभद्राजी का रथ तेंतालीस फुट ऊँचा था बारह पहियों वाला।

राजकुमारी और अन्तराल भी भीड के साथ हो लिए। पुरी से तीन मील की दूरी पर जनकपुर पहुँचकर भगवान् को वहाँ तीन दिन तक विश्राम करना होता है। वहीं लक्ष्मी उनसे मिलने आती। चलते-चलते राजकुमारी ने कहा, "पहले रथ-यात्रा के समय लोग रथ के आगे लेटकर प्राणोत्सर्ग कर देते थे, किन्तु अब '

'वह प्रथा कभी की बन्द की जा चुकी है।' अन्तराल ने आँखों पर बरसाती टोपी सरकाकर कहा, "हे भगवान् क्या थोड़ी देर वर्षा बन्द नहीं कर सकते? भक्तों की परीक्षा अभी बाकी है क्या?"

'तीन दिन बाद भगवान् जनकपुर से पुरी के मन्दिर में लौट आते हैं। राजकुमारी ने बरसाती को कसते हुए कहा "अन्तराल, हम जनक-पुर नहीं जाएँगे। घर चलकर आराम करेंगे। वर्षा न होती तो जनकपुर हो आते।

रथ-यात्रा जनकपुर के रास्ते पर चली जा रही थी। अन्तराल और

राजकुमारी ने घर की राह ली।

पानी अब तक थमने का नाम नहीं ले रहा था। बड़ी मुश्किल से एक रिक्शा मिली। दोनों उसमें बैठकर बोले "गवर्नमेंट हाउस से आगे, राजा साहब का बँगला।

समुद्र-तट पर राजा साहब का बँगला प्रसिद्ध था। रिक्शा वाला रिक्शा खींचता हुआ उधर को दौड़ लगा रहा था। उसके अधनंगे शरीर पर पानी की बौछार पड़ रही थी। राजकुमारी और अन्तराल रिक्शा की छत के नीचे दुबके बैठे थे।

बंगले पर पहुँचकर उन्होंने रिक्शा वाले को पैसे देकर चलता किया।

ऊपर पहुँचे तो राजा साहब बोले, 'मैं परेशान हो रहा था। चलो तुम आ गए।

"पापा, आपने रथ-यात्रा नहीं देखी ?' राजकुमारी ने बरसाती उतारते हुए कहा, "आप वर्षा से डर गए।'

'वर्षा से डरने की बात न थी,' राजा साहब मुस्कराकर बोले, स्वयं महाप्रभु नहीं चाहते थे, नहीं तो मुझे ज्वर क्यों हो आता ?

वर्षा अभी तक रुकी न थी। सामने समुद्र का दृश्य वर्षा में और भी सुन्दर लग रहा था।

अन्तराल चुपचाप राजा साहब के सम्मुख खड़ा जैसे किसी हुक्म की प्रतीक्षा कर रहा हो। 'बैठ जाओ, अन्तराल !" राजा साहब बोले, 'तुम भी तो थक गए होगे। मेरी तबीयत अब ठीक है।"

खाने का समय कभी का गुजर चुका था। बैरे ने बिना पूछे ही खाना लगा दिया। वे खाने के लिए जाने लगे, तो राजा साहब बोले "तुम लोगों की शक्ल देखकर ही मैं समझ गया कि भूख के मारे बुरा हाल है।'

'पापा, मैं तो तीन दिन उपवास कर सकती हूँ।' राजकुमारी

"मैं तो एक दिन भी भूखा नहीं रह सकता।" अन्तराल भी चुप न रह सका।

खाना खाते-खाते अन्तराल ने कहा 'न अलवीरा आईं, न नीलकण्ठ। आए होते तो हम न मिलते?'

'रथ-यात्रा में नहीं तो और कब आएँगे?' राजकुमारी ने मुंह बनाकर कहा, "छोड़ो। वे मिलना नहीं चाहते तो हम क्या कर सकते हैं?"



आरामकुरसी पर बैठे राजा साहब अखबार पढ़ रहे थे। बीच-बीच में अखबार से नजर हटाकर सामने समुद्र का दृश्य देखने लगते। उनसे कुछ भी छिपा सकना सहज नहीं था। उनकी मुस्कान साफ़ कह देती थी कि उनकी दृष्टि में सब-कुछ पारदर्शी है। कैसी भी परिस्थिति हो झुकना तो उन्होंने सीखा ही न था। उनके सोचने-समझने की शक्ति एक बार जरूर कुण्ठित हो गई थी, जब उनकी स्टेट पर उनका आधिपत्य जाते-जाते बचा। अंग्रेज एजेण्ट से उनकी ठन गई थी और उसने यह फैसला कर लिया था कि राजा साहब को पागल घोषित करके उनके हाथ से सब शक्ति छीन ले। उस संकट के समय अमरनाथ ने ही उस गुत्थी को सुलझाया। तभी से वह उनका विश्वासपात्र बन गया था।

कोई पुत्र न होने से राजा साहब राजकुमारी कुन्तल को पुत्र से भी अधिक मानते थे। उसे साथ लेकर वे विदेश-यात्रा कर आए थे। महारानी भी उन यात्राओं में साथ रहीं। इधर महारानी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। डॉक्टर की हिदायत के अनुसार वे पुरी में ही रहती थीं। माँ की सेवा में कुन्तल भी यहीं रहती।

अखबार पढ़ते-पढ़ते राजा साहब ने सोचा, 'सबर ने शायद है

मुस्कराये। उन्होंने मन-ही मन कहा, अखबार म एक ही खबर एसी है जो मन्दिर के घण्टे की तरह देर तक गूजती रहे—रथ-यात्रा की खबर। एक लाख से ऊपर लोग रथ-यात्रा म सम्मिलित हुए। यह तो कुल की भीड का मोटा हिसाब हुआ।

दूर से आती हुई समुद्री हवा नारियल के पडो स खेल रही थी। बडे बडे पत्ते मादर की तरह ताल देते जा रहे थे।

बगले के एक ओर नारियल-कुज भला लग रहा था जसे नारियल के पेडो में कही अन्तर्विरोध न हो। लम्बे कटावदार पत्त जसे कोई कथा कह रहे हो।

राजा साहब को उस घटना की याद आने लगी जब अन्तराल ने उन्हें उस सकट से बचाया था।

कुन्तल ने आकर कहा 'पापा मम्मी सो रही हैं।"

"तुमने उन्हें जगाया नही यह अच्छा किया। राजा साहब मुस्कराये।

कुन्तल पास वाली कुरसी पर बठ गई।

हवा नारियल के पत्तो को झकझोड रही थी। राजा साहब चुप बठे रहे। उन्होंने देखा कुन्तल बहुत उदास है, जस अभी अभी रोकर आई हो। वे सोचने लगे—अन्तराल इतना बुरा भी नही है। इतना परिचय है दोनो मे। एक-दूसरे को भली प्रकार जान गए हैं। कुन्तल की खुशी के लिए मैं क्या नहीं कर सकता ? राज्य-मर्यादा के लिए क्या मैं कुन्तल की खुशी मे बाधा डालू ?

'कुन्तल !' राजा साहब मुस्कराये, जसे मुस्कराना उनकी आदत बन गई हो।

'क्या है पापा ?

'अपना तो केवल स्वप्न भर ही है। अभी अभी जसे एक सपना मुझे छू गया।'

'तुम्हारे बचपन का सपना। अब ता तुम बहुत दूर निकल आई हो बचपन स। मैं क्या समझाऊँ? तुम खुद समझदार हो। तुम मरी बात मानो ही यह क्या जरूरी है?

क्या, जरूरी क्या नहीं, पापा?

"जो तुम्हें समझाना है, पहले तुम्हारी मम्मी का ही समझाना होगा। तुम क्या समझनी नहीं हो?

'पहलिया म क्या रखा है पापा? कुन्तल हँस पडी मैं अपना ही चित्र देखकर खुश होने वाली लडकी नहीं हूँ। जिन बचपन म खिलौने अच्छे लगते हैं वह तो पीछे छूट गया। पर अब क्या खिलौना बिलकुल नहीं चाहिए, पापा?

राजा साहब मुह फरकर बठे रहे।

'पापा कल शाम इसी समय अन्तराल न रवीन्द्रनाथ की कहानी 'हगरी स्टोन्स' पढकर सुनाई। कुन्तल कहती चली गई वह कहानी मैंने तीसरी बार सुनी। आपने भी पढी होगी पापा। उस महल मे नूपुर अब भी बजते होंगे—सोती नर्तकियों के नूपुर। कौन जाने किस किस मुद्रा म उन नर्तकियो की छायाएँ सिमकियाँ ले रही होंगी। मैं तो उस कल्पना म खो गई।

राजा साहब बोले व लाग अभी तक नहीं आये।'

"आते ही होंगे। कुन्तल मुस्करायी आप वह कहानी जरूर पढें, पापा! सारी कथा मानो सपन म साँस लेता है। खर छोडो वह बात। नीलकण्ठ की बहन कोइना और अपूर्व का प्रेम था। पर बाबा के अनुरोध स कोइली कटक के एक वकील स ब्याही गइ। अपूर्व को इस दुख ने पागल बना दिया। वह धौनी छोडकर कथन्दग चला गया जहाँ उसे श्यामली मिल गई।

राजा साहब बोल बहुत सी कथाएँ सपन और यथार्थ के बीच लटकती हैं, कुन्तल। य लोग अब तक नहीं आये। श्यामली स विवाह करने पर भी अपूर्व का कोइली की याद भुलाए नहीं भूलती होगा।

चाय आ रही है। कुन्तल ने हँसकर कहा, 'चाय की जगह तो निकालनी ही पड़ेगी। क्यों अन्नदा बाबू ?"

'चाय भी लगे और चन्दा भी।' अन्नदा बाबू ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा, 'आज हम बेमतलब नहीं आये राजा साहब !

"कैसा चन्दा ?" राजा साहब चुप न रह सके 'अच्छे काम के लिए चन्दा मिलेगा। कितना चाहिए ?

"पाँच हजार।'

"दस हजार नहीं ?' राजा साहब हँस पड़े, पाँच हजार वाला कौनसा चन्दा है ?"

'धौली के मूर्तिकार स्वर्गीय चतुर्मुख की मूर्तियों की प्रदर्शनी होने जा रही है कलकत्ते में। शलवीरा ने मुस्कराकर कहा, "देखिए, राजा साहब ! यह काम तो मूर्तिकार के जीवन काल में ही हो जाना चाहिए था। मूर्तिकार की मृत्यु के बाद ही सही। यह बड़े राष्ट्रीय महत्त्व का काम है।'

'हम कब कहते हैं कि न हो ! पर पाँच हजार चन्दा ? राजा साहब हँस पड़े।

पाँच हजार से कम तो क्या खर्च होगा ?' अन्नदा बाबू मुस्कराए।

"तो सारी रकम एक ही आदमी से चाहिए ?"

चतुर्मुख का गुण-गान होने लगा। लगता था, गुण-गान के लिए मृत्यु परम वरदान है।

अन्नदा बाबू बोले मूर्तियाँ धौली से कलकत्ते ले जानी होंगी। वहाँ ले जाने और वापस धौली पहुँचाने की बात है। जिस हाल में प्रदर्शनी होगी, वहाँ का किराया देना होगा। कैटालाग छपेगा, उसका खर्च अलग। पब्लिसिटी पर भी खर्च करना होगा।

राजा साहब हँसकर बोले 'पाँच हजार से क्या होगा ?'

'तो फिर ?'

"बजट बढ़ाकर दस हजार कर दें। प्रदर्शनी के साथ एक विचार

गोष्ठी भी रखिए। उसमें भाग लेने को योग्य विद्वान बुलाइए। उन्हें फर्स्ट क्लास का आने जाने का किराया दीजिए और कुछ पत्रम् पुष्पम् भी।'

'पर दस हजार कहाँ से मिलेगा?' अलबीरा मुस्करायी।

'जहाँ से पांच हजार मिलेगा।'' राजा साहब जमे पन्ने में उन्हें खुश करने के मूड में हों।

अलबीरा ने पूछा 'महारानीजी की तबीयत कैसी है?'

'मम्मी को डाक्टर ने कम्पलीट रेस्ट की हिदायत दी है।' कुन्तल ने चाय बनाते हुए कहा।

राजा साहब बोले पांच हजार महारानी की ओर से, पांच हजार मेरी ओर से। अब तो आप लोग खुश हैं?

अनदा बाबू बोले, 'प्रदर्शनी पर तो पाँच हजार से अधिक नहीं लग सकता। उसी में विचार-गोष्ठी कर लेंगे।

राजा साहब ने चाय की चुस्की भरते हुए कहा तो महारानी वाले पांच हजार चतुर्भुज की विधवा पत्नी को दीजिए। प्रदर्शनी से उस बेचारी को क्या मिलेगा?

'हम आभारी हैं। आपकी कृपा-दृष्टि बनी रहे। अलबीरा और अनन्त बाबू एक स्वर होकर बोले।

''मैं सोच रहा था चतुर्भुज की कीर्ति को स्थायी रूप दिया जाए।

'जैसी आज्ञा।' अनन्त बाबू चुप न रह सके।

'कटक में एक म्यूज़ियम नहीं बना सकते?

''क्या नहीं?'

प्रदर्शनी के बाद म्यूज़ियम का काम हाथ में लें।'

जैसी आज्ञा। प्रदर्शनी के अवसर पर आप कटक में पधारेंगे ही?'

''अवश्य।

फिर राजा साहब विलायत-यात्रा की बात ले बैठे जब कि अलबीरा से उनकी प्रथम भेंट हुई थी। यह जानकर वे खुश हुए कि विलायत से लौट-कर अलबीरा कटक के रावेन्शा कॉलेज में पढ़ाती है। वे बोले, 'यूरोप

और अमेरिका की यात्रा म सब दूरी शेप हो गई थी। तुम्हारा गम्भीर मुख कई बार याद मे तरने लगता है, अलवीरा !'

"आपका स्नेह भुलाने की चीज नही, राजा साहब !" अलवीरा मुस्करायी, 'कुन्तल न आपका स्वभाव पाया है और माँ का रूप।

राजा साहब बोले महारानी अच्छी हो जाएँ उनके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना कीजिए।"

"महारानी अच्छी हो जाएँगी। अलवीरा ने बलपूर्वक कहा।

राजा साहब के अन्तर मे मानो एक करुण निस्तब्धता छा गई और इसकी झलक उनके मुख पर भी आ गई। वे सागर की ओर देखते हुए बोले, "हमे भी जाना होगा एक दिन। बुलावा आकर ही रहेगा। यह यात्रा एक दिन शेप होकर रहेगी। पुरातन जाएगा नही, तो नूतन का अभिषेक कसे होगा? जीवन सुन्दर है पर मृत्यु रागिनी भी बज उठती है। यह कथा एक दिन शेष होकर रहेगी।'

समुद्र की ओर से नमकीन हवा आ रही थी। राजा साहब न हजार हजार के पाँच नोट अन्नदा बाबू को दिये और पाँच नोट अलवीरा को। फिर वे मुस्कराकर बोले, "अलवीरा को मम्मी से मिला लाओ कुन्तल !"

अलवीरा ने अपने वाले पाँच नोट भी अन्नदा बाबू को थमा दिए और वह उठकर कुन्तल के साथ भीतर चली गई।

राजा साहब गम्भीर मुद्रा म समुद्र की ओर देखते रहे।

अन्नदा बाबू हजार हजार के दस नोट हाथ मे लिये बठे थे। राजा साहब की उदारता ने उन्हे मोह लिया था। चतुर्मुख के निमित्त दस हजार निकालकर दे देंगे राजा साहब, यह तो वे सपने म भी नही सोच पाए थे। 'ये पाँच हजार पाकर नीलकण्ठ की दादी फूली नही समाएगी, राजा साहब ! उन्होंने मधुर स्वर म कहा।

"धौली में वह त्रिमूर्ति तो पूर्ण हो गई ?'

"हाँ राजा साहब ! नीलकण्ठ ने महादेव की मूर्ति बनाकर त्रिमूर्ति

पूरा कर डाली बहुत दिन पहले। चतुर्मुख को शाख में विष-पान करते दिखाया गया है, उस मूर्ति में।'

'तो क्या यही प्रेरणा देने के लिए चतुर्मुख ने आत्म-हत्या की थी? काश, वे आज भी जीवित होते! उनके हाथ में जादू था। पत्थर में प्राण प्रतिष्ठा करना उनके बाएं हाथ का खेल था।'

अरुण बाबू गम्भीर होकर बोले, 'उनकी साधना यह थी। पत्थर का संस्कार पहचानकर मूर्ति गढ़ने वाले मूर्तिकार अब कहां रह गए?'

'बुलके साहब मेरे परम मित्रों में हैं।' राजा साहब ने बात-से-बात निकाली। "पहले-पहल मैंने उन्हीं के मुख से चतुर्मुख की प्रशंसा सुनी, उन्हीं के पास चतुर्मुख की कुछ मूर्तियां देखीं। वे तो कहते हैं, चतुर्मुख के साथ उड़ीसा के मूर्तिकारों की एक महान् पीढ़ी शेष हो गई। मैं सुनता हूं कि आप लोग उनकी कीर्ति को स्थायी बनाने जा रहे हैं।

'बुलके साहब की प्रेरणा हमारे साथ है। राजा साहब एक बार कलकत्ता में चतुर्मुख की मूर्तियों की प्रदर्शनी देख लें। फिर तो देश के कोने-कोने में चतुर्मुख की कीर्ति गूंज उठेगी।

"ख्याति तो मूर्तिकार को जीवन-काल में ही मिलनी चाहिए थी।

'जो नहीं हो सका उसका तो पछतावा क्या? यह तो आप भी मानते हैं न, कि कलाकार अपनी कला में जीवित रहता है।'

राजा साहब बोले, 'संयोग की बात थी। विदेश-यात्रा में अलकौरा और कुन्तल सहेलियां बन गईं। एक दिन एकाएक पता चला, अलकौरा बुलके साहब की लड़की है। मेरे मन प्राण नाच उठे। फिर उनकी जबानी पता चला, चतुर्मुख का साला नीलकण्ठ पांच साल का मूर्ति-कला का काम पूरा करके महायुद्ध शुरू होने से कुछ ही दिन पहले हिन्दुस्तान लौट गया। अलकौरा बात-बात में शेक्सपीयर का नाम लेती थी और हिन्दुस्तान में उसकी दिलचस्पी उसके शेक्सपीयर-सम्बन्धी ज्ञान से किसी तरह कम नहीं थी। यात्रा में ऐसे साथी का मिल जाना बड़ी बात होती है।



अन्नदा बाबू को परम शांति का अनुभव हो रहा था। काम जितना महत्त्वपूर्ण था, उतना ही जिम्मेवारी से किया गया। मूर्तिकार चतुर्मुख का गौरव कला ममज्ञों और दर्शकों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया। समाचारपत्रों ने विशेष परिशिष्ट प्रकाशित किए जिनमें मूर्तिकार की महान् देन को सराहा गया।

महारानी की बीमारी के कारण राजा साहब नहीं आ सके थे। मलबीरा के जोर देने पर राजकुमारी कुन्तल ने चतुर्मुख मूर्ति प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। समाचारपत्रों ने राजकुमारी के उद्घाटन भाषण के ये उद्गार प्रमुख स्थान पर प्रकाशित किए—

मुझे खुशी है कि कलकत्ते के कला प्रमियों के सम्मुख आज चतुर्मुख मूर्ति प्रदर्शनी आरम्भ हो रही है जिसकी प्रतीक्षा बहुत दिनों से की जा रही थी। चतुर्मुख अस्सी वर्ष की आयु भोग चुके थे, जब कि विष पान द्वारा वे स्वयं शून्य यात्रा पर चल पड़े। तीन सौ से ऊपर मूर्तियां, जो यहाँ दिखायी जाने वाली हैं मूर्तिकार की लम्बी साधना का प्रतिनिधित्व करती हैं। आप इन मूर्तियों को देखें इनसे बातें करें इनसे उन हाथों की कहानी सुनें जिन्होंने छेनी-हथौड़ी की मदद से यह कला सृष्टि रच दिखाई। रेखाओं

की कोमलता और मातामक्ता तथा गालाइयों की सृजनात्मक प्रेरणा यथार्थ और सपन के बीच का मार्ग अपनाती हैं। बहुत सी मूर्तियों में चतुर्मुख ने प्राचीन गाथाओं के चरित्र बड़ी बारीकी से हमारे सम्मुख प्रस्तुत किए हैं जैसे वे हमारे साथ सांस ले रहे हों। मूर्तिकार की कल्पना यहीं भी सत्य की अँगुली नहीं छोड़ती।"

कुन्तल के साथ अन्तराल आया था, अलबीरा के साथ नीलकण्ठ। कुन्तल का आग्रह निराधार करते हुए अपूर्व भी श्यामलीसहित कप-देश से कलकत्ता पहुँच गया था। अनदा बाबू ने उन्हें अपनी कोठी पर ठहराया।

प्रदर्शनी के तीसरे दिन कटक से बादली और हरिपद भी आ गए। प्रदर्शनी में दादा के अदम्य कुन्तल ने उन्हें बहुत प्रभावित किया।

कोठी को छोड़कर हरिपद ने दूसरे दिन कटक लौटते हुए कहा 'वकालत का धन्धा ही ऐसा है नहीं तो मैं कुछ दिन और ठहर जाता।"

प्रदर्शनी सात दिन तक खूब जमी। दादा के आग्रह से तीन दिन और बढ़ा दी गई।

बादली और श्यामली का जब कप-देश की कथा से ही अवकाश न मिलता, और अनदा बाबू उन्हें विमान-न-किसी कल्पना-लोक में सींचकर पत्थर की मूर्ति के समीप ले आते।

कुन्तल नीलकण्ठ को यात्रा-वृत्तान्त सुनाने बैठ जाती। उधर अलबीरा अन्तराल के मन की खोज लगाती कि वह कुन्तल को कितना चाहता है।

कुन्तल के होंठों से मीठी मुस्कान उठती रहती। वह यात्रा की कथा कहती तो उसकी मुख भंगिमा अन्तराल को बहुत प्रिय लगती। वह एकाग्र दृष्टि से उसकी ओर निहारता। जाने किस लोक की रूप-कथा किस गीत की झंकार बनकर बज उठती। और फिर वह कहती 'विवाह करूँगा तो तुमसे, नहीं तो कुमारी ही रहूँगा।"

अपनी बात छोड़कर कुन्तल इस बात पर नाच उठता कि दिल्ली में अन्तरिम गवर्नमेंट की स्थापना हो गई। उसके हाथ में समाचारपत्र था,

जिसमे इण्टरिम गवर्नमेण्ट के उप प्रधान जवाहरलाल नेहरू का रेडियो भाषण प्रकाशित हुआ था

बहनो और भाइयो

'जयहिन्द। छः दिन हुए मैं और मेरे साथी हिन्दुस्तान की हुकूमत की कुर्सियो पर बैठे। इस पुराने मुल्क मे एक नई हुकूमत शुरू हुई जिसका नाम हमने इण्टरिम गवर्नमेण्ट रखा और उसको हमने एक ऐसी मंजिल समझा जहाँ से पूरी आजादी हमको करीब दिखायी दे रही है। हमारे पास दुनिया के हर हिस्से से और हिन्दुस्तान के हर कोने से हजारो पैगाम और सन्देश मुबारकबाद के आये। लेकिन हमने लोगो के जोश को रोकने की कोशिश की और उनसे कहा कि कोई धूमधाम करने की जरूरत नही है। हम चाहते थे कि जनता समझे कि हम अभी सफर ही मे हैं और मंजिल तक नही पहुचे। रास्ते मे कई मुश्किले और रुकावटें हैं और मकसद का हासिल करना इतना करीब नही है जितना लोग समझते हैं। ऐसे मौके पर जरा-सी कमजोरी या गफलत भी हमारे काम को बहुत नुकसान पहुँचा सकती है।

'कलकत्ते के भयानक हालात के बाद जहाँ पागलो और वहशियो की तरह भाई से भाई लडे और एक दूसरे को मारे हमारे दिल भी रज से भरे थे। जिस आजादी का ख्वाब हमने देखा था और जिसके लिए कई बरस से हमने मुसीबते झेली थी, वह सारे हिन्दुस्तान के रहने वालो के लिए थी किसी एक गिरोह या फिरके या एक मजहब के लोगो के लिए नही थी। हम चाहते थे कि हिन्दुस्तान को ऐसा स्वराज्य मिले जिसमे सभी बराबर के हिस्सेदार हो और सबको मौका मिले कि वे तरक्की कर सकें और जिन्दगी का पूरा फायदा उठाए। तो फिर यह डर यह एक-दूसरे पर शक और यह आपस का झगडा आखिर क्यो ?

कुन्तल पूर्ण परिचित थी कि देश मे क्या हो रहा है। नई इण्टरिम गवर्नमेण्ट की खबर से उसके शरीर मे सिहरन दौड गई। अन्तराल का ध्यान खीचते हुए बोली अभी तो हम बहुत से तूफानो का सामना

करना है, अन्तराल !

अन्तराल ने कहा, 'हुकूमत की नाव इतनी पुरानी और टूटी फूटी है कि यह आज के बदलते युग के अनुरूप नहीं रही।

'यह बात तो हमारे आज के कर्णधार भी मानते हैं कि नाव को बदलना ही होगा।

"अब तक हम जकड़े हुए थे और हमारी आँखों पर पट्टी बँधी थी।

'अब तो वह पट्टी उतर गई। हमें समझ लेना चाहिए कि स्वतन्त्रता का सुन्दर प्रासाद आपस में लड़ झगड़कर नहीं बनाया जा सकता। सुना नहीं ? रेडियो-भाषण में यह भी तो कहा गया था कि हमने साथ मिलकर के काम करने का दरवाज़ा खुला रख छोड़ा है और जो लोग हमारे साथ सहमत नहीं, उनको भी दावत देते हैं कि वे बराबर के साथी होकर शामिल हो जाएँ।"

"ऐसा तो होना ही चाहिए कुन्तल !'

हमारे हाथ में है कि हमारा भविष्य कैसा हो।

'बड़ी बात यह है कि आगे बढ़ने का रास्ता खुल गया।

"रेडियो भाषण के ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं—जीतेंगे तो सब जीतेंगे और हारेंगे तो सब हारेंगे। रास्ता तो एक है अन्तराल ! एक ही रास्ता है जिसमें सबको सुख का जीवन मिले।

प्रदर्शनी में बुलक साहब भी आये और मिसिज़ बुलक भी जो वापस इंगलैण्ड जा रहे थे क्योंकि इसी सप्ताह बुलक साहब पुरातत्त्व विभाग से रिटायर हो गए थे।

नारायण को बुलाकर बुलक साहब बोले, "हमारे रहते रहते अनवीरा और नीलकण्ठ का विवाह हो जाए तो ठीक है।

कुन्तल हँसकर बोली, 'मुझे इस विवाह पर उतनी ही खुशी होगी, जितनी इण्टरिम गवर्नमेण्ट की स्थापना पर हुई।'

'यह तो कविता हो गई।' मिसिज़ बुलक ने ज़ोर से कुन्तल का हाथ दबाते हुए कहा।

कोइली बोली, 'विवाह का शुभ मुहूर्त निकलवाइए। कविता मैं लिखूँगी।

नीलकण्ठ और अलबीरा चुपचाप विवाह की चर्चा सुनते रहे।

श्यामली हँसकर बोली, मैं विवाह का कोई गीत गाऊँगी। भले ही उसकी भाषा आप न समझें, उसकी धुन आपको मस्त कर लेगी।'

प्रदर्शनी के एक कोने में खड़े खड़े ये बातें हो रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि बाबा कहीं-न-कहीं इन मूर्तियों में मौजूद हैं और उन्हें भी नीलकण्ठ के विवाह का समाचार मिल गया। जैसे बाबा हर कला-कृति के माध्यम से आशीर्वाद दे रहे हों।



अनवीरा और नीलकण्ठ विवाह-सूत्र में बँध गए। मजिस्ट्रेट के सम्मुख वर-वधू के माता-पिता उपस्थित थे जब वर-वधू ने सिविल मैरेज के रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये।

बुलके साहब ने वर-वधूसहित अनेक मित्रों को डिनर दिया।

अनूप और श्यामली का आग्रह था कि गाँव चलकर सप्तपदी वाला विवाह भी अवश्य होना चाहिए। पर नीलकण्ठ यही कहता रहा, "इसमें तो कोई तुक नहीं।"

बुलके साहब अपनी पत्नीसहित इंग्लैण्ड के लिए जाने लगे तो अनवीरा बोली, "मम्मी मुझे चिट्ठी जरूर लिखते रहना।"

श्रीमती बुलके गम्भीर मुँह बनाकर बोलीं 'मैं क्या जानती थी कि अनवीरा का मन यहीं रम जाएगा?'

इस विवाह के पीछे कुन्तल का आग्रह काम कर रहा था। यूरोप और अमरीका की यात्रा में कुन्तल के सामने अनवीरा ने अक्सर यह सौगन्ध खाई थी कि नीलकण्ठ की ही जीवन-संगिनी बनेगी।

"मासा की मूर्ति पर फूल चढ़ाते हुए भी तो तुमने यही कसम खाई थी अनवीरा!" कुन्तल ने उसके गले में बाँहें डालकर कहा।

यह साचकर कि प्रेमी के बिना जीवन का कोई अर्थ नही यह उस टीले पर चढ गई और नीचे खड्ड म कूदकर मर गई।'

अन्नदा बाबू जसे इसी कथा की भूमिका म अत्यन्त वेदनायुक्त स्वर मे बगला गान गाने लगे

मोर मरणे तोमार हब जय।
मोर जीवन तामार परिचय।

अन्तराल बोला, "आज तो रवीन्द्रनाथ की वह कविता सुनाओ—राजपथ दिए आसियोना तुमि !

अन्नदा बाबू जसे उसके लिए पहले से तयार बठ थे। धार गम्भीर स्वर म कविता पाठ करन लग

राजपथ दिए आसियोना तुमि
पथ भरियाछे आनोके प्रखर आलोके।
तोमारे न जन देखेप्र तिवेगी
हे मोर स्वप्न विहारी
तोमारे चिनिव प्राणेर पुलके
चिनिव विरले नेहारि परम पुलके।
एसो प्रदापर छायातल दिये,
एसो ना पथेर आलोके, प्रखर आलोके।

फिर सबका ध्यान अलवीरा पर जम गया—नीलाक्षी अलवीरा, जो चक कवि माखा और चक सुदरी शारका के आशीर्वाद स कुन्तल स पहले ही दुलहन बन गई थी।

अनदा बाबू बोले 'एक काम ता हो गया, पर एक रह गया।'

"कौनसा ?" नीलकण्ठ ने पूछ लिया।

'अरे भई एक दिन कुन्तल की मनोकामना भी पूरी करेंगे कविवर माखा और परम सुदरी शारका।'

सब हँस पडे।

नीलकण्ठ बोला, कल प्रदशनी का अन्तिम दिन है। काश आज की

मूर्तिकार बाबा अपनी आत्मा से देखते। वे परिश्रम पर नहीं भावना पर जोर देते थे। वे स्वयं मूर्ति की सलाह लेते थे कि उसकी भंगिमा सचमुच कैसी होना चाहिए। पत्थर से पूछते थे कि बोलो।'

'कभी तो पत्थर को भूल जाया करो, मूर्तिकार महाराज!' कुन्तल ने हँसकर कहा, 'अलवीरा पत्थर नहीं यह ध्यान रहे। इसे नाराज न करना। मन में विचार में चरित्र में इसे जीवन-संगिनी मानकर चलोगे तो सुख पाओगे। पत्थर वाला मौन व्रत धारण न करना। कहीं घूमने जाओ तो इसे साथ लेकर जाना। किसी से कोई सौदा करो तो इसकी सलाह लेना। जो कमाकर लाओ, इसके हाथ पर रखना। धूप तेज हो तो इससे पूछकर छाता तानना। यही तुम्हारी कल्पना है, यही तुम्हारी रचना यही सम्भावना है यही प्राप्ति!'

'सारे उपदेश मेरे लिए ही हैं या कुछ अलवीरा के लिए भी?' नीलकण्ठ चुप न रह सका।

बात-बात में कुन्तल के स्वभाव का परिचय मिलता था। पश्चिम की प्रशंसा करते हुए इस कहावत पर तान तोड़ती 'मरने से पहले पेरिस अवश्य देखो।' कभी होनोलूलू की हवाई सुन्दरियों का बखान करके कहती 'हाऊ थ्रिलिंग!' न जाने कितनी बार वह बता चुकी थी, 'हवाई के सौन्दर्य के पीछे अमरीकन पागल हैं!' कभी वह शेक्सपीयर की जन्मभूमि स्ट्रेटफोर्ड ऑन एवन के किस्से ले बैठती, जहाँ उसने पन्द्रहवीं और सोलहवीं के बीच में बनकर 'हैमलेट' देखा था, पुराने ढंग के लकड़ी के रंगमंच पर पुराना वेश-भूषा में! 'हम तीनों के मन प्राण एक साथ नाच उठे थे हैमलेट देखकर!' वह बड़े गर्व से बताती। वह बार-बार कहती, 'यूरोप आज भी लाजवाब है जब कि दूसरे महायुद्ध का विनाशकारी प्रभाव स्पष्ट है।' फिर बात का फेर धारकर पश्चिम की चित्र-प्रदर्शनियों पर ले आती।

अलवीरा कहती, 'कला का आनन्द तभी है, जब मन की आँखें खुल जाएँ।'

कुंतल की बातों में सबसे अधिक रस अन्तराल को आ रहा था। नीलकण्ठ आशा की आभा में उसे समझाता एक दिन कुन्तल तुम्हारी हो जाएगी। पर बीच बीच में अन्तराल उदास मुंह बना लेता, जैसे उसे डर हो कि कहीं कुंतल हाथ से न निकल जाए। कहां राजा की बेटी कुन्तल और कहां मैं धोली के बाबूजी का बेटा! दोनों परिवारों का कोई मुकाबला नहीं।

किस सोच में खो गए अन्तराल? कुन्तल खिलखिलाकर हंस पड़ी। बोली, 'भाग्य पर भरोसा रखो! बचपन में जब तुम्हारी सूरत सपने में भी नजर नहीं आई थी त्रिकालदर्शी राजज्योतिषी ने बताया था कि राजकुमारी के हाथ की रेखा उस किसी राजकुमार की नहीं, एक साधारण प्राणी की जीवन-संगिनी बनाने पर तुली हुई है। वह बात इतने दिन बाद सत्य सिद्ध होने जा रही है।

अन्तराल बोला, 'क्या यही बात मेरी हस्त रेखा भी कहती है कि मेरे भाग्य में राजकुमारी लिखी है?

कुंतल और अन्तराल को हंसते देखकर अनन्त बाबू कहते 'हे अलबीरा हे नीलकण्ठ! सुनो मैं कहता हूं। तबले पर ठेका लगाओ। भविष्य वर्तमान बनने जा रहा है।

कुन्तल मुस्कराती जैसे एक ही सांस में मास्को और द्वारका की कथा कह रही हो। और कभी वह इण्टरिम गवर्नमेण्ट की बात ले बैठती। एक दिन वह अखबार की कोई खबर खोलकर बैठ गई—

छब्बीस अक्तूबर को मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों के सम्मिलित हो जाने से अब केन्द्र में सर्वदलीय सरकार की स्थापना हो गई। लगभग दो मास पूर्व राष्ट्रीय स्थापना के बाद से मुस्लिम लीग का सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा निरंतर जारी रही। नरेन्द्र मण्डल के अध्यक्ष भूपाल के नवाब और वाइसराय लार्ड वेवल ने जो परिश्रम किया उसमें वे सफल रहे।

अन्तराल ने अनन्त बाबू के कान में कहा 'लार्ड वेवल कांग्रेस और

मुस्लिम लीग की मिली जुली इन्टेरिम गवर्नमेण्ट बनाने को तैयार हो सकते हैं, तो राजा साहब कुन्तल के साथ मेरा विवाह करने को भी राजी हो सकते हैं।"

अनदा बाबू बोले 'संसार में कुछ भी असम्भव नहीं। पर तुम्हारे मामले में तो कुन्तल ना चाह कर सकती है। उसे प्रसन्न रखो।'

कोइली की बात भी सुन चुका था अन्तराल। उसका विवाह अपूर्व से हुआ होता, तो उनकी कविता में इतनी गहराई न आ पाती। अब वह एक वकील की पत्नी थी पर कविता में उसका लक्ष्य रहता था अपूर्व, जो अपनी वेदना को भूलने के लिए कन्द-युवती श्यामली के अंचल से बँध गया था। श्यामली भी जानती थी कि उसके हृदयेश के मन पर कोइली की अमिट छाप लग चुकी है।

श्यामली का अपूर्व बापन घोषी छोड़ आया था। कोइली यहां थी। एक ओर अपूर्व इस अवसर का लाभ उठाकर कोइली के पुराने सम्पर्क को ताजा करने का यत्न करता दूसरी ओर अनदा बाबू कोइली के साथ उसकी कविता के अनुवाद में जुटे रहते।

अन्तराल से यह बात छिपी न रही कि कोइली की कविता तो एक माध्यम है। अनुवाद करते समय अनदा बाबू यहां मानकर चलते थे कि जिसे इसमें सर्वत्र निर्दिष्ट सम्बोधित किया गया है वह कोई अपूर्व न होकर स्वयं अनदा बाबू ही हो सकते हैं।

एक दिन राजा साहब का तार मिला— अन्तराल और कुन्तल फौरन पुरी पहुँच जाएँ।

उन्हें जाते देखकर दूसरे अतिथि भी जाने को तैयार हो गए।



अलवारा और नीलकण्ठ धौली पहुँचे तो वद्यजी और गगन महात्मा सप्तपदी वाले विवाह का मुहूत निकाल बठे। उस मुहूत से पहले ही पुरी से अन्तराल को भी बुलवा लिया गया।

सोना ने अलवारा का श्रृंगार किया, जसे वह स्वय हू उडिया दुलहन हो। वह यही कहती रही 'सच्चा प्रेम हो तो यह दिन आकर ही रहता है। कौन जाने मन के सात पाताल मे कौनसा स्वर बज उठता है।

'धौली म सौ खबरो की एक खबर थी, अलवीरा और नीलकण्ठ के विवाह की खबर। वद्यजी बोले, 'महाप्रभु ने रंग दिखाया। नहीं तो सिविल मैरेज क बाद सप्तपदी वाले विवाह के लिए कहाँ तयार होती एक अंग्रेज कन्या?

धौली मे यह खबर भी घर घर का चक्कर लगाने लगी कि नीलकण्ठ से उपहार म वसूल की हुई कला-सम्बन्धी पुस्तक सोना ने अलवीरा को भेंट कर दी।

अन्तराल बोला वह पुस्तक अलवीरा को भेंट करने की बात सोना को तुमने सुझाई होगा जागरी।

जागरी ने हँसकर कहा यह किस अखबार की खबर है? और

किस मयूरपंखी नाव म बैठकर आई है ?" फिर मानो धौली के इस विवाह की खबर दब गई, और हिंदुस्तान की आजादी की खबर उभर आई। ' देश के बटवारे की बात सामने आ रही है ! बैद्यजी अपनी दुकान पर बैठे-बैठ राह चलतो को पुकारकर कहते 'जाने भगवान् की क्या इच्छा है देश की स्वतंत्रता के पीछे ? कभी वैद्यजी अन्तराल स पूछते, "तुम्हारे राजा साहब क्या कहते हैं ?

"राजा साहब क्या कह सकते हैं ! अन्तराल हँस पडा।

'अग्रेज जाने वाला है, जो अपने को चक्रवर्ती समझता था।' वैद्यजी गगन महान्ती को सम्बोधित करते हुए कहते, 'मास्टरजी अग्रेज पर भी सनीचर आकर रहा। भाग्य का लिखा टाले नहीं टलता।

गगन महान्ती उत्तर देते आप भी कितनी भोली बातें करते हैं वैद्यजी ! अग्रेज भी यहीं रहेंगे प्रेम से जब वे खुशी से हम आजाद करेंगे। उन्हें यहा स निकालने का तो प्रश्न ही नहीं।

"अग्रेज की कन्या का देखो, मास्टरजी ! धौली की बहू बन गई। मझपदी वाला विवाह कराने से भी सकोच नहीं किया।'

'हर नारी के मुख पर अलकोरा का नाम है, वैद्यजी ! इतनी सुन्दर दुलहन धौली म न पहले आयी न आगे आयेगी।

'हाँ, मास्टरजी ! पहले कौन मान सकता था कि उड़िया दूल्हे को अग्रेज दुलहन मिलेगी ? और सुनो मास्टरजी ! आजादी मिलने पर फिर एक बार महात्मा गाधी धौली आयेंगे और त्रिमूर्ति म अपनी मूर्ति पहचान कर बहुत खुश होंगे। खड़ी होगी दिल्ली, इतिहास के सिंहद्वार पर। हमारा धौली भी कम नहीं।'

'जो चटाई पर बैठते थे उन्ह कुरसी मिलने वाली है वैद्यजी! देख वे हमारे साथ कैसा व्यवहार करते है !

गुरुचरण बात बेकि सीन किसी मोड पर मानो चतुर्मुख को लाकर खडा कर देता। वह वैद्यजी की दुकान पर बैठकर कहता बाबा अग्रेज को अच्छा नहा समझते थे। अग्रेज की मूर्ति बचते उन्हें दुःख होता था।

—१८



अलवीरा और नीलकण्ठ धौली पहुँचे तो वद्यजी और गगन महान्ती सप्तपदी वाले विवाह का मुहूर्त निकाल बठे। उस मुहूर्त से पहले ही पुरी से अन्तराल को भी बुलवा लिया गया।

सोना ने अलवीरा का शृगार किया, जसे वह हू-ब-हू उडिया दुल्हन हो। वह यही कहती रही, 'सच्चा प्रेम हो तो यह दिन आकर ही रहता है। कौन जाने मन के सात पाताल म कौनसा स्वर बज उठता है।'

'धौली म सौ खबरो की एक खबर थी अलवीरा और नीलकण्ठ क विवाह की खबर।' वद्यजी बोले, 'महाप्रभु ने रग दिखाया। नहा तो सिविल मरेज के बाद सप्तपदी वाले विवाह के लिए कहा तयार होती एक अंग्रेज कन्या ?

धौली मे यह खबर भी घर घर का चक्कर लगान लगी कि नीलकण्ठ स उपहार म वसून का हुई कला-सम्बन्धी पुस्तक सोना ने अलवीरा को भेंट कर दी।

अन्तराल बोला, 'वह पुस्तक अलवीरा को भेंट करन की बात सोना को तुमने सुझाई होगी जागरी!

जागरी ने हँसकर कहा ''यह किस अखबार की खबर है ? और

जागरी कह देता "बाबा ने तो एक बार यह भी कहा था। बम काली कलकत्ते वाली गुम जाए अंग्रेज की ताली!

गुरुचरण ऐसे बात करता जैसे रासलीला समाप्त होने पर आरती की थाली उठाते हैं। इसी थाली में वह मानो अलबीरा और नीलकण्ठ के विवाह की बात रख देता।

दादी खुश थी। बार बार बखान करती, "दीनानाथ नारायण। दौड़ी आई बहू कलकत्ते से। दौड़ी आई कोन्ली। कैसे न आते? नीलकण्ठ के विवाह की खबर घूम गई जैसे इत्र की सुगन्ध! अलबीरा जैसी बहू भगवान् सबको दे।

सोना खुशी से बाँह लहराकर कहती, अलबीरा जैसी बहू सबको मिले!

हर कोई कह रहा था—बम काली कलकत्ते वाली! हर तरफ खबर दौड़ती है, इतिहास की बुलाहट पर। खबर चुप नहीं रहती, जैसे छेनी की मार सहते-सहते मूर्ति बोल उठती है। देख ली अंग्रेज कन्या धौली की बहू बनते देख ली। जैसे कोई किवाड़ के पल्ले हटाकर कहे—आओ, वधु! द्वार द्वार पर विवाह की खबर का स्वागत होने लगता है। जादू करती है विवाह की खबर। त्रिमूर्ति के चरण छूकर वह धन्य हो उठती है। धौला के मजे हैं। जो भी सुनता है अवाक् रह जाता है। आस-पास के गाँवों में चर्चा हो रही है—ऐसी बहू देखी है किसी और गाँव में?

आज बाबा होते तो क्या कहते? जागरी हँसकर पूछता, "क्यों गुरुचरण भाई! क्यों वैद्यजी! अन्तराल का विवाह कब करोगे? क्या उसके लिए भी अंग्रेज की बेटी आयेगी दुल्हन बनकर?

'ऐसा मत बोलो जागरी! अन्तराल के लिए तो उड़िया दुलहन आयेगी। वैद्यजी मुस्कराते।

'राजा की बेटी! गुरुचरण छेड़ता, "क्यों वैद्यजी!"

"राजा की बेटी बहू बनकर आ गई तो वारे-न्यारे हो जाएँगे।'

बच्चूजी हँसकर कहते, 'तुम क्यों चुप हो, गुरुचरण? तुम्हारा क्या ख़याल है?'

'मेरा ख़याल क्या दूसरा होगा? राजा की बेटी ही आनी चाहिए।' गुरुचरण हँसकर रंग भरता।

"अगर अपूर्व की तरह मन्तराम भी कोई बंग-कन्या ब्याह लाया?" डाक्टर चुटकी लेता।

एक दिन राजा साहब की चिट्ठी आई, मन्तराम के नाम लिखा था—

'कटक में रावेन्शा कॉलिज के पास हमारी जो कोठी है, उसे हम 'चतुर्मुख म्यूज़ियम' के लिए भेंट कर रहे हैं। कोठी खाली कराई जा चुकी है। अमरनाथ बाबू को लिख दिया है, चतुर्मुख की सब मूर्तियाँ वहीं सजाकर रखें। शुरू के तीन साल तक एक क्लर्क और एक चपरासी का वेतन हम देंगे। आगे के लिए भी कुछ प्रबन्ध हो ही जाएगा। तुम चतुर्मुख की विधवा पत्नी से पूछकर लिखो कि उन्हें ये सब मूर्तियाँ म्यूज़ियम को देने में कोई संकोच तो नहीं होगा?'

दासी को राजा साहब की चिट्ठी पढ़कर सुनायी गई, तो उसने जहाँ पाँच हज़ार की रक़म के लिए राजा साहब का दोबारा धन्यवाद किया वहाँ उनके म्यूज़ियम-सम्बन्धी सुझाव और उदारता के लिए उन्हें बधाई देते हुए लिखवाया, 'ये सब मूर्तियाँ बड़े शौक़ से म्यूज़ियम में रखी जाएँ, क्योंकि मूर्तिकार की कीर्ति बनाए रखने के लिए इससे बड़ा कोई साधन नहीं हो सकता।'

गाँव-गाँव, गली-गली राजा साहब की उदारता की ख़बर चल पड़ी।

कोई कहता, 'हुज़ूर राजा साहब बड़े धर्मी हैं। एक कोठी दे डालना उनके लिए कौन कठिन काम है!' कोई कहता, "चतुर्मुख के जीवन-काल में कहाँ चले गए थे राजा साहब! उनका यश-गान तो जीते-जी होना चाहिए था!"

मूर्तिशाला में मूर्ति गढ़ते हुए भास्कर राजा साहब की उदारता पर खुश

होने के साथ-साथ ग्रालोचना करने लगता 'मैं नही जानता था कि गुरुदेव की वे सब मूर्तियाँ ग्रब इस मूर्तिशाला म लौटकर नही ग्राएँगी। यह तो राजा साहब का ग्रत्याचार ही कहा जाएगा।

सवर चलती है कभी विलम्बित लय मे कभी द्रुत। मगन करो महाप्रभु जगन्नाथ! बम काली कलकत्ते वाला! नमामि सवसिद्धिदाता विनायकम्!

छुट्टियाँ खत्म हो गइ। ग्रलबीरा कटक चली गई। ग्रब वह महानदी के किनारे उसी कोठी म रहती थी जहाँ विवाह से पहले रहती थी।

क्या विवाह के बाद भी ग्रलबीरा कॉलेज म पढाएगी?' जागरी पूछता तुम यहाँ रहोगे ग्रौर तुम्हारी दुलहन कटक म? क्या नील?"

ग्रन्तराल की छुट्टी खत्म हो गई। वह भी राजा साहब के पास पुरी चला गया।

रूपक मूर्तिशाला म मूर्ति गढ़ते हुए कहता गुरुदेव कहा करते थ—जो पत्थर तुम्हे गढना है, उसे गढते रहो।

नीलकण्ठ कहता, ग्रपना ग्रपना काम है। कोई मूर्ति गढता है। कोई कॉलेज म पढाता है। कोई राजा साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी है। ग्रपना ग्रपना काम ही ध्रुव सत्य है।'

जागरी गाँजे का दम लगाकर मजे से कहता 'मैं बाता की कमाई खाता हूँ। यात्री भुवनेश्वर देखने ग्राते रहे ग्रौर हमारा दाल भात चलता रहे।

कभी कभी सोना मूर्तिशाला म ग्राकर नीलकण्ठ की हँसी उडाने लगती तो दादी यही सलाह देती 'बहू की नौकरी छुड़वा दो बेटा!

सोना हसकर कहती 'यह कहेगा नौकरी छोड दो। वह कहेगी, तुम धौली छोडकर कटक म रहो मेरे पास।

जागरी कहता मुझे तो डर है ग्रलबीरा लन्दन जाकर रहेगी नील को साथ ले जाएगी। क्या नील?

नील पर ऐसा मनीचर सवार नही हो सकता।" दादी थाप लगाते

सोना अक्सर व्यंग्य छोड़ती तीखे बाणों की तरह।

नीलकण्ठ कहता 'दिल खोलकर हँसो, सोनो! मैं बुरा नहीं मानता।

सोना कहती, "एक बात बता दूँ नील! तुम्हारे और मलवीरा के बीच धौली और कटक का नहीं, सात समन्दर तेरह नदियों का अन्तर है। तुम उड़िया वह अंग्रेज!" वह खिलखिलाकर हँस पड़ती।

कटक से मलवीरा की चार-पाँच चिट्ठियाँ आ चुकी थीं। वह उसके बिना उदास थी। उसमें इतना साहस नहीं था कि लिख दे नौकरी छोड़कर चली आओ।

"पति-पत्नी का सम्बन्ध ही क्या हुआ, अगर वे इकट्ठे न रहें?" सोना व्यंग्यपूर्वक कहती।

"तुम भी तो रामलीला के लिए बाहर जाती हो गुरुचरण के साथ। क्यों सोनो?" नीलकण्ठ पूछ बैठता। पर वह जानता था, मलवीरा का मामला दूसरी तरह का है।

"तुम मलवीरा की नौकरी छुड़ाना चाहो तो छुड़ा सकते हो क्या?"

"क्यों नहीं?"

"तो छुड़वा क्यों नहीं देते?"

"कभी-कभी सोचता हूँ मैं ही कटक चला जाऊँ उसके पास।"

"उसकी कमाई पर जियोगे?"

'अपनी और पराई का भेद कहाँ रह गया, सोना!

"तो वह क्यों नहीं आ जाती?

'दुनिया रुपये के बिना नहीं चलती, सोना!'

तो तुम कमाओ। मैं क्या रोकती हूँ?'

'मेरी बात तुम समझोगी नहीं।'

"मलवीरा तो खूब समझती है तुम्हारी बात? तुम्हें ही उसकी बात समझनी होगी, देवता! सोना हँस पड़ी।

उस समय मूर्तिशाला में कोई नहीं था। बाबा की मूर्तियाँ बनी

जान से मूर्तिशाला खाली लग रही थी ।

'बाबा जितनी मूर्तिया बनाते तुम भी भस्मी पार कर जाओग, नील ! तुम भी कटक म नौकरी कर लो ।

'धौली छोड दू ? यह नही होगा, भौजी ! मैं खानदानी पाथुरिया हूँ। एक हमारा ही घर तो बचा रह गया है पाथुरिया गली का नाम सार्थक करने के लिए। पहले बहुत से पाथुरिया रहते होगे। अब मैं भी चला जाऊँ तो पाथुरिया गली का नाम बहुत बडा मजाक बन जाएगा।"

"पाथुरिया गली का नाम सार्थक करने के लिए तो अधूरी नारी मूर्ति और त्रिमूर्ति वाली चट्टान ही गली के उत्तर और दक्षिण छोर पर काफी हैं।"

"तो तुम चाहती हो मैं चला जाऊँ, भौजी ?"

'तुम जाओ या अलवीरा को बुलाओ। पति-पत्नी को इकट्ठ रहना चाहिए ।

सोना जमकर बठ गई। उसने आँखें चमकाकर कहा, 'तुम अलवीरा के पास जाकर क्यों नहीं रहते कुछ दिन ? पत्थर की नारी बना रहे हो बठे बठे। हाथ थका रहे हो। वहाँ वह सचमुच की नारी उदास है तुम्हारे बिना। बार-बार लिखती है चार दिन के लिए चले आओ। वहाँ रह आओ चार दिन।'

"पत्थर की नारी क्या सचमुच की नारी से कम है, भौजी ?"

कम नही है तो विवाह क्यो कराया था ? बाबा ने दादा को इतना प्यार न किया होता तो क्या उनकी मूर्तिया म प्राण पड सकते थे ?'

मैंने कब कहा, मैं अलवीरा को प्यार नही करता ?"

प्यार करते होते तो यहा बठे पत्थर से सिर मार रहे होते ? अलवीरा के पास हो आओ ।

पत्थर पर छेनी चलती रही। सोना को चुप हो जाना पडा। नीलकण्ठ बोला 'मैंने अलवीरा को लिख दिया है भौजी !—हाड-मास की नारी को जाने बिना पत्थर की नारी म प्राण नही पडते। खाली कल्पना से काम

नही चलेगा। मूर्तिकार बिशु के पीछे कन्ध सुन्दरी का प्रेम काम कर रहा था। उसी ताल पर चलती थी उनकी छेनी। कन्ध सुन्दरी की मूर्ति गढ़ते-गढ़ते बिशु के प्राण-पखेरू उड गए। मूर्ति अधूरी ही खडी है। मै कटक आने की सोच रहा हूँ। पर हाथ वाली मूर्ति पूरी हो जाए

भीतर से दादी ने आकर कहा मैं तुम लोगो की बात सुन रही थी।

सोना ने हँसकर कहा, "तुम द्वार के साथ लगी खडी थी, दादी ?'

दादी बोली, नीलकण्ठ तुम्हारी ही बात मानता है, सोना। मैं तो कह चुकी हूँ चार दिन कटक हो आओ और यह भी देख आओ कि तुम्हारे बाबा की मूर्तियाँ ठीक-ठीक रख दी गइ म्यूजियम मे। मैं डरती हूँ कि इसमे राजा साहब का कोई दूसरा मतलब न हो।'

नीलकण्ठ ने कुछ जवाब न दिया।

दादी बोली, 'तुम बहू के पास जाओ बेटा! जाना ही होगा। चार दिन सात दिन, दस दिन, महीना—जितने दिन वह कहे।"

नीलकण्ठ पत्थर गढ़ते-गढ़ते चौंक उठा।

सोना हँस पडी, 'जाएगा। कैसे नही जाएगा! क्या, नील ?

हाथ की मूर्ति जैसे शिकायत कर रही हो—क्या मुझे बीच मे छोडकर ही चल जाओगे ? मैं अधूरी ही रह जाऊँगी ?

'अधूरी मूर्ति छोडकर तो कैसे जाऊँ भौजी ?"

'जाना ही होगा। मूर्ति भी कभी पूर्ण हुई है, पगल !'

"पाथुरिया पत्थर की परवाह नही करेगा, तो पत्थर भी पाथुरिया का क्या देगा, भौजी ?

"पत्थर की नारी छोडकर सचमुच की नारी के पास जाओ। वह उदास है।'

जैसे हाथ की मूर्ति मानापूर्ली करके पूछने लगी—तो मुझे बीच मे छोडकर ही चले जाओगे ?

'हाथ की मूर्ति तो पूरी हो ले, भौजी !"

नहीं, आज ही जाना होगा। जो हुक्म दादी नहीं टाल सकता, वह

मैं चला रही हूँ। क्या, दादी ?'

दादी ने कहा ठीक हुक्म दे रही हो।

'तो तुम्हारा भी यही हुक्म है, दादी ?'

दादी ने झुंझलाकर कहा तुम हाड-मांस के मनुष्य की बात नहीं समझते, तो पत्थर की बात कैसे समझ लेते हो ?'

एक मन कहता है मलवीरा की नौकरी छुड़वाकर उसे यहाँ ले आऊँ दादी ?

'पहले उसके पास जाओ तो।' दादी ने कहा वह उदास है तेरे बिना। बहू ने झूठ तो नहीं लिखा होगा। जो मुट्ठी के स्वर्ग को नहीं देखता उससे बड़ा मूर्ख दूसरा नहीं।

सोना ने हँसकर कहा नील तो मुट्ठी के पत्थर को ही देख सकता है।"

दादी ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा नील को कैसे बताऊँ शुरू शुरू में इसके बाबा भी इतने ही लापरवाह थे। बाद में उन्हें समझ आई।

'नील को समझ आते उतनी देर नहीं लगेगी दादी !' सोना हँस पड़ी।

'गाड़ी का समय हो रहा है नील !" दादी ने कहा, 'जल्दी करो। गाड़ी निकल न जाए।

हाथ की मूर्ति छोड़कर नीलकण्ठ खड़ा हो गया।

सोना ने कहा, 'वहाँ जाकर यह न कहना, सोना भौजी के हुक्म से आया हूँ। यही कहना तुम्हारे ही हुक्म से आया हूँ।'

नीलकण्ठ ने उचटती सी नजर से मूर्ति की ओर देखा, जैसे मूर्ति कह रही हो—जल्दी लौटकर आओगे न ?



वचपन से ही उन्होंने एक-दूसरे को जाना-पहचाना था। आपस की पहचान ने प्रेम का रूप ले लिया और प्रेम ही विवाह में बदल गया। दोनों का यही मत था कि पैसा हाथ का मैल है। धन चाहिए आवश्यकता-पूर्ति के लिए। आनन्द की चरम सीमा है प्रेम, जो समर्पण की भावना में फलीभूत होता है।

नीलकण्ठ को भी नौकरी के लिए मजबूर करे, यह मलवीरा का आग्रह नहीं था। काम तो करना है—अपना अपना काम। इस पर दोनों सहमत थे। शादी के बाद गृहस्थी चलानी होती है। उसके लिए पैसा चाहिए।

"नौकरी न छोड़ने की बात को लेकर तुमने मुझे गलत नहीं समझा, यह मेरा सौभाग्य है।" मलवीरा ने मुस्कराकर कहा, 'मैं नौकरी करती रहूँ यह भी ठीक है। तुम नौकरी नहीं करते, यह भी ठीक है।"

"तुम हुक्म दोगी तो मैं भी नौकरी करूँगा।" नीलकण्ठ चुप न रह सका।

हुक्म चलाने की भूल मैं नहीं करूँगी। पर जिस नजर से तुम पत्थर की मूर्ति को देखते हो, उसी नजर से मुझे क्यों देखते हो? मैं तो मूर्ति से अलग साँस लेती हूँ सोचती-समझती हूँ।" मलवीरा की आँखें

अपनी मूर्ति की ओर जम गइ जो नीलकण्ठ का कला का उत्कृष्ट नमूना थी ।

नीलकण्ठ ने कहा, तुमने यह कसे समझ लिया कि मूर्ति का मूल्य होता है, और माडल का बिलकुल नहा ?"

"तो मूर्ति का नहीं, मेरा भी मूल्य है तुम्हारी नजर म ?" अलवीरा फिर हँस पडी । और वह नील का हाथ थामे बरामदे म आ गई ।

चार कमरो वाले इस बँगले के साथ अलवीरा का पूरा मेल प्रतीत हाता था । हर चीज अपनी जगह सजाकर रखी थी ।

बरामदे म कुरसियो पर बठे-बठ उन्ह महानदी की विशाल जलधारा के दशन हुए। नीलकण्ठ बोला, जाने किस नशे म बह रही थी महानदी ! इसका इतिहास तो बहुत पीछे से आ रहा था । अशोक का युग पार करती हुई महानदी वतमान युग म बह रही है, जब केन्द्र म इण्टरिम गवनमेण्ट बन चुकी है ।

"पर काग्रस और मुस्लिम लीग की मिली-जुली सरकार की कोशिशें तो देश को एक रखने के बजाय दो भागो म बाँटने जा रही हैं।' अलवीरा ने ठण्डी साँस लेकर कहा, "देखते नही । आज का अखबार ता यही बता रहा है ।'

अलवीरा नहाने के लिए बाथ रूम म चली गई थी । नीलकण्ठ के हाथ म अखबार था ।

नौकर अभी तक ब्रेकफास्ट की तयारी म जुटा था ।

कॉलिज म आज छुट्टी थी ।

स्नान के बाद अलवीरा आदमकद आईने के सामन खडी बालो म कघी करने लगी । नीलकण्ठ पीछे जाकर खडा हो गया । आईने में अलवीरा की नीली आखें और भी नीली प्रतीत हो रही थी ।

बहुत अच्छी लग रही हो आज !"

तुम्हारी मूर्ति से भी अच्छी ?"

अलवीरा के लम्बे घुँघराले बालो म कघी चल रही थी । जसे सब

कुछ नया हो। उसे लगा जैसे कितने युगों से नारी इस तरह केश प्रसाधन में लगी है। यह शृंगार किसलिए था। किसी-न-किसी नीलकण्ठ के लिए।

वह बड़े प्यार से मलवीरा के केशों में उँगलियाँ घुमाने लगा। मलवीरा ने मना नहीं किया। उसके ओंठों पर मुस्कान खिल उठी। महानदी की ओर से हवा का एक झोंका आया, जिससे मलवीरा के केश झूम उठे।

मद भरी आँखों से वह मलवीरा का रूप निहारता रहा। पास कोई नहीं। आईना गवाह है। वे दिन याद हो आए जब उन्होंने पाँच वर्ष लन्दन में बिताए। रहते तो अलग-अलग थे, पर मन की डोर तो एक ही थी।

'मेरी नई मूर्ति बनाने की सोच रहे हो?"

'तुम सोचती हो मैं मूर्ति के सिवा कुछ सोच ही नहीं सकता?'

बरामदे में कोई चिड़िया जाने किस डाली में कुछ बोल उठी जैसे वह कह रही हो—सोचो, खूब सोचो।

चौड़े किनारी की साड़ी का छोर मलवीरा ने कमर में कसकर लपेट रखा था। पीली किनारी की सफेद साड़ी के साथ पीला ब्लाउज मानो मुंह से बोल उठा।

बाहर से नौकर की आवाज आई 'ब्रेकफास्ट तैयार है, मेम साहब।"

नीलकण्ठ मुस्कराया। मलवीरा हँस पड़ी जैसे आँखों-ही-आँखों में कह रही हो—देखा तुमने, साड़ी-ब्लाउज पहनने पर भी गोरी चमड़ी हो रहती है।

जूड़े को बहुत कलात्मक दिलकश रूप दिया गया था जैसे मलवीरा इस कला में सिद्धहस्त हो चुकी हो।

बाहर से पीला फूल लाकर नीलकण्ठ ने मलवीरा के जूड़े में लगा दिया।

'जूड़े में फूल लगाने का काम तुम अपने जिम्मे ले लो।' मलवीरा मुस्करायी।

नीलकण्ठ ने शीशी से सेण्ट निकालकर अलवीरा के केश महका दिए। बोला, 'मैं तो बहुत से काम अपने जिम्मे ले सकता हूँ।

आमने-सामने बठकर वे ब्रेकफास्ट लेने लगे।

महानदी की ओर दोनो की नजरें एक साथ उठ जाती। चिर समर्पिता महानदी से मानो उनका युग-युग से परिचय हो। अलवीरा चेहरा घुमाती तो जूडे का पीला फूल अपनी कथा कह जाता—किसी मधु-कुज की गोपन कथा, जो पत्थर में भी लिखने की क्षमता रखती थी।

"क्या सोच रहे हो, नील ?'

'हाथ की मूर्ति अधूरी छोडकर आया हूँ। बाबा ने भी एक अधूरी मूर्ति छोडकर उस रात विष-पान कर लिया था और एक वह धौली की पाथुरिया गली की अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान है। क्या मूर्ति अधूरी ही रहती है ? क्या उवशी की कथा भी अधूरी ही रहती है ?

अलवीरा जसे किसी चिन्तन म डूब गई। थोडी खामोशी के बाद बोली, *मैं कभी कभी सोचती हूँ मूर्तिकार विशु की आत्मा प्यासी चाह* की डगर पर चलते चलते धौली की पाथुरिया गली के चक्कर काट रही है।'

उस कथा से वह सकेत तो अवश्य मिलता है। पर इस समय किसी विशु या उसकी उवशा की कथा कहने का कहाँ अवकाश है ?'

अलवीरा ने गम्भीर मुँह बनाकर कहा फिर तो एक दिन हमारी कथा की भी अवहेलना की जाएगी छोडो। काम की बात सुनो। राजा साहब ने सरकार को बीस लाख की डोनेशन दी है।

'किस लिए ?

कटक म आर्ट स्कूल खोलने के लिए और प्रिन्सिपल के लिए तुम्हारा नाम सुझाया है। करोगे नौकरी ?

पर वह नौकरी मुझे ही मिलेगी इसका क्या ठीक ?

कोशिश करना अपना काम है। पाच सौ मेरे, सात सौ तुम्हारे। पैसा हाथ का मल सही, पर इसके बिना काम नही चलता।"

o • o

नीलकण्ठ का नाम बन गया। सात दिन बाद ही उसे नौकरी का ऑफ़र आ गई।

नाना था मलवीरा के जूड़े का फूल अपनी कथा कह गया उस मूर्तिकार को वह नारी मिल गई जिसे वह पत्थर में खोजता आया था, जिसके स्पर्श से उसका भाग्य जाग उठा। सपने में भी न सोचा था कि कटक में आर्ट स्कूल खुलेगा और उसका प्रिन्सिपल बनने का सौभाग्य उसी को प्राप्त होगा।

मलवीरा बोली कहो तो आज म्यूज़ियम में बाबा की मूर्तियाँ देखने चलें? कल तुम्हें नौकरी पर जाना है। बाबा का आशीर्वाद तो तुम्हें लेना ही चाहिए।

पर बाबा तो नहीं चाहते थे कि मैं नौकरी करूँ।'

'तो अभी तक दुविधा में पड़े हो?"

चतुर्मुख म्यूज़ियम पहुँचते देर न लगी, जैसे एक-एक मूर्ति पूछ रही हो—क्या पता हो नई साधना को जन्म दो?

पुलक्ति हो उठत हैं । यह समाचार जागरी द्वारा दादी को मिलता रहता है ।

गुरुचरण की रासलीला मण्डली न 'उत्कल नृत्य नाटक सस्थान' का रूप ल लिया । साना इस सस्थान की जान है । साज-सज्जा म यह सस्थान भले ही थोडा पीछ हो पर नतकी क रूप म सोना का जवाब नही ।

पिछले साल पेरिस मे थिएटर द नेशन' द्वारा आयोजित अन्तर्राष्टीय समारोह म सोना को सर्वोच्च नतकी की पदवी दा गई ।

जागरी कई बार दादी के पास बठकर कहता है, 'सोना को पेरिस की हवा लग गइ। हम रह गए धौली के पछी ।'

अपना अपना भाग्य है बेटा ! ' दादी मुस्कराती है ।

वद्यजी रोगी के हाथ म पुडिया थमाते समय उस राकर बताते हैं हमारे गुरुचरण की उत्कल नाटक मण्डली पिछले साल छ महीने सात सागर की यात्रा करती रही । और इसक उत्तर म वद्यजी को यही सुनने को मिलता ' पस बनाए गुरुचरण ने । साना को क्या खाक मिला !

सोना बहुत बदल गई ऐसा जागरी का खयाल है । पर वह तो उसी तरह हसती है उसी तरह जागरी और दादी से बोलती है ।

सोना का बटा है सागर जिसे वह विदेश यात्रा पर जाते समय दादी के पास छाड गई थी । वह दादी से इतना हिल गया कि अब सोना के पास जाना ही नही ।

रूपक अब भी मूर्तिशाला म बठकर मूर्ति गढ़ता है । गगन महान्ती स्कूल की नौकरी से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं । वे रूपक स कहते हैं 'कहो तो तुम्हे भी कटक क आर्ट स्कूल म लगवा दें ?'

मैं नौकरी नही करूँगा । रूपक यही उत्तर देता है, 'गुरुदेव मना कर गए थे ।

उन पाते ने नौकरी कर ली ता तुम क्यो नही कर सकत ?'

नही मास्टरजा मैं नौकरी नही करूँगा ।'

वद्यजी प्रसन्न हैं कि आखिर उनके सुपुत्र अन्तराल का ब्याह गगन

महारानी की कृपा मीनाक्षी से हो गया। उस बात को पाँच वर्ष हो गए।

राजकुमारी कुन्तल का विवाह राजा साहब की इच्छा से एक सूबे वाली राजकुमार से कर दिया गया था जिसे वह घर जमाई बनाने में सफल हो गए थे। महारानी पहले ही चल बसी थीं। फिर जब देश में देसी रियासतें विलीनीकरण की राह पर चल पड़ी तो राजा साहब ने सरकार का घोर विरोध किया। सरकार के सामने एक न चली। राजा साहब ने एक दिन पुरी में सागर-तट पर आत्महत्या कर ली। अन्तराल को नौकरी से जवाब मिल गया। राजकुमारी तो नहीं चाहती थी पर उसका पति न माना। यह कथा वैद्यजी अपनी दुकान पर आने वाले रोगियों से अवश्य कहते हैं।

रोगी के हाथ में दवा की पुड़िया देते हुए वैद्यजी कहते हैं "मास्टरजी की कितनी प्रशंसा की जाए! अन्तराल की नौकरी चली जाने पर भी उन्होंने मीनाक्षी का उससे ब्याह दिया। चलो तीन साल की बेकारी के बाद सरकारी नौकरी मिल गई हमारे अन्तराल को।

'अपना अपना भाग्य है।' सामने से यही उत्तर मिलता है।

'गाँव-मुखिया पाढ़ू अब नहीं रहा। उसकी जगह उसका बेटा बनी गाँव मुखिया बन गया। पाढ़ू अंग्रेजी सरकार की जय बुलाता था बनी कांग्रेसी सरकार की।

मायाधर निरंजनिया ही बन गए, केलू काका की तरह। काँसे पीतल के बरतनों की दुकान भी उनके साथ ही उठ गई। अब तो मायाधर की याद ही रह गई लोकनाथ मिस्त्री की तरह। बहुत गये, बहुत आये। धौली का पहचान वही है। उस पाथुरिया गली में कुछ भी परिवर्तन न हुआ हो। जो चले गए उनकी याद आती है।

आगरी को नूतन भुवनेश्वर सभ्य, भव्य और सुरुचिपूर्ण लगता है, पुरातन भुवनेश्वर मलिन भग्न खण्डहर-सा। फिर भी वह कहता है 'अपन को तो पुरातन भुवनेश्वर ही अच्छा है जो दाल भात देता है। युग-युग जितने यात्री, जो पुरातन मन्दिर देखने चले आते हैं।

पुलकित हो उठत हैं । यह समाचार जागरी द्वारा दादी को मिलता रहता है ।

गुरुचरण की रामलीला मण्डली ने 'उत्कल नृत्य नाटक सस्थान' का रूप ल लिया। सोना इस सस्थान की जान है। साज सज्जा म यह सस्थान भले ही थोडा पीछे हो, पर नतकी क रूप म सोना का जवाब नहीं।

पिछल साल पेरिस म थिएटर द नेशन्स द्वारा आयोजित अन्तर्राष्टीय समारोह म सोना को सर्वोच्च नतकी की पदवी दी गई।

जागरी कइ बार दानी के पास बठकर कहता है मोना को पेरिस का हवा लग गई। हम रह गए धौली के पछी।

अपना अपना भाग्य है बेटा ! दानी मुस्कराती है।

वद्यजी रोगी के हाथ म पुडिया थमाते समय उसे रोककर बताते हैं 'हमारे गुरुचरण की उत्कल नाटक मण्डली पिछल साल छ महीने सात सागर की यात्रा करती रही। और इसक उत्तर मे वद्यजी को यही सुनने को मिलता, पसे कमाए गुरुचरण न। मोना को क्या खाक मिला !'

सोना बहुत बदल गई एसा जागरी का खयाल है। पर वह तो उसी तरह हँसती है उसी तरह जागरी और दानी से बोलती है।

मोना का बेटा है सागर जिसे वह विदेश यात्रा पर जाते समय दानी के पास छोड गई थी। वह दादी से इतना हिल गया कि अब सोना के पास जाता ही नहीं।

रूपक अब भी मूर्तिशाला म बठकर मूर्ति गढ़ता है। गगन महान्ती स्कूल की नौकरी स अवकाश प्राप्त कर चुके हैं। वे रूपक से कहते हैं, कहो तो तुम्हे भी कटक क आर्ट स्कूल म लगवा दें ?

मैं नौकरी नहीं करूँगा। रूपक यही उत्तर देता है 'गुरुदेव मना कर गए थ।'

'उनके पोते ने नौकरी कर ली तो तुम क्यो नहीं कर सकते ?'

'नहीं मास्टरजी मैं नौकरी नहीं करूँगा।

वद्यजी प्रसन्न हैं कि आखिर उनके सुपुत्र अन्तराल का ब्याह गगन

मास्टरजी की कन्या मीनाक्षी से हो गया। उस बात को पांच वर्ष हो गए।

राजकुमारी कुन्तल का विवाह राजा साहब की इच्छा से एक नृप-वंशी राजकुमार से कर दिया गया था जिसे वह घर-जमाई बनाने में सफल हो गए थे। महारानी पहले ही चल बसी थीं। फिर जब देश में देशी रियासतें विलीनीकरण की राह पर चल पड़ीं तो राजा साहब ने सरकार का घोर विरोध किया। सरकार के सामने एक न चली। राजा साहब ने एक दिन पुरी में सागर-तट पर आत्महत्या कर ली। अन्तराल को नौकरी से जवाब मिल गया। राजकुमारी तो नहीं चाहती थी पर उसका पति न माना। यह कथा वैद्यजी अपनी दुकान पर आने वाले रोगियों से अवश्य कहते हैं।

रोगी के हाथ में दवा की पुड़िया देते हुए वैद्यजी कहते हैं "मास्टरजी की कितनी प्रशंसा की जाए! अन्तराल की नौकरी चली जाने पर भी उन्होंने मीनाक्षी का उससे ब्याह दिया। चलो तीन साल की बेकारी के बाद सरकारी नौकरी मिल गई हमारे अन्तराल को।

'अपना अपना भाग्य है।' सामने से यही उत्तर मिलता है।

'गांव-मुखिया पाचू अब नहीं रहा। उसकी जगह उसका बड़ा बेटा गाँव-मुखिया बन गया। पाचू अंग्रेजी सरकार की जय बुलाता था, बेटा कांग्रेसी सरकार की।

मायाधर निरवंशिया हो चल गए, कालू बाबा की तरह। कांसे-पीतल के बरतनों की दुकान भी उनके साथ ही उठ गई। अब तो मायाधर की याद ही रह गई लोकनाथ मिस्त्री की तरह। बहुत गए, बहुत आए। थोड़ों की पहचान बनी है। जैसे पाथुरिया गली में कुछ भी फेर-बदल न हुआ हो। जो चल गए उनकी याद आती है।

जगती को नूतन भुवनेश्वर स्वच्छ भव्य और सुविस्तृत लगता है, पुरातन भुवनेश्वर मलिन-धूल धूसरित-सा। फिर भी वह कहता है "अनन्त का तो पुरातन भुवनेश्वर ही अच्छा है, जो हजार साल का है। दूर-दूर से यात्री जो पुरातन मन्दिर देखने चले आते हैं।"

साइकल पर भुवनेश्वर आते-जाते हैं वैद्यजी। अंतराल के पास नूतन भुवनेश्वर भी हो आते हैं, साइकल पर।

वैद्यजी की देखा देखी जागरी ने भी साइकल ले ली।

सोना हँसकर कहती है, "गुरुचरण भाई साहब की मण्डली में क्यों नहीं आ जाते? अगली बार तुम्हें भी सात सागर तेरह नदियाँ पार ले चलेंगे।

'यही तो बड़ी मुश्किल है।' जागरी तुर्की बतुर्की जवाब देता है, 'मुझे मक्खन लगाना नहीं आता। मैं गुरुचरण को गुरुचरण भाई साहब कैसे कहूँ?'

गगन महान्ती वैद्यजी की दुकान पर बैठकर हमेशा कांग्रेसी सरकार की आलोचना किया करते हैं। राजनीति ऐसी ही चीज है। वह मूर्ति तो देखने को नहीं मिलती, जिसके नाम पर वोट मांगते हैं।

वैद्यजी सरकार का पक्ष लेते हैं, "एक पार्टी को दूसरी पार्टी हमेशा बदनाम करने की कोशिश करेगी। आप ही बताइए, टैक्स लगाए बिना सरकार का काम कैसे चले? सावित्री ने प्रेम से मौत को जीत लिया था। यही काम हमारी सरकार करने जा रही है। आप क्या खबर कागज नहीं पढ़ते?'

'खबर कागज तो वही क्या कहता है जो सरकार चाहती है वैद्यजी यह कुछ झूठ नहीं।

देश की दशा कितनी सुधर गई है यह आप नहीं देखते मास्टरजी?

मुझे तो आज़ादी का कूल किनारा नहीं मिला अभी। क्या अन्तर्यामी से पूछकर ढूँढना होगा आज़ादी का रंग सात पाताल में?'

'मुझे तो खबर कागज पढ़ते हुए लगता है मास्टरजी कि आज़ाद भारत में सरकार का प्रेम झर रहा है जैसे मूर्ति की मुद्रा में मूर्तिकार का प्रेम झरता है।'

पिछले युग की बातें पाथुरिया गली में तैरने लगती हैं जैसे त्रिमूर्ति

याद करके सारा को पुकारकर पूछ रही हो—तुम्हें आज़ादी का मज़ा कितना मीठा लगा ?

चतुर्मुख की याद में गगन महान्ती और वडजी की आँखें डबडबा आती हैं। वे एकटक त्रिमूर्ति की ओर देखने लगते हैं। पास खड़े पीपल के पत्ते डोलते रहते हैं, जैसे त्रिमूर्ति के मूर्तिकारों का अभिनन्दन मुखर हो उठा हो।

पाथुरिया गली का उर्वशी गली का नाम देना चाहा था जागरा ने, पर नया नाम न जम सका।

"क्या आजादी की यही कल्पना है ?" गगन महान्ती चुप न रहते, "जो अंग्रेज़ सरकार के चापलूस थे रात-की-रात नई सरकार के अनुगामी बन गये। तब भी उनके मज़े थे, अब भी उनके मज़े हैं।"

हर शनिवार को नीलकण्ठ अम्बीरा और नन्हा स्वयम् धौली में आ जाते हैं, तो मानो दादी के लिए चाँद चढ़ जाता है। पर यह चाँद दो रातें गुज़ारकर ही उसकी आँखों से ओझल हो जाता है।



नीलकण्ठ को नौकरी करते आठ वर्ष हो गए। इस बीच बहुत-कुछ पाया बहुत कुछ खोया। नौकरी स्थायी रखने के लिए क्या कुछ नही करना पडा ! जिन राजा साहब की सिफारिश पर उसे कटक के आर्ट स्कूल का प्रिंसिपल बनाया गया था व कभी के चल बसे थे। उन्होंने आत्म-हत्या कर ली थी। खबर मिलते ही वह पुरी जा पहुँचा था। आज भी उन दिनो की याद हो आती है।

एक सास म बहुत से प्रश्न पूछ लेती है अलबीरा। वह नही चाहती कोई अनर्थ होने पाए। उसकी अपनी नौकरी को हिलाने वाला तो कोई पैदा नही हुआ। नीलकण्ठ की नौकरी सकट मे है। सात सौ पर आरम्भ हुई थी चालीस रुपये वार्षिक वृद्धि। एक वर्ष के बाद यह पोस्ट दोबारा विज्ञापित की गई और पब्लिक सर्विस कमीशन ने अनेक उम्मीदवारो का इण्टरव्यू लिया। उस इण्टरव्यू म भी नीलकण्ठ ही चुना गया। अब आठवाँ बरस चल रहा है। वेतन हज़ार स ऊपर पहुच गया। सब का प्यारा भी मुह तक आ गया। जिस विभाग के मातहत है आर्ट स्कूल उसके नये मन्त्री को नीलकण्ठ के विरुद्ध कर दिया गया है। इसी स उसकी नौकरी जान का भय है। अभी अभी खबर मिली है मन्त्री ने आर्ट स्कूल क

लिए एक मैनेजिंग कमेटी बना दी। नीलकण्ठ काम से मतलब रखता है। आर्ट स्कूल ने जितनी उन्नति की उसका सब श्रेय नीलकण्ठ को है। यह देखते हुए कहा जा सकता है कि मैनेजिंग कमेटी नीलकण्ठ के विरुद्ध कदम न उठा सकेगी।

"हार-जीत का नाम है दुनिया। घबराने की तो बात नहीं मनजीरा!" सारी बात को ताड़-तानकर नीलकण्ठ कहता है "मुझे न्याय की आशा है।

हल्दार दादा इस्तीफा पेश कर चुके हैं। हिंसक वृत्ति बढ़ रही है। किसी के पेट पर लात मारने से बड़ी हिंसा क्या होगी?

सचमुच महोदय दिल के टूटे लगे। पर वे नीलकण्ठ के विरोधियों की बातों में आ गए। उनसे कोई निवेदन करना व्यर्थ है। नीलकण्ठ का काम सबके सामने है। विद्यार्थियों में लड़के भी हैं और लड़कियाँ भी। उनमें कोई गड़बड़ नहीं पाई। कथकली की यात्रा पर नीलकण्ठ विद्यार्थियों के साथ जाता रहा है।

आदिवासियों की कला में रस वस्तु-छन्द मौलिक सत्य हैं। नीलकण्ठ का यह दृष्टिकोण आर्ट स्कूल की उन्नति में सहायक सिद्ध हुआ है।

मयूर और स्वामिनी ने मिलकर कथकली की कला के अध्ययन में आर्ट स्कूल के साथ बड़ा सहयोग किया। फिर तो स्वामिनी भी आर्ट स्कूल में भरती हो गई। पाँच वर्ष का कोर्स पूरा करने पर वह आर्ट स्कूल में ही नौकरी करती है। पहले दो वर्ष पति-पत्नी को अलग रहना पड़ा। फिर मनजीरा की कोशिश से मयूर को भी कटक के एक स्कूल में नौकरी मिल गई।

नीलकण्ठ कहता है, 'स्वामिनी के रूप में समूची कथ संस्कृति कटक में आकर विराजमान हो गई है।

इसमें तो सन्देह की गुंजाइश नहीं।" मनजीरा समर्थन करती है।

स्वामिनी कहती है, 'प्रिंसिपल के पद से नीलकण्ठ को निकाल बाहर किया ही नहीं जा सकता। मैनेजिंग कमेटी लिख देगी नीलकण्ठ

निर्दोष है। मन्त्री महोदय की ऐसी क्या ज़िद हो सकती है कि नीलकण्ठ की जगह दूसरे आदमी को प्रिंसिपल बनाकर छोड़ें।'

नीलकण्ठ दूसरी बात करता है, "हम नदी की तरह दोनों किनारों से जाने किस किस नाले का जल ग्रहण करते हुए आगे बढ़ते हैं। सागर को समूचा जल सौंपने के संस्कार का पालन करते हुए सब हिसाब चुकाना होता है। यह तो मैं सदा कहूँगा, श्यामली! तुम्हें देखकर मेरी आँखों में सम्पूर्ण वन्ध-देश तैरने लगता है।'

"सभ्यता की दौड़ में आदिवासी लोग कितने पिछड़ गए!

'क्या आदिवासियों को साथ लिये बिना हमारा आगे बढ़ना कुछ अर्थ रखता है?'

यही नीलकण्ठ की चिन्तन धारा की दिशा है। बीचो-बीच तिरता आता है किसी वन्ध गीत का बोल या किसी नृत्य का ताल। उस समय नीलकण्ठ श्यामली को बुलवाकर कहता है 'अपने देश का कोई गीत सुनाओ, श्यामली! सच कहता हूँ कभी कभी जी में आता है, सब छोड़-छाड़कर वन्ध देश में जा बसूँ!

वहाँ भी मन को शान्ति नहीं मिलेगी, प्रिंसिपल साहब! मिलती तो मैं यहाँ क्यों आती? श्यामली असम्मति प्रकट किये बिना नहीं रहती।

कुछ लोग प्रिंसिपल से जलते हैं कि वतन में हजार से ऊपर मार लेते हैं और ऊपर गट-गटकर और भी जाने कितना वसूल कर लेते हैं।

चिन्ता व्यर्थ है। जलने वालों को जलने दीजिए। श्यामली समझाती है।

अनिश्चित वातावरण में नीलकण्ठ बुरी तरह सोचता है—ईर्ष्या की दीवार ऊँची उठ रही है, चीन की दीवार की तरह।

वेतन में मिलने वाले एक हजार छोड़कर भी क्या मैं अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह सकता? हजार के बिना क्या हमारी गृहस्थी का दम घुट

जाएगा ? इतने रुपये के बिना क्या मैं निस्तेज हो जाऊँगा ? ये प्रश्न नीलकण्ठ को अन्तर्मुखी बनाए रखते हैं।

एकान्त में बैठे-बैठे उसे लगता धौली की पाथुरिया गली में बाबा की आत्मा घूम रही है। जैसे बाबा शिकायत कर रहे हों, 'अधूरी मूर्ति छोड़कर तुम क्यों चले गए नील ?'

कोइली प्यार कर समझाती है "क्या, इतने उदास क्यों रहते हो ?'

'तुम्हारी कविता का क्या हाल है ?" नीलकण्ठ बात टालने के लिए पूछता है।

"अनदा बाबू आ गए। मेरी तीन सौ कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद वे कर चुके हैं। अलवीरा भौजी से अंग्रेज़ी ठीक कराएँगे। फिर पुस्तक छपने के लिए लंदन के प्रकाशक को भेजी जाएगी।

अपूर्व कोइली की मूल कविता का प्रशंसक है। अनुवाद की बारीकियाँ वह नहीं जानता। अनुवाद में अनदा बाबू काफी स्वतन्त्रता बरतते हैं।

अलवीरा कहती है, 'अनुवाद में जो काट छाँट करनी पड़ती है उससे तो कविता की भाव भूमि कहाँ-से-कहाँ जा पहुँचती है।'

कोइली कुछ नहीं बोल सकती। वह उल्टे अनदा बाबू का आभार मानती है जो उसकी ख्याति को चार चाँद लगाने पर तुले हुए हैं।

नीलकण्ठ हँसकर कहता है, 'अनुवाद की काट-छाँट भी तुम ऐसे कर रही हो अलवीरा, जैसे छैनी से पत्थर गढ़ो हैं।'

अनदा बाबू मुस्कराकर कहते हैं, 'हर भाषा की अपनी सीमाएँ हैं और फिर अनुवादक की मजबूरियाँ। यह तो आप भी मानेंगे कि जिस भाषा में अनुवाद किया जाए, उसका मूल कविता से सम्मुख वह अछूत तो नहीं लगनी चाहिए। यह मेरा सौभाग्य है कि अनुवाद को माँजते समय अलवीरा अंग्रेज़ी मुहावरा ठीक से बिठा देती है।

किसी-न-किसी बात पर अपूर्व और अनदा बाबू में झड़प हो जाती है। कोइली दोनों के साथ बनाए रखना चाहती है।

कोइली के प्रति अपूर्व की कमज़ोरी खूब समझती है श्यामली।

अन्नदा बाबू के मन का अनुराग भी उनसे छिपा नहीं रहता। उनकी अपनी श्रद्धा भी नीलकण्ठ की ओर झुक जाती है। यह बात नीलकण्ठ से भी छिपी नहीं रहती।

एकान्त में बैठकर नीलकण्ठ सोचता—श्यामली के लिए मेरे मन में यह कैसा अनुराग है? श्यामली हँसती है तो मानो कंध संस्कृति हँस उठती है। कोई कथा कहती है तो जैसे चिर काल की मूक कंध संस्कृति को भाषा मिल गई है। अनन्त बाबू कोइनी की कविता का अनुवाद कर सकते हैं, तो मैं भी श्यामली की कथा अन्तर्मन में उतार सकता हूँ।

आर्ट स्कूल का वातावरण जाने कैसे अविश्वास से भर उठा। मन्त्री महोदय प्रिंसिपल का बदलने पर तुल गए। घर पर खाली समय में नीलकण्ठ पहले के समान ही मूर्ति गढ़ता रहता, जैसे अधूरी मूर्ति को पूर्ण करने का कथा चैन न लेने देती हो।

नीलकण्ठ मूर्ति गढ़ते-गढ़ते सोचता—कल्पना के हज़ार हाथ हैं, हज़ार आँखें। काम तो काम है, काम से छुटकारा नहीं। पत्थर का चोला लिया तो मूर्ति कैसे कथा नहीं कहेगी? कुछ भी अच्छा नहीं लगता। फिर भी अधूरी मूर्ति तो पूर्ण करनी होगी। इसमें तो श्यामली भी सहमत है। जब देखो मेरी प्रशंसा के पुल बाँधने लगती है। पगली! कहती है, 'प्रिंसिपल को बदला गया तो मैं इस्तीफा दे दूँगी।'

छुट्टी का दिन हो तो यह नहीं हो सकता कि श्यामली मिलने न आए। नीलकण्ठ उसकी बाट जोहता है, यह कथा अलकापुरी से भी छिपी न रहता।

'दामी चीज पत्थर है या मूर्ति? क्या प्रिंसिपल साहब?' श्यामली आकर पूछती है।

'दामी तो हाथ की मेहनत है श्यामली!' नीलकण्ठ बरामदे में मूर्ति गढ़ते हुए महानदी की ओर देखकर कहता है, 'हाथ चलता है तो दिमाग भी चलता है, जैसे महानदी बहती है। व्यस्त रहना ही सुख का साधन है। कौन जाने मेरी साधना धौली की ओर मुड़ जाएगी।'

'मन्त्री महोदय इतनी भूल नहीं करेंगे।"

"करेंगे तो हरि-इच्छा। तुम कथ-दन्त की कथा कहो।'

"सब तो कह चुकी हूँ।" श्यामली मुस्कराती है 'कुछ भी तो नाप नहीं।"

'कथ-दन्त की आत्मा न जाने कब से सो रही है। उसे कब चिर-निद्रा से छुटकारा मिलेगा? वह अहिल्या न जाने कब शाप-मुक्त होगा। श्यामली, तुम्हारा मन क्या कहता है?

"मन की कथा सुनने का किसे अवकाश है! आपकी वह कथा मेरे मन लगती है कि धौली का बूढ़ा मूर्तिकार कथ-दन्त में गाँव-गाँव घूमकर कह रहा है—अधूरी मूर्ति पूर्ण करनी होगी।

'बाबा की आत्मा तो यहाँ मेरे पास भी घूम रही है। अलवीरा यह नहीं समझती। काइली ने अपनी एक कविता में यह कथा कहने की चेष्टा की है। अनन्दा बाबू ने उसका अनुवाद अलवीरा को दिखा दिया, पर मेरी अन्तर्वेदना न अनन्दा बाबू समझे, न अलवीरा।"

"हर कथा हर आदमी नहीं समझ सकता। पत्थर सत्य है तो मूर्ति की कथा भी सत्य है। लोग कान न दें तो मूर्ति का क्या दोष? अब कोई कहे मैं नूतन भुवनेश्वर को देखता ही नहीं, तो उसमें नूतन भुवनेश्वर का क्या दोष?"

'नूतन भुवनेश्वर ने रहने हैं हमारे मन्त्री महोदय। वे मुझे बदलने पर तुल गए। मुझसे मिलने का तो उन्हें अवकाश नहीं। फादर पर उनका चाहे लिखेंगे।'

'फादर भी तो क्या करना है। उनका रवैया क्या होगा भगवान् जाने। किसी को आशीर्वाद देता है फादर, किसी को अभिशाप।

'नूतन भुवनेश्वर का क्या छोड़ो, श्यामली!'

मूर्ति गढ़ते समय नीलकण्ठ की आँखों में श्यामली की छवि तैरती रहती है। यह बात श्यामली से छिपी है न अलवीरा से। अलवीरा बुरा नहीं मानती। वह कभी भूलकर भी नहीं सोचती कि कलाकार और

:। फिर और कुछ नही चाहिए।

'क्या वन्ध-देश की कल्पना चलचित्र सी तुम्हारी आँखों म घूम जाती है श्यामली ?''

'क्या नही ?

'वन्ध-देश की कथा याद आती है ? समय मे बहुत पिछड गई है तो ?'

'कसे नही पिछडेगी ? हम जो आगे निकल आए। पर वन्ध देश की कथा कभी शेष नही होगी। उसम नये-नये पात्र जुडते जाएँगे।'

'पर बीसवी सदी के द्रुत ताल के सम्मुख बहुत ही विलम्बित लगता है वन्ध-देश का ताल। मेरा मन इस चिन्ता म घुलने लगता है।''

"यह चिन्ता छोडिए। अपनी चिन्ता कीजिए। हो सके तो नूतन भुवनेश्वर जाकर मन्त्री महोदय की चरण रज लीजिए नहीं तो नौकरी का संकट टलना कठिन है।'

'जाती है तो जाने दो। नौकरी के पीछे आत्मा बेच दू ! अपनी छेनी हथौडी तो कही नहीं जाएगी। जब मैं जन्मा तो क्या यह नौकरी लिखा कर लाया था ? कुछ दिन बीत गए कुछ दिन और बीत जाएँगे।'

आपकी नौकरी गई तो मुझे भी इस्तीफा देना होगा। मैं कह चुकी हू।

हँसी म तो बहुत सी बातें कह दी जाती हैं।'

मैंने वह क्या गम्भीर होकर कही थी।

नीलकण्ठ ने पत्थर पर छेनी चलाते हुए श्यामली को देखा। वह भी मूर्ति गढ रही थी। नीलकण्ठ छेनी चलाते हुए सोचने लगा, 'मैंने श्यामली को इतना समीप क्यों आने दिया ? मेरी नौकरी चली गई और उसने इस्तीफा दे डाला तो लोग बातें बनाएँगे। अनवीरा के रहते क्या मैं अपने मन प्राण श्यामली की भेंट कर सकता हू ?

उसे लगा श्यामली ने उसके चेहरे के भाव पढ लिए।

हे मूर्ति, मेरा प्रणाम लो।'

'मूर्ति को प्रणाम कर रहे हैं ?' श्यामली ने मुस्कराकर पूछा।

'बाबा की आत्मा घूमती है और चेतावनी देती है—अधूरी मूर्ति पूर्ण करो। सोचता हूँ, धौली की अधूरी नारी मूर्ति-वाली चट्टान पर आधी रात के बाद न जाने कब से विशु की आत्मा हाथ में छेनी लेकर ठक-ठक करती आ रही है। पर अधूरी मूर्ति के पूर्ण होने की अब कोई आशा नहीं।'

'आप ही क्यों नहीं उसे पूर्ण कर डालते ?'

'वह तो अपूर्ण ही रहेगी। हाँ मन्त्री महोदय अपनी कथा अपूर्ण नहीं छोड़ेंगे।'

"मैं भी इस्तीफा देने को तैयार बैठी हूँ।'

अलबीरा ने यह सब सुना और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

रूपम् को बच्चा-गाड़ी पर बिठाकर अलबीरा जोर से नौकरानी को आवाज़ देती है

'रूपम् को बाहर घुमा लाओ, आया !'

रूपम् जाना नहीं चाहता था। उसका मन था कि नीलकण्ठ के पास खड़े होकर उस मूर्ति को देखता रहे।

अलबीरा को रूपम् पर गुस्सा आ गया। उसका ध्यान अपनी ओर खींचते हुए अजन्ता बाबू अपूर्व और कादम्बी मिलकर पुरी का एक चक्कर लगा आने को कह उठे।

रोते हुए रूपम् को आया बच्चा-गाड़ी पर लेकर घुमाने चली गई।

उधर कमरे में अनुवाद की काट-छाँट फिर चलती रही। इधर बरामदे में नीलकण्ठ और श्यामली अपनी-अपनी मूर्ति में मग्न रहे। नीलकण्ठ सोचता 'कांतिहीन पत्थर कांति पाना चाहता है। अनेक युग पार करती आई है मूर्ति की कथा, फिर भी वह अपूर्ण ही रह जाता है। इतिहास में इस कथा को स्थान नहीं मिलता पर इस कथा की अनुभूति क्या इतिहास से कुछ कम रंग है ?'

दूसरे दिन नीलकण्ठ प्लाट स्कूल में जाकर अपने कमरे में बैठा तो

थोडी देर वाद श्यामली ने ग्राकर पूछा कुछ सुना ग्रापने ? नूतन भुवनेश्वर से खबर ग्राई है।

'मेरे लिए घबराने का प्रश्न नही। मैं तैयार बठा हू।

मन्त्री महादय ने ग्राडर लिख दिया कि मुझे प्रिन्सिपल बना रह हैं, ग्राप हागे वाइस प्रिंसिपल। मैं तो यह मानने स रही।

"चिन्ता की बात नही। यह हमारी परीक्षा है श्यामली ! तुम्ह मूर्ति कला की सौगन्ध तुम प्रिन्सिपल बनोगी।'

यह भी कोई सौगन्ध हुई भला ?'

'तुम्ह मरी सौगन्ध यह कथा यही शेप हो जाएगी। मैं घौला जाऊँगा। तुम्हारी क्लास का समय हो रहा है। तुम चलो।'

दोपहर को नूतन भुवनेश्वर से ग्राडर ग्रा गया, ग्रौर श्यामली का मन उन्मासी म डूब गया।

नीलकण्ठ का दोप यही था कि उसने मन्त्री महोदय की मूर्ति बनाने से इन्कार कर दिया था।

ग्रलबीरा न यही सलाह दी कि नीलकण्ठ इस्तीफा न द। वह उसे समझाती रही "तुम्हारा वेतन तो वही रहेगा जो तुम ले रह हो। फिर इसम स्वाभिमान की क्या वात है ? तुमने स्वय ही इस्तीफा दे दिया तो मेरी इतने दिन की दौड धूप व्यय चली जाएगी। वडी कठिनाई स तो मैं कई मित्रा से कह सुनकर मन्त्री महोदय को यह ग्रॉडर लिखने पर वाध्य कर सकी, जिससे तुम्हारी ग्रार्थिक क्षति तो विलकुल न होने पाए।

पर नीलकण्ठ का यही उत्तर था 'भले ही नई प्रिन्सिपल मेरी पुरानी छात्रा श्यामली ही होने जा रही है, पर मेरी ग्रात्मा यह ग्रपमान सहन नही कर सकती।'

ग्रौर नीलकण्ठ ने इस्तीफा दे दिया।



वैद्यजी ने अख़बार में नीलकण्ठ के इस्तीफ़े की ख़बर पढ़ी, तो वे उसी समय साइकल पर सवार होकर तुरन्त मुवल्लवर आ पहुँचे।

बोले अन्तराल, 'तुम्हारी क्या सलाह है? नीलकण्ठ की सहायता का कोई रास्ता तो निकालना चाहिए।' वैद्यजी बहुत उदास स्वर में अपनी बात कहते रहे।

अन्तराल ने कहा, "मन्त्री महोदय बड़े निरंकुश हैं। अगर नीलकण्ठ ने इस्तीफ़ा न दिया होता तो कुछ हो सकता था।'

गाँवों में यह ख़बर सुनकर घर-घर उदासी छा गई।

जागरी का दम-सा घुटने लगा। माता को लगा जैसे सिर पर ग़म की चट्टान आ गिरी। और दादी को तो जैसे काठ मार गया।

लगता था त्रिमूर्ति पर भी दुःख की छाया पड़ गई।

रूपक सोचने लगा, 'गुरुदेव की आत्मा तो प्रसन्न होगी! वे तो नीलकण्ठ को सरकार की नौकरी करने से सदा मना करते थे।'

वैद्यजी बोले, 'मन्त्री महोदय ने क्या सोचकर यह आर्डर निकाला, बाबू? कहाँ नीलकण्ठ, कहाँ न्यायमन्त्री! कोई बात हुई भला!'

अगले दिन अख़बार में कुन्दन का बयान छपकर आया। उसने



अलबीरा को पूरी आशा थी कि कुंतल के बयान से प्रभावित होकर मंत्री महोदय अपना हुक्म वापस ले लेंगे। उसे वह दिन याद आया जब एक बार लंदन में ताश खेलने का प्रस्ताव रखते हुए कहा था 'कैसा रहे अगर हम चुम्बनों की शर्त लगाकर खेलें।' बात करते-करते अलबीरा ने आवेग में आकर नीलकण्ठ को चूम लिया और कहा, 'सरकार को वह आर्डर वापस लेना होगा डार्लिंग !'

वह खबर ऐसी होगी जैसे पका हुआ आम टपक पड़े।" नीलकण्ठ मुस्कराया।

'मैं जीवन में इससे अधिक और क्या चाहूँगी ? तुम फिर प्रिन्सिपल बन जाओ। मैंने तो तुम्हें कहा था, मंत्री की मूर्ति बना दो। तुम न माने।

'वे तो हुक्म दे रहे थे। मैं कम सिर झुकाकर कहता—हुजूर माई-बाप !

चाँदनी रात बड़ी भली प्रतीत हो रही थी। नीलकण्ठ ने अलबीरा को पहलू में समेटते हुए कहा, 'डार्लिंग !"

अलबीरा की नीली आँखें चमक उठीं। नीलकण्ठ को यह अनुभव

हाउ देर न लगी कि संकट की घड़ी में पत्नी और भी आत्मीय हो उठती है। सच से महकते लम्बे केश, नीली आँखें। खिड़की में चाँद झाँक रहा था।

'चाँदनी में कल्पना इतनी सुन्दर क्यों हो उठती है मलवीरा?'

मलवीरा खिड़की के बाहर चाँद की ओर देखने लगी, जैसे संगीत धीरे धीरे उभर रहा हो।

'हम बचपन में दया नदी के किनारे खेला करते थे, यह बात क्या भुलाए भूलने की है नील?'

नील ने मलवीरा के केशों का स्पर्श किया जैसे कोई मूर्ति सजीव हो उठी हो; जैसे उनका विवाह हुए तीन दिन भी न हुए हों। उसने कहा, 'लगता है इतने दिन काम की इतनी दौड़ रही कि गोपन-वार्ता के लिए समय ही नहीं मिला।'

"कैसी गोपन-वार्ता? मेरा स्नेह तो तुम्हारी मुट्ठी में है डार्लिंग!' स्पन्दित भावना में आकर नील के अधरों पर लम्बे चुम्बन की छाप लगा दी।

लगता है मेरी किसी मूर्ति ने मुझे चूम लिया।

मैं पत्थर की मूर्ति नहीं हूँ नील!' उसके शब्द यों फैल गए जैसे कमल के चौड़े पत्तों पर वर्षा की बूँदें फैल जाती हैं।

'प्रेम का उत्तराधिकार तो भाषा से भी पहले का है।" नील मुस्कराया, 'तुम यही कहना चाहती हो न? पर पत्थर तो मानव से भी पहले की वस्तु है।'

मलवीरा ने हँसकर कहा, 'सपना तो पत्थर का भार नहीं सह सकता।

"मूर्तिकार के हाथों में आकर तो पत्थर भी जान लेता है मलवीरा, कि वह क्या चीज है जो सम्पूर्ण अन्तर का भय टालती है।'

"मन तो मुझे कोई कभी नहीं खटकता, नील! जैसा घर बनाना चाहा था, वह कभी का बन गया। उसके पतले ओंठ मानो काँपने लगे।

उसने खिड़की के बाहर नज़र दौड़ाई जैसे चाँद से पूछना चाहा—तुम क्या संकेत कर रहे हो ? जाने क्या सोचकर वह बोली, मेरा सपना था, मैं नये इतिहास की रचना करूँ। खैर छोड़ो। कुन्तल कल आ रहा है। उसने लिखा है वह मन्त्री महोदय से मिलकर आएगी। शायद बात बन जाए।

मैं कहे देता हूँ, कुछ नहीं होगा।

'कुन्तल कुछ कर सके तो क्या बुरा है ?

वह अकेली आ रही है या महाराजकुमार भी साथ होंगे ?

यह तो उसने नहीं लिखा।

फिर अन्तराल की बातें चल पड़ी। नीलकण्ठ ने कहा वे दिन चलचित्र की तरह आँखों में घूम जाते हैं। महारानी तो चाहती थी, कुन्तल का विवाह अन्तराल से हो। राजा साहब न माने। पर कुन्तल स्वयं अन्तराल को चाहती थी। फिर उसने कैसे दूसरी जगह विवाह कर लिया ?'

महाराजकुमार सूर्यदेव सूर्यवंशी हैं। अलबीरा मुस्करायी,' चन्द्रवंशी होते तो नाम होता चन्द्रदेव ! राजा साहब को सूर्यदेव पसन्द आया। कुन्तल भी मान गई।

क्या कुन्तल को कभी उन दिनों की भी याद आती होगी जब वह अन्तराल को दिल दे बैठी थी ?" नीलकण्ठ ने पूछ लिया।

'कितने लोग हैं जिनका सपना पूरा होता है ?'

कुन्तल वह राजा साहब की बात न मानती, तो राजा साहब को उसकी बात माननी पड़ती। कुन्तल ने समझौता क्या किया ?'

'वह कल आ रही है। उसके मुँह पर ही उसे दोषी मत कह डालना। वह तुम्हारे लिए इतनी दौड़-धूप कर रही है।



"नूतन भुवनेश्वर में सरकार के मन्त्रियों का स्वर्ग बसता है।" मीनाक्षी ने हँसकर कहा, 'वह देखो, मन्त्रीजी की कार जा रही है। उसे प्रणाम करो। चूक हुई तो नौकरी से हाथ धो बैठोगे। मन्त्री के सम्मुख सिर झुकाओ। वही इस युग का भगवान् है। उसकी कोठी पर प्रार्थियों का तांता बंधा रहता है।'

'ऐसी बातें नहीं किया करते।' अनन्तराम मुस्कराया और फिर वह एकाएक उदास हो गया। थोड़ी खामोशी के बाद बोला, 'नीलकण्ठ पर क्या बीती? कुन्तल भी जोर लगाकर हार गई। परसों की बात है। मैं कटक गया था। सोचा नीलकण्ठ से मिल आऊँ। वहीं कुन्तल ने आकर बताया कि मन्त्री महोदय टस-से-मस नहीं हुए।'

"श्यामली को क्यों प्रिन्सिपल बना दिया गया? यह तो नीलकण्ठ की ही पुरानी छात्रा है। माना कि कुछ प्रदर्शनियों में उसका काम सराहा गया और उसे राष्ट्रपति पदक भी मिल चुका है। फिर भी वह नीलकण्ठ से आगे कैसे निकल गई?"

'असल बात तो यह है। नीलकण्ठ ने मन्त्री की मूर्ति बनाने में संकोच किया। इस पर मन्त्री महोदय ने लिखा—आर्ट स्कूल का प्रिन्सिपल

कायम रखने मे प्रिन्सिपल नीलकण्ठ बहुत सफल नही हुए। प्रिन्सिपल के पद पर श्यामली की नियुक्ति की जा रही है। नीलकण्ठ के वेतन म कमी नही की जाएगी, परन्तु उनको अब वाइस प्रिन्सिपल के रूप मे रहना होगा।'

"यह तानाशाही कब तक चलगी ?

'चुप ही अच्छी है श्यामली ! दीवारो के भी कान हाते हैं।'

"मैं ता कहूँगी, इस्तीफा देकर नीलकण्ठ ने अच्छा किया। आखिर वह अपनी ही पुरानी छाया के नीचे वाइस प्रिंसिपल बनना कसे स्वीकार कर लेता ?

'बुरा भी क्या था ? वेतन ता वही रहता। मैं समझना हू नीलकण्ठ इस अपमान को सहकर विष पान का आदश स्थापित कर सकता था।"

'आत्म-सम्मान भी तो एक चीज है।

अन्तराल ने वात टालते हुए कहा, एक और वात सुनो। पिछले साल गणतन्त्र दिवस पर उडीसा की जो सास्कृतिक मण्डली दिल्ली गयी थी, उसके साथ धौली का गाँव मुखिया वशी भी गया था। वह वहाँ एक नया चान्स चल आया।

वह क्या ?

वह अपने हस्ताक्षर मे यह चिट्ठी दे आया कि धौली की त्रिमूर्ति राष्ट्रीय सग्रहालय के लिए दी जा सकती है।

'त्रिमूर्ति को कौन जाने देगा ? और इसम वशी को क्या लाभ होगा ?

यह तो वही सोच सकता है।

तो त्रिमूर्ति चली जाएगी ?

देखो।

'मैं जाकर पिताजी को समझाऊँगी। वैद्यजी भी कभी नही चाहेंगे कि त्रिमूर्ति चली जाए।

'मन्त्री तो जो चाह कर सकते हैं।

त्रिमूर्ति नही जाएगी अन्तराल !" मीनाक्षी न बलपूवक कहा,

'मन्त्री तो आएँगे और जाएँगे। त्रिमूर्ति की महिमा बनी रहेगी। घौली उससे निरन्तर सत्कार ग्रहण करता रहेगा।'

कहने को तो यह कह गई मीनाक्षी, पर उसके मुख पर चिन्ता की रेखाएँ बनी रहीं।

• • •

जागरी त्रिमूर्ति को बचाने के लिए सबसे अधिक चिन्तित था। वही कहता फिरता था 'त्रिमूर्ति जावे रहेगी। किसी की मजाल नहीं, सरकार के सामने जबान खोल सके।'

वद्यजी का खयाल था, भगवान् सहायक हों तो त्रिमूर्ति कहीं नहीं जा सकती। गाँव में दो दल हो गए।

जागरी के दल ने गाँव-गाँव जाकर ढोल बजवा दिया कि घौली की त्रिमूर्ति जा रही है, उसे बचाने के लिए पंचायत होनी चाहिए।

जागरी दो-तीन बार कटक हो आया था। नीलकण्ठ और मलवीरा ने यही कहा, "तुम पंचायत करो। उसमें हम भी आएँगे।'

घोड़ों के पैर टापने की आवाज की तरह गाँव-गाँव त्रिमूर्ति की बात चल पड़ी। वद्यजी के मुँह में एक ही बात थी, 'पाँच सौ साल बाद भी त्रिमूर्ति यहीं रहेगी। सरकार तो आनी-जानी है। त्रिमूर्ति स्थायी रहेगी।"

दानी डरती थी कि कहीं त्रिमूर्ति चली न जाए। सोना कहती, 'त्रिमूर्ति यहीं रहेगी।"

"गाँव के पूजा-पाठ उत्सव पर त्रिमूर्ति का बरदहस्त रहना ही चाहिए।" गुरुचरण जाप लगाता।

बहुत से लोग त्रिमूर्ति पर फूल चढ़ाने लगे थे, जैसे उनका विचार हो कि त्रिमूर्ति स्वयं अपनी मदद कर सकती है।

जागरा त्रिमूर्ति की प्रशंसा के पुल बाँध देता। वह त्रिमूर्ति की बात यों करता जैसे केले के पत्ते पर गरम-गरम भात परोसा जाता है।

वशी कहता, 'सरकार के सामने चू करना अपराध है।

'अरे देख लेंगे सरकार का हाथ।" जागरी चिल्ला कर उत्तर देता।

'सरकार का हाथ तुमने देखा नही।' वशी हँस पडता 'सरकार के पास पुलिस है फौज है।

बहस बढ़ने लगती। बढ़जी बीच-बचाव करते। ऐसा प्रतीत होता था कि जागरी और वशी मे हाथापाई की नौबत आ सकती है।

सरकार तुम्हे इस अपराध मे जेल भेजेगी कि तुमने गाव-गाँव ढोल बजवाकर त्रिमूर्ति के बारे मे लोगो को भडकाया है। क्यो जागरी।'

'सरकार की कठपुतली से हम बात नही करते।

सरकार अपनी है तो सरकार का पक्ष ही देश भक्ति है।

'सरकार की गुलामी को देश भक्ति कहते हो?

कुछ लोग तटस्थ थे। फिर भी तम्बाकू पीते समय त्रिमूर्ति की बात चल पडती। कोई कहता त्रिमूर्ति जावे रहेगी।

इसके लिए तो पचायत होनी चाहिए। पास से कोई सुझाव देता।

"पचायत तो होगी ही।'

नीलकण्ठ और धनवीरा को भी आना चाहिए।

'आए तो अच्छा है।

गाँव मुखिया को ऐसा नही करना चाहिए था।

अब तुम उसे उपदेश देने चले?

"सच्ची बात तो कही जा सकती है।

हम कौनसा दूध देती है त्रिमूर्ति!

'तो त्रिमूर्ति को जाने दें?"

त्रिमूर्ति नही जाएगी भाई! मैं कहे देता हूँ।

'सरकार से टक्कर ले सकने का दम है लोगो मे?

त्रिमूर्ति स्वय अपनी रक्षा करेगी।'



त्रिमूर्ति से सटे हुए मच पर पच जमकर बठ गए। व हैरान थे कि न मन्त्री महोदय आये न दिल्ली से आया हुआ अधिकारी। पचायत की कारगुजारी कस आरम्भ हो? पच बीच-बीच म उठकर उपस्थित लोगो का धीर बँधा देते। पीपल के पत्तो म छन-छनकर सूरज की किरणें लोगा के चेहरों पर पड रही थी। पीपल के पत्ते हवा म तालियाँ बजा रहे थ।

अधूरा नारी-मूर्ति वाली चट्टान की ओर से आन वाली हवा बाँसुरी की धुन साथ लिये आ रही थी।

भीड के किनारे बठा एक बूढा फतूही उतारकर जुएँ मार रहा था और साथ वाले ठठेरा के छोकरे से कह रहा था "एक मछला सारे तालाब को गन्दा कर देती है।'

पास म किसी न चिल्लाकर कहा "हम सभी मे बुलाने की क्या दरकार थी, जब न मन्त्री मौजूद हैं न दिल्ली का अधिकारी, जो त्रिमूर्ति की चट्टान पर आठ ने जाना चाहता है और न नीलकण्ठ और सनवीरा ही आये हैं।"

किसी न ज्ञान बघारा सरी बात तो अपनी पहचान है जिसके लिए प्राणी बार-बार जन्म लेता है।' और फिर किसी की हँसी मेंढक की तरह

उछली, "अरे वाह ! बड़ा आया ज्ञानी ! जब तक पचायत शुरू नहीं होती, भागवत् की कथा ही सुना दो न !

जैसे भीड का शोर हर आवाज को गठरी मे बाँध रहा हो। मच पर किसी ने उठकर कहा, "मन्त्री महोदय अब दिल्ली के अधिकारी को लेकर आते ही होंगे।' यह थी वैद्यजी की आवाज।

भीड म से कोई हँस पडा, 'धत् ! क्या यह भी कोई दवा की पुडिया है ? अरे थोडा सा मीठा चूरण ही चटा दो, वैद्यजी !

इतने म अलबीरा और नीलकण्ठ आ पहुँचे। नीलकण्ठ ने खादी की सफेद धोती और कुरता पहन रखा था और अलबीरा ने चौडी पीली किनारी की सफेद साडी।

भीड के किनारे बैठा बूढा बराबर अपनी पतूही की जुएँ निकालकर मार रहा था। उसने अपने साथ वाले से कहा यह नाटक और कब तक चलेगा ? जरा-सी बात है। पानी से मक्खन कैसे निकलेगा ?'

साथ वाला हँस पडा, क्यो फिजूल बात करता है बाबा ? तू बैठा जुएँ मार ! तुझे क्या ? त्रिमूर्ति रहे चाहे जाए।'

'अपने राम को तो भूख लगी है। वह बूढा पेट बजाने लगा।

भीड मे से कोई बोला 'पत्थर तो हम भात देने से रहा ! छोडो मूर्तियों की बातें।' दूसरे ने उसकी ओर घूरकर कहा, तेरा मतलब है त्रिमूर्ति चली जाए ? मन्त्री को मनमानी करने दी जाएगी तो वह यही समझेगा वह साहब है और हम गुलाम ! फिर किसी ने पास से कहा शख बजाने और आरती उतारने से बहरे देवता आज तक न पसीज सके। त्रिमूर्ति जाती है तो जाए, हमारी बला से। फिर शोर उठा त्रिमूर्ति नहीं जाएगी। त्रिमूर्ति हमारी है। अरे भाई कह दिया हजार बार कह दिया !'

मन्त्री और दिल्ली का अधिकारी आ पहुँचे। मच के पास खडे होकर जागरी ने नारा लगाया

'जय त्रिमूर्ति ! जय आज़ादी !

भीड़ में से किसी ने कहा, 'यह भी मन्त्री की चाल मालूम होती है। हम त्रिमूर्ति नहीं देंगे चाहे जागरी लाख जय बुलाएं।'

कोई भी चुप नहीं रहना चाहता था। मंच से घोषणा की जा रही थी, "मन्त्री महोदय और दिल्ली के अधिकारी बाबू आ चुके हैं। अब पंचायत शुरू होगी।"

किसी ने पीछे बाग में कहा, 'बाबा तो कहा करते थे, हम लन्दन से अपनी मूर्तियाँ वापस लाएँगे। यहाँ हमारी त्रिमूर्ति चट्टान से काटकर दिल्ली ले जाई जा रही है।' पीछे वाला बोला, "सारा कसूर तो गाँव मुखिया बंसी का है। सरकारी दरबार से इनाम पाने के लालच में उसने गाँव की नाक काटने से हाथ नहीं रोका।' फिर किसी ने कहा, "मन्त्री की तो हम एक नहीं सुनेंगे। हम दबेल नहीं बसन। दिल्ली के बाबू की भी हम लल्लो चप्पो नहीं करते।"

मन्त्री की रक्षा के लिए पुलिस भी आयी थी।

मंच पर खड़े होकर नीलकण्ठ ने कहा:

"त्रिमूर्ति गाँव की सम्पत्ति है, मेरी नहीं। गाँव की पंचायत चाहे तो दे सकती है।"

इसी का फैसला करने के लिए पंच बैठे थे।

पंचायत में शान्ति कम थी। भावों का ज्वार उभर रहा था। स्थिति गम्भीर थी। दंगा हो जाने का भय था। पर मन्त्री महोदय तो तूफ़ानी हवा का मुकाबला करने की क्षमता रखते थे।

गाँव मुखिया बंसी ने मंच से उठकर कहा, "मेरा यही मत है कि हम त्रिमूर्ति देने में रोड़ा न अटकाएँ। सरकार हमारी है। सरकार को त्रिमूर्ति की जरूरत है। सरकार तो वैसे भी ले जा सकती है त्रिमूर्ति।"

गाँव-मुखिया की बात से जन-समूह में जोश की लहर दौड़ गई। भय था कि कहीं खून-खराबा न हो जाए।

मन्त्री महोदय ने लोगों की तालियों में उठकर कहा:

"त्रिमूर्ति आपकी है। सरकार का इस पर कोई अधिकार नहीं।

र दिल्ली हमार महान् देश की राजधानी है। यह त्रिमूर्ति दिल्ली ले ाई जाएगी मगर आप देश के हित म यह कुर्बानी कर सकते हो। दिल्ली क राष्ट्रीय म्यूजियम म हमारे देशवासी इस देखगे, देश-देश के ानी इसे देखेंगे, इससे प्रेरणा लेंगे। युग युग तक इसका नाम रहेगा

जागरी न नारा लगाया, 'जय त्रिमूर्ति ! जय आजादी !'

लाग एक-दूसरे का मुह देखन लग। पच चुप थे। मन्त्री महोदय चित्र लिखित-से खड थे।

नीलकण्ठ न उठकर कहा

'बाबा कहा करत थे—ब्रह्मा पत्थर की मूर्ति म भी प्राण डाल सकते हैं। यहा तो त्रिमूर्ति म प्राण नहीं पडे। शायद दिल्ली के म्यूजियम ा जाकर ही प्राण पडें।

मन्त्री महोदय अवाक खडे जस कोई युक्ति सोचते रह गए।

पूरा फमला समझो, भीड म कोई अपने साथिया स कह रहा था, त्रिमूर्ति नही देंगे।' फिर किसी न कहा, बशी को देखा। सरकार की ठकुर-सुहाती न करे ता गाँव मुखिया कसे रहे ?"

पच चुप थ। गगन महान्ती ने अपनी बूढी आवाज म शान की वाती जलाई— त्रिमूर्ति ता बनी ही थी बाहर जाने क लिए !'

जन-समूह को यह बात बडी विचित्र प्रतीत हुई। गगन महान्ती के ठिया जा ा किसी का सन्देह नही रहा। इधर-उधर से आवाजें उठी

'हा-हो-हा ! त्रिमूर्ति बनी ही थी बाहर जान के लिए !

'इस पचायत म किसने बुलाया ?'

'त्रिमूर्ति नही जाएगी।

बचजी गाव मुखिया बशी की बगल म उकडू बठ थ। वे दानो हाथ मलाकर बाल

"राजा देश म पुजता है विद्वान सब जगह। पर इसका यह भाव नहीं कि त्रिमूर्ति का अवश्य बाहर जाने दिया जाए। हस्तस्य भूषणम् दानम्। पर क्या हम त्रिमूर्ति देकर ही यह सिद्ध करना होगा कि दान

हाथ का गहना है ?'

फलूरी से जुएँ निकालते वाले वृद्ध ने घबराकर मंच की ओर देखा। अब तक कौन क्या-कुछ कह गया इसका उसे पता ही नहीं चला था। उसने माथ वाले का कन्धा झकझोरकर कहा, 'पचा की राय किधर है ?'

पास वाले ने हँसकर कहा, 'इस तमाशे की बात छोड़ो, बाबा ! पुरी का रहने वाला वह कवि है न, जो यहाँ भी आया करता है। परसों भुवनेश्वर में मिल गया। बोला—मैंने वह काव्य पूरा कर लिया। अब वह उस काव्य को उठाए डोलता है बाबा ! जैसे बन्दरिया मरे हुए बच्चे को छाती से चिपकाए रहती है।'

किसी ने वैद्यजी का नाम लेकर उन्हें 'उलटी खोपड़ी' की पदवी दी। फिर कहा, 'कभी आपने दवा की पुड़िया भी दान में दी है, वैद्यजी ?'

जन-समूह जाग में उमड़ा पड़ रहा था। सबकी आँखों में गलमान तर रहा था। भीड़ दो टोलियों में बँट गई। कुछ कहते थे—सरकार से डरो और विभूति दे दो। कुछ कहते थे—विभूति कदापि न दी जाए, सरकार हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

जागरी ने उठकर नारा लगाया

'जय विभूति ! जय आड़ानी !'

लोगों की आँखें मंच से हटकर विभूति पर जम गईं।

मन्त्री महोदय हाथ जोड़कर बोले

'सज्जनो, यह बात आप दिल से निकाल दें कि इस आपकी इच्छा के बिना विभूति ले जाना चाहेंगे।'

पुरी यात्रा से लौटे कोई साधु बाबा भी भुवनेश्वर से आकर भीड़ में आ घुसा था। उसने तरंग में आकर यह बोल सुनाया

माया जोर कहे मैं ठाकुर।
माया गए कहाव चाकर।
माया त्याग होय जो दानी।
कहि गोरख ताको अभिमानी।

पास वाले लोग हँस पडे 'वाह वावा ! धय है गारग-वाणी !'

किसी ने कहा, 'पर दानी को ता अभिमानी वताया है।

वधजी मच पर खडे अपनी निखा को गाँठ देते हुए कह रहे थे, 'विद्या से नम्रता आती है। शास्त्र म कहा गया है, जहाँ रूप है वहीं शील है—यतो रूपम् तत शीलम्! मैं तो मन्त्री महोदय का रूप और शील देखकर मुग्ध हो गया। यह आजादी का युग है। पुलिस हमारी रक्षा के लिए है हम डराने के लिए नहीं। मन्त्री महादय स्वय कह चुके हैं कि सरकार की यह इच्छा कदापि नहीं है कि हमारी इच्छा के विपरीत त्रिमूर्ति को चट्टान से काटकर दिल्ली भज दें।

जागरी ने नारा लगाया

जय त्रिमूर्ति! जय आजादी!"

लगता था, भीड अपने ही कमल पर तुली हुई है। लाग बार-बार 'जय त्रिमूर्ति' का नारा लगाने लगते। फतूही की जुएँ मारने वाला बूढा अपने साथी से कहे जा रहा था, जानते हो, छाया पुरुष की सिद्धि कैसे करते हैं? हर रोज सूरज की ओर पीठ करके खडे हाकर अपनी छाया को ध्यान से देखना चाहिए। फिर सूरज की ओर घूमकर देखा। गगन पर तुम्हे अपनी बडी छाया दीखेगी। उस छाया का जो भी अग खण्डित हो उसी म रोग का प्रवेश समझ लो। पीछे स किसी ने कहा, 'छाया पुरुष की सिद्धि की ऐसी की-तैसी! बाबा क्या इस पान के लिए यही मुहूर्त हाथ लगा?

मच से उठकर नीलकण्ठ ने कहा भाइयो और बहनो, आप देख रहे हैं। गहरे नील गगन पर बादलो के सफेद टुकडे हाथियो की तरह सूड उठा उठाकर मानो पचायत को प्रणाम कर रहे हैं' और फिर मच से कोई आवाज न आई।

किसी ने ऊँचे स्वर म कहा

च क्या नहीं बोलते?

ता था पच जन-समूह से डर-सहम बठे हैं।

पतूरी की जुएँ मारने वाले बूढ़े ने एक जूँ को अपने अँगूठे के नाखून पर रखकर दूसरे अँगूठे के नाखून से उसके प्राण हरते हुए कहा, 'दाँत के काटे में कोई कम नहीं? जबड़े तक को मसल कर गलता है। इस तो जूँ की तरह पकड़ना कठिन है। और फिर उसने पत्तों की ओर आँखें उठाकर कहा "आज इन लोगों की बुद्धि किस वृन्दावन में घास चरने चली गई? इतनी-सी बात और इतना चक्कर! ये लोग तो एक भी जूँ न पकड़ सके! वह स्वयं ही हँस पड़ा। पीपल के पत्ते भी मानो तालियाँ बजाकर हँसने लगे।

किसी ने कहा — अगर बाबा चतुर्भुज होते तो त्रिमूर्ति कहीं न जाती।

"अब भी कहीं नहीं जाएगी त्रिमूर्ति!" किसी ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा।

"नीलकण्ठ क्यों चुप है? क्यों नहीं साफ़-साफ़ कह देता कि त्रिमूर्ति यहीं रहेगी, इसी पागुरिया नगरी में?"

जुएँ मारने वाला बूढ़ा आँखों पर ऐनक लगाए बैठा था। एक ओर की कमानी टूट गई थी। वह रस्सी बाँधकर काम चला रहा था। वह बोला, "यह ऐनक चतुर्भुज बाबा की निशानी है। उन्होंने भेंट की थी। मालाधर दादा के सामने की बात है। अब तो मालाधर दादा नहीं रहे।"

'बाबा क्या और तुम्हारा नम्बर कम मिल गया?' किसी ने पूछ लिया।

इस पर पास वाले लोग हँस दिए। किसी ने कहा — 'दान में पहले यह ऐनक मुझे भेंट करते जाना बाबा!'

जुएँ मारने वाला बूढ़ा बोला, 'अच्छा अच्छा, पहले बात सुनो। चतुर्भुज दादा यही कहा करते थे—आज़ादी मिलने के बाद हम लन्दन से अपनी मूर्तियाँ वापस लाएँगे, जिन्हें अंग्रेज़ ज़ोर-ज़बरदस्ती उठा ले गए। अब यह त्रिमूर्ति उठाई जा रही है। फिर कहा जाता है हम आज़ाद हैं!"

साधु बाबा कह रहे थे, किसी गाँव भर ले गई नहीं न धनिया नीर!

किसी ने कहा, "बाबाजी आप भी डुबकी लगाइए दया नदी में !"
जागरी ने नारा लगाया, 'जय त्रिमूर्ति ! जय आजादी !"

लगता था, इस नाटक का नायक जागरी है। उसने मंच पर आकर कहा पंच क्यों नहीं बोलते कि उन्होंने क्या फैसला किया ?

मन्त्री महोदय अलवीरा के साथ गप लगा रहे थे, जैसे वे यहाँ इसी के लिए आये हों।

दिल्ली से आने वाले अधिकारी ने नीलकण्ठ की बगल में उठकर कहा 'भाइयो और बहनो, नीलकण्ठ ने विष पान करते हुए महादेव की भंगिमा बहुत ही सुन्दर दरसाई है। वंम ब्रह्मा और विष्णु की भंगिमा भी त्रिमूर्ति के अनुरूप है।

दिल्ली के अधिकारी को अपनी बात बीच में ही समाप्त कर देनी पड़ी क्योंकि श्रोताओं में से किसी ने उठकर कहा 'हमें यह स्कुर सुहानी नहीं चाहिए। आप अपना भाषण बन्द कर दें।

पंचों ने मन्त्री महोदय का ध्यान खींचते हुए कहा 'मामला बड़ा ही टेढ़ा है। आप अलवीरा से प्रार्थना करें कि वह जनता को अपने विचार बताए।'

मन्त्री महोदय ने मंच से घोषणा की 'अब आपके सम्मुख अलवीरा स्वी अपने विचार रखेंगी। और श्रोताओं ने तालियाँ बजाकर इस घोषणा का स्वागत किया। मन्त्री महोदय ने साफ साफ कह दिया 'सरकार की ओर से मैं यह कहता हूँ कि उनकी सलाह हम सिर आँखों पर रखेंगे। आप लोगों को भी उनके विचार रुचिकर प्रतीत होंगे।

लोगों की तालियों के बीच अलवीरा उठकर खड़ी हुई।

डाई वट्टी से काम करने वाला माइक्रोफोन खराब हो गया था। इस बीच उसे भी ठीक कर लिया गया था।

अलवीरा ने गूंजदार आवाज में कहना शुरू किया

'माननीय मन्त्री महोदय, धौली के पंच परमेश्वर और सज्जनो ! मेरे लिए यह बहुत बड़ा सम्मान है सरकार और जनता दोनों की ओर

श्रौर अलवीरा की आवाज़ ढार म डुबकी लगाकर उभरा

"हाँ, तो मैं कह रही थी, यह त्रिमूर्ति यहीं रहनी चाहिए। जम अश्वत्थामा पर अंकित सम्राट अशाक की राजाना यहाँ है श्रौर उस शिला पर बना हाथी मुख भी धौली को महिमाशालिनी बनाता या रहा है। जसे भुवनेश्वर की अनेक मूर्तियाँ भुवनेश्वर म हैं जस कोणाक का भग्न सूय मंदिर कोणाक में है श्रौर किसी भी सरकार स यह आशा नहीं की जा सकती कि वह उन्हें ।

"झगडा व्यथ है। झगडा हम नहीं हान देंगे। गाव मुखिया वर्गी न जब पिछले साल दिल्ली म गणतन्त्र दिवस के अवसर पर सरकार को यह पत्र लिखकर दिया कि हम अपनी त्रिमूर्ति नेशनल म्यूज़ियम म देने को तयार हैं, तो यह उनका अपना मत था। पर सरकार को सोचना होगा कि आज जितने लोग उसके विरोध म यहाँ एकत्रित हुए हैं, उनकी भावना श्रौर श्रद्धा को ठुकराकर त्रिमूर्ति को चट्टान म काटकर कस ले जाया जा सकता है?

"इसलिए मैं कहती हूँ कि त्रिमूर्ति यहीं रहनी चाहिए क्योंकि नेशनल म्यूज़ियम म तो इसकी अनुकृति या इसका माडल भी रखा जा सकता है।'

जन-समूह क जय घोष के बीच अलवीरा का भाषण समाप्त हुआ।

जन-समूह की श्रौर से माँग की जाने लगी कि नीलकण्ठ भी अपने विचार अवश्य बताए।

मन्त्री महोदय न घोषणा की, "अब आपके सम्मुख मूर्तिकार नीलकण्ठ आ रहे हैं।"

नीलकण्ठ न उठकर जन-समूह की तालियों के बीच म कहना आरम्भ किया

"सज्जनो, मैं त्रिमूर्ति के तीन मूर्तिकारों म से एक न होता तो अपने विचार अलवीरा के समान धारा प्रवाहमयी भाषा म व्यक्त कर सकता। आप विश्वास रखें। जो मैंने कहना था वह भी अलवीरा ने कह

और अलवीरा की आवाज ज्वार में डुबकी लगाकर उभरी

'हाँ, तो मैं कह रही थी, यह त्रिमूर्ति यहीं रहनी चाहिए। जम अश्वत्थामा पर अंकित सम्राट अशोक की राजाज्ञा यहाँ है और उस शिला पर बना हाथी मुख भी धौली को महिमामण्डित बनाता आ रहा है। जैसे भुवनेश्वर की अनेक मूर्तियाँ भुवनेश्वर में हैं जैसे कोणार्क का भग्न सूर्य मन्दिर कोणार्क में है और किसी भी सरकार से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह उन्हें ।

"झगड़ा व्यर्थ है। झगड़ा हम नहीं होने देंगे। गाँव मुखिया वर्मा ने जब पिछले साल दिल्ली में गणतन्त्र दिवस के अवसर पर सरकार को यह पत्र लिखकर दिया कि हम अपनी त्रिमूर्ति नेशनल म्यूजियम में देने को तैयार हैं तो यह उनका अपना मत था। पर सरकार को सोचना होगा कि आज जितने लोग उसके विरोध में यहाँ एकत्रित हुए हैं उनकी भावना और श्रद्धा को ठुकराकर त्रिमूर्ति को चट्टान से काटकर कैसे ले जाया जा सकता है ?

"इसलिए मैं कहती हूँ कि त्रिमूर्ति यहीं रहनी चाहिए क्योंकि नेशनल म्यूजियम में तो इसकी अनुकृति या इसका मॉडल भी रखा जा सकता है।

जन-समूह के जय घोष के बीच अलवीरा का भाषण समाप्त हुआ।

जन-समूह की ओर से माँग की जाने लगी कि नीलकण्ठ भी अपने विचार अवश्य बताएँ।

मन्त्री महोदय ने घोषणा की अब आपके सम्मुख मूर्तिकार नीलकण्ठ आ रहे हैं।

नीलकण्ठ ने उठकर जन-समूह की तालियों के बीच में कहना आरम्भ किया

"सज्जनो, मैं त्रिमूर्ति के तीन मूर्तिकारों में से एक न होता तो अपने विचार अलवीरा के समान धारा प्रवाहमयी भाषा में व्यक्त कर सकता था। आप विश्वास रखें। जो मैंने कहना था वह भी अलवीरा ने कह



धौली म खुशी की लहर दौड गइ जस काई दव वरदान प्राप्त हो गया हो।

पर नीलकण्ठ की नौकरी चला जान का दु ख तो त्रिमूर्ति क रह जान स भी कम न हुआ।

गाँव वाले प्रसन्न थ कि मन्त्री महोदय और दिल्ली का अधिकारी अपना-सा मुँह लेकर चल गए। पुलिस भी जसे आयी, वापस हो गई। बन्ना के दिल की बात दिल ही म रह गई।

'एमी भूल फिर मत करना ' जागरी बन्नी को राह चलते राककर कहता, 'त्रिमूर्ति म तो धौली के प्राण बसत हैं। एसा विचार फिर कभी मन म न लाना। त्रिमूर्ति चली जाती तो दादी के प्राण पखेरू उड जाते।

"पचायत म आने स तो दादी न इन्कार कर दिया था।' बन्नी पटू बचान की कोशिश करता।

"दादी को तुम जान नहा सक। मैं ता गन्ना दादी के सत्य वचन सुनता रहता हू।

वदजी न त्रिमूर्ति रह जान की खुशी म गाँव म मिठाई बँटवाई, जसे धौली की कथा म अछूता अचुम्बित स्वर जाग रहा हो। जस त्रिमूर्ति के

मूर्तिकारों का काम भी स्थगित होकर धातुविद्या वालों में चलने लगा था। जैन धर्म के प्रभाव से उन कलि-कथा को उकेरने में लगता था। बदले राजा के हाथ में रुका का मुखिया होकर कहते, 'क्या फिर कभी कला मत नहीं करता। कहीं भी ऐसा कर दो।

ऐसा प्रतीत होता था कि सबका ध्यान पकड़ धोबी की कथा बढ़ रहा है जैसे घृणा और व्यंग्य के लिए उसमें कोई स्थान न हो। विभूति रह गई। धोबी ऐसा म कृतार्थ है। जहाँ निरक्षर मूढ़ है, बनता रह। अब विभूति यहीं कह रहा हो। विभूति यहीं रहेगी धारा की कथा में बाद वाली कोई निशानी रहेगी।

कथा में तो स्वरूप का नाम भी जुड़ गया। उसने गुरुदेव का अपना सुना नहीं झेल लिया। नौकरी की बात उसे छू भी नहीं सकी।

"तू बड़ा जिद्दी है, स्वरूप!" दादी ने कहा, "तू नौकरी करने बाहर नहीं जाएगा।"

"अब तो नीलकण्ठ बाबा भी यहीं आ गये दादी! गुरुदेव की मूर्ति-शाला के दिन फिरने वाले हैं।"

"मतलब! उस पद ध्यान देना बेटा।" दीनानाथ मूढ़ से हँस पड़ी। और फिर दादी ने गम्भीर होकर कहा, "नौकरी करनी हो तो बाहर रह, नहीं तो धोबी बनकर रह।"

'वह जरूर आयेगा, माँ!'

"मैं कब कहती हूँ न आये? मैंने तो उसे बहुत समझाया कि घर आ जाना। वह क्या यह नहीं जानता कि मुझे उसके बाबा दिखायी दे जाते हैं और उनकी यही आवाज मेरे कान में पड़ती है—नौकरी के लिए घर से बाहर जाए!'

'नहीं बाबा का भला होगा दादी!'

मैंने सोचा था जाऊँ तो मैं मुझे पहले ही भगवान् के पास जाऊँ। वह तो भी आए, पर सलाह नहीं मानता होगा। मैंने कहा कुछ दिन स्वयं को ही घर का मर्म पास। नौकरी तो मान भी जाता पर कलाकारों में

थे आदिकाल म। राजा था बडा भाई, प्रजा छोटा भाई। दोनो भाइयो को घुडसवारी का शौक था। पर घोडा तो एक ही था। एक दिन बडा भाइ घोडे को टाँकने के लिए गाछ की टहनी तोडने गया, और इतने म छोटा भाई घोडे पर सवार होकर हवा हो गया। उस दिन स छोटा भाई राजा बन गया और बड भाई को प्रजा बनना पडा। बडे भाई न छोटे भाई का अपराध क्षमा कर दिया। कथा यही कहती आयी ह।

पर श्यामली जानती है क्षमा इतना सहज नहा। उसने मूर्तिकला के माध्यम स यही कथा कहने का यत्न किया है। बडे भाई के मुख पर विद्रोह का भाव दिखाकर उसने कला का हक अदा किया है। घोडे की भगिमा को सबने सराहा है, जसे कागाक का घोडा भी उसके सामने पानी भर सकता हो।

वेष भूषा मूर्ति म प्राणो का सचार करती है या कुध-सस्कारो की युग भाषा ? मन ही मन श्यामली विचार करती है। नाम कमाने की बात पीछे छूट जाती है। कला दौड लगाती है अधकार म प्रकाश की ओर। उपनिषद् के ऋषि ने प्रार्थना की थी—तमसो मा ज्योतिगमय ! मृत्यु स अमृत की ओर चलता है मूर्तिकार की छेनी। उपनिषद् के ऋषि ने कहा था—मृत्योर्मा अमृतगमय ! कला की महिमा छलछलाती है। धरती माता की पूजा। दुड म-दुड म बाजे ढोल। धम देवता। हाट बाजार। घर देवता। वन-देवता। अतिथि का स्वागत। व्रत पव का नाच। काँवर। मोर का शिकार। ये प्रसग पत्थर पर उतर आए।

अपूर्व जानता है आत्महत्या की बात कभी कध क गले नही उतरती। क्यो श्यामली ! यह ठीक है न कि जिसकी पत्नी को बाघ खा जाए, वह एसी विधवा स विवाह कर सकता है, जिसक पति को बाघ खा गया हो ? अपूर्व पूछ बठता है। श्यामली गम्भीर होकर उत्तर देती है, यही बात है।

श्यामली को गाँव की याद सताने लगती है, जसे चट्टानो के उस पार मार आपस म बातें कर रहे हो। जो मर गया वह तो मानो नमक

लादन चला गया'। विवाह के लिए रात के अँधेरे में ही पानी भरकर लाना है 'निमाणी' [पुरोहित]। पानी भरते समय जब कोई स्पर्श ले तो पानी अपवित्र हो जाता है। पशु तो पशु, चिड़िया भी पानी में चोंच डाल दे तो उस घाट का पानी विवाह में काम नहीं देता। न धरती माता मानती हैं न धर्म-देवता स्पर्श लेते हैं। जितने प्रेतात्मा काया छोड़कर छाया बन गए—पुरखा थे वे सब इसी कथ देश में ही घूमते हैं। उनके रक्त में बह रही है यह कथा। इसका पता रखते हैं कि कथ लोग अपने आत्मीयों और संस्कारों पर ठीक ठीक चल रहे हैं या नहीं। दुलहन का घाट पर ले जाकर गाँव की बहू-बेटियाँ प्रत्येक देवी-देवता को यह सुखद समाचार सुनाती हैं। विवाह में बारातियों का 'बन्दर पानी' क त नहीं कहा जाता है। गोल-गोल चक्करदार घुमावों में विवाह-नाच होता है।

कथ देश की याद आती है। यहाँ की कन्याएँ आज भी पनघट देखकर द्वार पर हिरनियों की तरह कुलाँचें भरती होंगी। वे सखियों के संग आम चुनने जाती होंगी। पर जंगल तो सिमिट रहा है। तब तो पहाड़ गंजे हो जाएँगे। बचपन की कितनी सखियाँ नमक लादन चली गईं। कथा उन्हीं फिरती है जस ममल की गई। कथा संकेत करती है, जैसे पाल बाँस बीच हवा गुनगुनाये। घर-देवता घर की कथा कहेंगे, वन-देवता वन की। उनकी पूजा करने का मतलब। साझा सिलाग्रा। भूरा-भूरा दो पाँतों बीच गाँव के घर। कितने घर कितने मन कथा के कितने पात्र। झरने का जल आरती बन जाता था। वन-पर्वत की कथी दोपहरी। वह हवा बड़ी मीठी लगती होगी अब भी। कथ देश की यही रीति है। लाल मिर्च बाँधकर गाँव-गाँव सरकार की खबर पहुँचाते हैं। अमुक पर्वत की गेंज मटना होगा। नूतन गाथ लगेंगे। ढोल पर चलती है खबर।

सरकारी हुक्म के संग आती है बाहर की कथा। कथ उसे भी सुनते हैं। पर बाहर की कथा कहाँ टिक पाएगी? यहाँ वन-देवता घर-देवता, सब एक विनती सुनते हैं।—संकट न आवे, हम बचे रहें। फिर



अन्नदा बाबू का विचार है कि कोइली की कविता में उड़िया भाषा महिमामयी हो उठी है।

'बात पूरी करने का उपाय नहीं है। शब्द खाली अर्थ के ही तो वाचक नहीं हैं। शब्द तो स्वयं आँसू या मुस्कान बनकर अपनी कथा कहते हैं।' कोइली ने बात चलाई।

'क्या की आग तुम्हारी कविता को भी लग गई।' अन्नदा बाबू ने चतुर्मुख म्यूज़ियम की मूर्तियाँ देखते देखते कहा, "वह किसी ने कहा है न, अच्छी कविता हमें अपना अर्थ बताने से पहले हम तक पहुँचती है और अपने स्पन्दन द्वारा हमें अभिभूत कर देती है।'

'यह तो मैं भी मानती हूँ अन्नदा बाबू!' कोइली मुस्करायी, 'जब मैं धरा से रौंदी हुई घास की पत्तियों की बात कहती हूँ, तो शब्द नहीं घास की पत्तियाँ ही पेश करती हूँ। गगन के नील विस्मय की अचुम्बित कथा कहते समय शब्द नहीं, मैं स्वयं गगन की नीलिमा घोलती हूँ।'

'तुम बहुत शीघ्र सोचती हो कोइली! मूर्तियाँ देखो। बाबा ने सोचा भी न होगा कि कलकत्ते में प्रदर्शनी होगी और फिर कटक में चतुर्मुख म्यूज़ियम बनेगा। राजा साहब को यह काम करने की प्रेरणा

कुन्तल ने दी।

'शायद कुन्तल का विवाह अन्तराल में हुआ होगा।

महाराजकुमार सूयदेव क्या उसके लिए अच्छे पति सिद्ध नहीं हुए?

'इसका उत्तर तो कुन्तल ही दे सकती है।

'कई बार ऐसा होता है कि हमारा आदर्श नीचे गिरकर चकनाचूर हुई मूर्ति की तरह टूट जाता है। तुम अपनी बात भी सोचो जरा। अब शायद हरिपद बाबू को वकालत में अवकाश नहीं। क्या उन्होंने कभी पूछा तुम्हारी कविता कहाँ रहती है? उधर अपूर्व को लो वह श्यामली की प्रत्येक मूर्ति में देख लेता है। जिस पीढ़ पर श्यामली जा बैठी थी उस पर तुमने बैठने की बात सोची था। क्या कभी वह याद नहीं कचोटती?

क्यों नहीं? वह क्या मैं कविता में कहती हूँ।

'शायद इसीलिए हरिपद बाबू को उसमें रस नहीं आता।

'यह बात तो नहीं। काइली ने पहलू बचाना चाहा 'हर आदमी कविता को समझता भी तो नहीं।

कवि का काम लोगों की रुचि बदलना भी तो है। और यह काम वह एक क्रान्तिकारी की तरह करता है। शब्द और अनुभूति ही उसके हथियार होते हैं। तुम्हारी कविता में कुन्तल का रस आता है या नहीं? पहले यह बताओ कि महाराजकुमार सूयदेव और कुन्तल की गाड़ी कैसी चल रही है?

देखने में ठीक ही मालूम होता है।

कविता में तुम अपूर्व को याद करती हो। कुन्तल भी कभी अन्तराल के लिए रोती होगी?

काइली ने गम्भीर होकर कहा महाराजकुमार को सब जानते हैं। फिर भी वे कुन्तल को अन्तराल से मिलने से रोकते नहीं। पर अन्तराल स्वयं ही कभी काट तो कुन्तल क्या करे?

हरिपद बाबू भी तो तुम्हें अपूर्व से मिलने से रोकते नहीं। पर अपूर्व

जसे तुम्हे पहचानता ही न हो। जसे गुरू हो स वह श्यामली के लिए ही बना हो। पर धन्य है श्यामली जो एक ही समय अपूर्व और नील म सन्तुलन बनाये रखना चाहती है।

कोम्ली बोली, 'अपनी भी कहो न ! तुमने मेरी कविता का अनुवाद करते-करते मेरे मन म पहुँचने की सुरग ढूढ ली। क्या मैं ठीक नहीं कहती ?' और इस पर दोनो हँस पडे।

"लन्दन से मेरी कविताओ का अनुवाद छपकर आने म अब क्या देर है अन्नदा बाबू ?"

'पुस्तक छप गई। अब आती ही होगी।



नीलकण्ठ मन्त्री महोदय के स्वेच्छाचार का पात्र बन गया। बाबा की आवाज़ मन के भीतर हिलती प्रतीत होती—मैंने कब चाहा था, नील, कि तुम नौकरी करो? वह मन-ही-मन कहता—बाबा, अब मैं नौकरी नहीं करूँगा।

किसी किसी दिन वह घण्टों चतुर्भुज म्यूज़ियम में बैठा रहता और क्यूरेटर के साथ मिलकर मूर्तियों को सजाने के निमित्त एक जगह से दूसरी जगह सरकाने-बदलने की सलाह देता रहता।

कभी वह वन-प्रदेश की यात्रा पर निकल जाता, और कभी कोणार्क में पड़ा रहता, जैसे कटक की छाया से बचने का यही उपाय हो सकता हो। कटक में राह चलते मित्र उसे रोककर प्रायः यही प्रश्न किया करते—'आजकल क्या कर रहे हैं?'

कुछ दिन से यह खबर गरम थी कि चतुर्भुज म्यूज़ियम का प्रबन्ध सरकार पूरी तरह अपने हाथों में ले रही है। यह खबर सच निकली। म्यूज़ियम में अनन्तराम क्यूरेटर बनकर आ गया।

अनन्तराम की इस पद के लिए नियुक्ति में कोइली का बहुत हाथ था।

जब से कोइली की कविताओं का अंग्रेज़ी संस्करण लन्दन से छपकर आया था, अनन्त बाबू और कोइली को मन्त्री महोदय कई बार रात के

खाने पर बुला चुके थे। भले ही वे दोबारा श्यामली की जगह नीलकण्ठ को आर्ट स्कूल का प्रिंसिपल बनाने को तैयार न थे पर अपने स्वेच्छाचार पर परदा डालने की दृष्टि से व वस्तुमुख म्यूज़ियम के क्यूरेटर के रूप में नीलकण्ठ को पहले वेतन पर लेने को तैयार हो गए। नीलकण्ठ ने लिख भेजा 'अब मैं नौकरी करना ही नहीं चाहता।' फिर कोइली की राय से यह निश्चय किया गया कि अन्तराल की सेवाएँ टूरिस्ट विभाग से म्यूज़ियम में बदल दी जाएँ। यह थी अन्तराल के क्यूरेटर बनाने की कथा।

कमे कुछ लोग यह खबर उड़ा रहे थे कि अन्तराल की नई नियुक्ति में कुन्तल का हाथ है।

फिर यह भेद खुलने में भी देर न लगी कि श्यामली भीतर-ही भीतर कोइली से आग्रह करती रही थी कि क्यूरेटर के रूप में अपूर्व की नियुक्ति हो जाए।

महाराजकुमार सूर्यदेव और कुन्तल ने एक दिन नीलकण्ठ को साथ लिया और म्यूज़ियम पहुँचकर अन्तराल को बधाई दी। इतने वर्षों बाद इतने निकट से कुन्तल को देखकर अन्तराल अकूल विस्मय में डूब गया।

अब तो कुन्तल ने यही नियम बना लिया कि नीलकण्ठ को साथ लेकर वह म्यूज़ियम पहुँच जाती और अन्तराल से आलाप करते समय वर्षों की खाई को पाटने लगती।

'प्रेम, सुख, शान्ति, यह सब किसे नहीं चाहिए ?' एक दिन कुन्तल ने मुस्कराकर कहा।

'मैं सोचता था तुमने मुझे भुला दिया होगा, कुन्तल !' अन्तराल चुप न रह सका।

'क्या तुम्हें उस क्षण की याद है जब पहली बार कोणार्क में हमारा परिचय हुआ था ?' कुन्तल ने पूछ लिया।

पास से नीलकण्ठ ने कहा, 'कोणार्क में जिनका प्रथम परिचय हुआ, उनकी महिमा कोई कैसे बखानेगा ?'

'आप बखानिए न !' कुन्तल हँस पड़ी और फिर गम्भीर होकर

बोली "इतने वर्ष बीत गए पर लगता है वह क्षण आज भी वहीं रुका है।

'तो हारी हुई बाजी अब जीत लो न।' नीलकण्ठ ने गम्भीर स्वर कहा, 'बाबा की मूर्तियाँ हमारी बातें नहीं सुन सकतीं।' 'पर बाबा की आत्मा यहीं कहीं डोल रही होगी। बाबा सब देख रहे हैं सब सुन रहे हैं।'

'तब तो ढेंडी की आत्मा भी यहीं कहीं डोल रही होगी। कुन्तल ने मुस्कराकर कहा 'ढेंडी तो बाबा की कला के प्रशंसक थे और मम्मी...'

और मम्मी अन्तराल को वट से बढ़कर मानती थी। नीलकण्ठ ने जब कुन्तल की दुखती रग पर हाथ रख दिया।

अन्तराल ने कहा, 'अब इन बातों में क्या रखा है? कभी कोणार्क चलिए न।'

'अवश्य।' कुन्तल जैसे इसी सुझाव की प्रतीक्षा में इतने दिन से कुसुम म्यूज़ियम आती रही हो।

'मैं स्वयं यही सोच रहा था।' नीलकण्ठ ने मुग्ध स्वर में कहा 'कोणार्क की अवाक् गरिमा शत-शत स्नेह-कथाओं के साथ कहनी आई है।

उस दिन घर जाकर कुन्तल घण्टों उदास रही। बैठी सोचती रही, किसी को भूल जाना सहज नहीं। यह याद जी के साथ चलेगी। हम करना क्या चाहते हैं कर कुछ और हो बैठते हैं। मैं तो तुम्हें कभी इतना सुखी न कर पाता। अन्तराल के मुख पर मानो यही बात लिखी थी। कोई पूछे पिछली बातें कैसे भुला दी जाएँ? आदमी पत्थर नहीं है। पत्थर को तो किसी से भेंट नहीं करनी होती। पत्थर को प्यार नहीं करना होता। महाराजकुमार की तरह गुस्से में लाल-पीला नहीं होता पत्थर न शराब पीकर गाली देता है। फिर भी वह तो ये ही कहते रहे—तुम अन्तराल से अच्छे हो महाराजकुमार। नहीं। हाय रे यह बाधा न होने की घोषणा भी तो काँटे-सी चुभती है। समय के साथ कितने बदल गए महाराजकुमार। राजा नहीं एम० एल० ए०—मम्बर ऑफ़ लेजिस्लेटिव असेम्बली। फिर भी दिमाग़ में यह

बात नहीं जाती कि उनकी रगों में सूर्यवंशी रक्त बहता है और वे राजा न होकर भी उड़ीसा सरकार के किसी मन्त्री महोदय से कहीं अधिक गौरव रखते हैं। आगे से हमेशा यही सुनना चाहते हैं—हुक्म कीजिए हुज़ूर ! जैसे आज भी उनकी आवाज सुनकर धरती काँप उठती हो। मैं समझाता हूँ—समय के साथ बदलना ही ठीक है। इसमें क्या लाभ कि कल अमुक मन्त्री महोदय का मज़ाक उड़ा रहे थे, आज अमुक मन्त्री महोदय का !

कुन्तल जानती है कि महाराजकुमार को उस नर्तकी की कथा प्रिय है, जो नाचते-नाचते दाँत से सोने की मुहर उठा लेती थी।

कुन्तल कहती है शराब छोड़ दो।

महाराजकुमार उत्तर देते हैं यही तो वह सीढ़ी है, जिस पर चढ़कर पुरानी यादों की दहलीज तक पहुंचा जा सकता है। तुम्हारा मतलब है एकदम पत्थर बन जाऊँ ?

महाराजकुमार के इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाती, कुन्तल। कपड़े-लत्ते की कमी नहीं। अच्छे से अच्छा भोजन स्वयं तो क्या छोड़ेंगे, महाराजकुमार तो कुन्तल को भी शराब पीने को कहते हैं। बहुत ज़िद करते हैं 'एक पेग ले लो।

नशा चढ़ने के साथ दिमाग और तरह काम करने लगता है। मदहोश होने पर स्वर और भी बदल जाता है।

'यह अच्छी चीज नहीं।"

महाराजकुमार कहते हैं, इस सुधा-पान में तो स्वर्ग की उर्वशी भी न बची होगी।'

होश में रहने पर महाराजकुमार कहते हैं 'सुधा-पान के बाद भी रास्ते सूझते हैं। तब मालूम होता है, आदमी पत्थर नहीं है मन की खिड़की खुल जाती है।'

नशे में झूमकर महाराजकुमार कहते हैं 'मैं तो आज भी राजा हूँ कुन्तल ! तुम अपने को पहचानो। तुम तो स्वर्ग की उर्वशी हो, डार्लिंग ! आज तो तुम भी धुत हो जाओ। मुझे पत्थर की उर्वशी नहीं चाहिए"

अगले दिन रात की बातें याद नहीं रहतीं। कुन्तल याद दिलाती है तो मुस्कराकर रह जाते हैं महाराजकुमार सूर्यदेव एम० एल० ए०।

नशे में अन्तराल की बात भी ले बैठते हैं। कभी महिमा, कभी निन्दा। उनके मन का भेद नहीं मिलता। मुझे विश्वास था एक शब्द का।

चतुर्मुख म्यूज़ियम में कुन्तल का मन रमता है। पर क्या ये मुलाकातें अमृत की बूंद बन सकती हैं?

"तो फिर किस दिन चल रहे हो कोणार्क?" कुन्तल ने शीशे के पेपर-वेट से खेलते हुए कहा।

'किसी दिन भी चलो।' अन्तराल की आँखों में मूर्च्छित-सा हर्ष तिर उठा।

कुन्तल की मखमली कलाइयों पर कांच की चूड़ियाँ बज उठीं।

कुन्तल ने मुस्कराकर पूछा, 'तेरहवीं शताब्दी में कोणार्क का मन्दिर बनाने में क्या बारह सौ कारीगरों को बारह साल लग गए थे? यह बारह का हिसाब भी विचित्र है। बारह सौ कारीगर और बारह साल का समय!'

कुन्तल का प्रश्न अनजान नाव-सा बह गया। 'तो फिर कब चला जाए कोणार्क?' अन्तराल ने पूछ लिया।



कई दिन की प्रतीक्षा के बाद कोणार्क का कार्यक्रम बना। अन्तराल ने नीलकण्ठ का साथ लेना आवश्यक समझा। कोणार्क के भव्य मंदिर की ओर निहारते हुए नीलकण्ठ ने कहा 'पेट की आग पत्थर छीले, आत्मा की हूक देवता को भाव दे पर प्राणों के सत्य की प्रतिष्ठा होगी ही।'

'वहाँ तो जीवन का सम्पूर्ण रूप है।' कुन्तल मुस्करायी।

नीलकण्ठ ने कहा, 'कोणार्क की पहली यात्रा मैंने पुरी से बैलगाडी पर की थी। फिर तो भुवनेश्वर से बस पर कई बार आया। इस बार कुन्तल साथ है नहीं तो खाक मजा न आता अन्तराल!'

अन्तराल ने उत्तर दिया, 'जब मैं टूरिस्ट विभाग में था, तो जाने कितनी बार यात्रियों के साथ कोणार्क आने का अवसर मिला।'

'मूर्तियाँ दिखाते-बताते तुम अनेक कहानियाँ सुना जाते होंगे, जस यात्रियों के लिए वे भी जरूरी हैं। तुम रसिक और 'बोन' गाइड हो अन्तराल! भले ही अब तुम म्यूजियम के क्यूरेटर हो।' कुन्तल खिल खिलाकर हँस पड़ी।

कुन्तल के मुँह से रसिक और बोन गाइड की उपाधियाँ सुनकर अन्तराल झूम उठा। वाला नौकरी का मामला था। लोग आ जाते

भौर मैं गाइड बन जाना।

'काणाक' मान यानी मड़क ता मुग सूर्य रहना है। मान की बूड़िया के साथ कुन्तल का हँसी बज उठा। वह कन्नी गई काणाक की एक ही सीख है कि हम प्यार क लिए बन हैं। यही बताया करम ाग तुम यात्रियों का।

अन्तराल न गम्भीर मुद्रा म कहा नर-नारी का जान प्रादिकाल चला आया है। काणाक क पत्थर पुकार-पुकारकर यही बात बार रहे हैं।

व काणाक पहुँचे ता दापहर ढल चुका था। सवर ही चल थ। रास्त में कई जगह रुकना पड़ा। पाछे स आन वाल किसी बड़े नता की कार गुजरन वाली थी। सडक पर ही कई जगह भीड़ के सम्मुख राष्ट्रीय नता न भाषण दना था। इस बाधा के कारण उन्हें रास्त म तीन घण्ट स अधिक दर हुई। नेता के साथ उड़ीसा सरकार क एक मन्त्री महादय भी यात्रा कर रह थे। व ऐसा महानुभाव अभी तक काणाक नहीं पहुँचे थ।

अन्तराल न मन्दिर क एक कान मे लम्बे केशा वाले यात्री की मूर्ति दिखायी और हँसकर कहा, 'यात्री की दाढ़ी कुछ कम लम्बी नहीं।

"पास ही नारी भी खड़ी है।' नीलकण्ठ चुप न रह सका।

वही सनातन नर-नारी का जान। कुन्तल खिलखिलाकर हँस पड़ी। फिर थोड़ी खामोशी के बाद उसने माथे पर आई लट का हाथ स हटाते हुए कहा "नील तुम किस सोच म डूब गए?

नीलकण्ठ न पीछे की ओर सकेत किया। एक युवक एक युवती का घाटा ले रहा था।

अन्तराल बोला चलो ऊपर चलें। ऊपर स सागर दिखायी दगा। अस्त होते सूर्य की मूर्ति भी दखेंगे।

मूर्तिकार ने सूर्यदेव क मुख पर थकान का भाव पूरी तरह उभार या है। कुन्तल न माथे पर हाथ रखकर कहा।

"और सूर्यदेव का घोड़ा भी लगता है जसे थक गया है।' अन्तराल

ने थाप लगाई ।

वे ऊपर चले तो नीलकण्ठ ने पीछे की ओर देखकर कहा, "वह युवक उस युवती को लिये ऊपर आ रहा है ।'

अन्तराल ने ध्यान से उसे देखा फिर सहसा बोला "इससे कहीं अधिक सुन्दर थी कुन्तल उस समय !'

कुन्तल की हँसी चूड़ियों की झंकार में खो गई।

वे ऊपर की ओर बढ़ते गए । 'नीचे मंदिर के आँगन में खड़े यात्री कितने छोटे छोटे लग रहे हैं ! कुन्तल चुप न रह सकी, "मैं भी इसी तरह मंदिर देखने आयी थी।' उसने एक बार नर-नारी की युगल मूर्ति देखी और फिर अपनी आँखें अन्तराल पर गड़ा दीं । थोड़ी खामोशी के बाद बोली, 'ध्यान रखो पानी जब गिरता है तो नीचे की ओर ही जाता है। वह दोनों हाथों से अपना गोल जूड़ा ठीक करने लगी ।

नीलकण्ठ कुछ कहते कहते चुप हो गया और फिर सँभलकर बोला 'कौन था वह लेखक ?—हैवलाक एलिस । अपनी पुस्तक लिखने से पहले कहीं उसने हमारा कोणार्क देखा होता "

"तो उसने कई अध्याय और जोड़े होते ।

अन्तराल ने हँसकर कुन्तल और नीलकण्ठ की आँखों में कुछ ढूँढने का यत्न किया ।

अन्तराल बोला, 'वह देखो, उस युवक को गाइड की आवश्यकता नहीं है । वह स्वयं गाइड बन गया है उस लड़की का जैसे मैं कुन्तल का गाइड बन गया था पहली मुलाकात में । फिर जिन दिनों मैं टूरिस्ट विभाग में काम करता था यहाँ कोणार्क में युवक-युवतियों के ऐसे कितने ही जोड़े देखने को मिलते । तब कुन्तल की याद हो आती थी ।'

नीलकण्ठ ने गम्भीर स्वर में कहा, "कोणार्क की मिथुन मूर्तियाँ देखते प्रारम्भ में युवक-युवती के हर जोड़े को संकोच होता होगा। फिर वे समझ जाते होंगे कि मूर्तिकार ने पत्थर में स्नेह की कथा कही है ।'

वे अब एक युगल मूर्ति के सामने खड़े थे ।

'मूर्तिकार ने पत्थर को मोम बना दिया' कुन्तल मुस्करायी। चुम्बन की झाँकी मुँह में घाल रही थी। अन्तराल कहता गया, 'कुन्तल से पहली मुलाकात में मैंने ग्रेटा गार्बो की कथा कहना जरूरी नहीं समझा था। धन्य था वह फ़िल्म डायरेक्टर जिसने गाँव की उस मुग्धा का लड़की होना देखा और उसे उठाकर ग्रेटा गार्बो बना दिया'

'जैसे रामचन्द्रजी ने अहिल्या को उठाकर खड़ा कर दिया था।' नीलकण्ठ चुप न रह सका।

अन्तराल अपना प्रिय गीत गुनगुनाने लगा

न कर अविश्वास पराण-सहि, कुआँर पुनिअकु आसिबि मुँहि।

नव जुवती तुहि वेश हाइण, वसिथिबु बाटकु अनाइण।

[अविश्वास न कर, प्राण-सखी! कुआर-पूर्णिमा को मैं आऊँगा। ओ री नव-युवती! सजकर रहना और बैठकर मेरी बाट जोहना।]

सूर्य अस्त हो रहा था। अन्तराल का गीत भी किरणों के साथ डूबता गया। पर गीत की भाव-भूमि तीनों मित्रों के सम्मुख उभर रही थी।

नीलकण्ठ ने उस युवती की ओर संकेत करते हुए कहा, 'उसे शायद विश्वास नहीं होगा कि साजन कुआर पूर्णिमा को लौट आएगा।'

बगल में खड़ी कोई कन्या गुनगुना रही थी

दुलि करे कें कट

दुलिकु देबि मुँ सुना मुकुट

दुलि न कर तु कें कट, मो दुलि रे।

[झूला कट-कट स्वर करता है। मैं झूले को स्वर्ण-मुकुट दूँगी। मेरे झूले, तू कट-कट स्वर मत कर!]

उनके पीछे खड़े यात्री कोणार्क के विशालकाय घोड़ों की सजीवता सराह रहे थे जैसे उनका झूले को स्वर्ण-मुकुट देने के प्रस्ताव से दूर का भी वास्ता न हो।

कुन्तल ने मुस्कराकर कहा, 'अन्तराल, मैं तो यहाँ की मूर्तियाँ देखकर इस परिणाम पर पहुँची कि...' कहते-कहते वह रुक गई।

'कहा न !'' नीलकण्ठ ने जैसे कुन्तल के मन की बात बूझते हुए कहा "तुम यही कहने जा रही थी न कि नारी सदा संस्कारों पर आधारित नई सृष्टि करती है। सच पूछो तो वह परम्परागत का ही प्राणदान करती नहीं चलती। इसी तरह तुम अन्तराल के जीवन में आयीं, कुन्तल ! मेरे जीवन में भी एक आयी थी। अलवीरा से विवाह करने से बहुत पहले वह कहीं की राजकुमारी न थी। उसका नाम राजकुमारी था।'

'अलवीरा जानती है क्या तुम्हारी वह कथा ?' कुन्तल ने गम्भीर होकर पूछा।

"वह नहीं जानती। मैंने उससे कभी नहीं कही वह कथा।' जैसे अधवसना सी सौन्दर्यानुभूति का अचल छूते हुए कहा अन्तराल ने 'मैं सोचता हूँ ये कोणार्क की मिथुन मूर्तियाँ उन मूर्तिकारों की कुण्ठाओं की ही अभिव्यक्ति है क्या ?'

नीलकण्ठ ने अन्तराल का कन्धा झकझोरकर कहा मुझे तो लगता है ये कलाकृतियाँ उन मूर्तिकारों के आन्तरिक सुख की प्रतीक हैं। पत्थर पर छैनी चलाते चलाते नर ने नारी को समझने की चेष्टा की है।

कुन्तल ने जाने क्या सोचकर पूछा, 'क्यों अन्तराल यहाँ तो बड़े-बड़े समाज-सुधारक और नेता भी आते होंगे ?

"क्यों नहीं ? आज ही आ रहे हैं हमारे एक नेता और उड़ीसा सरकार के एक मन्त्री महोदय।

सब आते हैं,' अन्तराल ने लम्बी साँस लेकर कहा, "और अपनी छाप छोड़ जाते हैं। ऐसे ही मेरे जीवन में तुम आयीं कुन्तल ! यहीं हमारा प्रथम साक्षात्कार हुआ था।

कुन्तल बोली, 'वह कथा तो बहुत पहले की है। मैंने पुरी में महाप्रभु के सम्मुख तुमसे वचन लिया था कि तुम मुझे स्वीकार करोगे। तुम तो मानते ही न थे। यही कहते रहे—मैं अकिंचन तुम राजकुमारी ! मैं तुम्हें अपना स्टेट में ले गई। "

हवा में ठण्ड थी। बूढ़ा बरगद जैसे अन्तराल और कुन्तल का

पहचानता हो और पत्तों के ओंठ हिलाकर स्वागतम् कह रहा हो।

अन्तराल ने कहा "वह कथा आज प्रिय लगती है। अकिंचन को महान् बनाना ही तो प्रेम का सबसे बड़ा चमत्कार है। यही क्या कुछ कम गौरव है कुन्तल, कि तुम्हारे मन पर उन दिनों की याद बनी हुई है?

कुन्तल ने पूछा, 'क्या कला वास्तव में पुन्य का विस्फोट होती है?

नीलकण्ठ ने अपनी ही बात छेड़ दी, मैं भी अपनी उस राजकुमारी को अभी तक नहीं भूला। इतने वर्ष पूर्व मैं बलगाडी पर पुरी से कोणार्क आया था। एक आर्ट स्कूल की पार्टी आ रही थी। उसी के साथ हो लिया था। आदमी जो कुछ करता है जैसा रूप वह धारण करता है उसका निर्णय उसी के हाथ में रहता है क्या?

कुन्तल बोली, विस्तार से कहो वह क्या।

"यह तो तुम भी मानोगी कुन्तल!" नीलकण्ठ कहता चला गया 'बहुत सी बातें मिलकर हमारी कथा को आगे-पीछे ले जाती हैं। मैं तो इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि मैं आज जिस रूप में हूँ, उसमें बहुत-कुछ हाथ उसी राजकुमारी का है। हमारी वह राजकुमारी तो श्यामवर्ण थी, जैसी रवीन्द्रनाथ की श्यामकली रही होगी।

कुन्तल ने उस कविता का बोल सुना दिया

> कृष्ण कलि आमि तारेइ बलि
> कालो तारे बले गाँयेर लोक।
> मेघल दिन देखे छिलाम माठे
> काला मेयेर कालो हरिण चोख।

"तीन बलगाड़ियों पर हम लोगों ने रात भर यात्रा की। मुझे राजकुमारी वाली बलगाडी पर स्थान मिला। राजकुमारी के साथ उसकी काई रिश्ते की बहन भी अपने भाईसहित उसी बलगाडी में थी। कैसे उन्होंने मुझे भी संग ले लिया, यह संयोग की ही बात थी।"

मेरी कथा भी ऐसी ही समझो—संयोग की कथा!' कुन्तल चुप न रह सकी।

"वे तीनों देर तक मेरी बातें सुनते रहे। राजकुमारी ही अधिक रस ले रही थी। मेरी *एक एक कथा आहुति बनती गई।"*

"हाथ तो नहीं जल गया था होम करते ?" अन्तराल हँस पड़ा। फिर गम्भीर होकर बोला, "अधिकार, धन ख्याति, सब व्यर्थ हैं, यदि प्रेम न मिले। प्रेम ही जीवन का आदि काव्य है, और यही है शेष काव्य।

"सुनो तो !" नीलकण्ठ कहता चला गया, ' सोने में कई बार मेरी देह राजकुमारी को छू गई होगी। अब इसमें दोष रहा भी हो तो बल-गाड़ी के धक्के ही उसके लिए जिम्मेवार थे। यहाँ पहुँचकर मूर्तियाँ देखते समय बार-बार मैं राजकुमारी की आँखों में कुछ पढ़ने की चेष्टा करता रहा। आज सोचता हूँ, अपनी उस कोणार्क यात्रा को नैतिकता के काँच-पत्थरों की ऐनक लगाकर देखूँ ही क्या ? वह यात्रा क्या राजकुमारी को भी याद आती होगी ? वह जाने किस सिन्दूरी नाव में जा बैठी होगी ! पर पहले प्यार के गन्ध से देने वाले उन अन्धे आलिंगनों की डगमग याद उसे भी कैसे नहीं आती होगी।

वे मन्दिर के ऊपर वहाँ आ पहुँचे थे जहाँ से पूर्वी सागर दिखायी देता था।

नीचे मन्दिर के आँगन में खड़े विशालकाय वरगद से अस्त होते सूर्य की अन्तिम किरणें आँख मिचौनी खेल रही थीं।

"राजकुमारी के सपने चन्दन की पालकी में बन ठनकर बैठने होंगे। याद आती है उसकी चितवन कानों में सोने के कुण्डल आँखों में काजल के मेघ। मानो पत्थर की मूर्ति बोल रही हो—हम प्यार के लिए बने हैं कहते-कहते नीलकण्ठ चुप हो गया।

साँझ घिरने लगी। पर कोणार्क की मूर्तियों के विलुप्त होने में देर थी। लगता था, उन मूर्तियों में लुकती छिपती किरणें भी जैसे उनकी वेदना-संवेदनाओं की तरह व्यापक विस्तार का सपना देख रही हों।

"जीवन के सम्पूर्ण सत्य को समझने के लिए कोणार्क को समझिए।' अन्तराल ने कथा का तार निकाला, कुन्तल जानती है, हम कितने निकट

सम्पर्क में रहे। कैसा पुण्य स्पर्श था वह ? फिर हमारी कथा चर्चा का विषय बन गई, तो हमें दूर कर दिया गया। पास-पास रहते भी हम पत्र लिखते थे। उन पत्रों में हमारे प्यार की अटूट मार्में रहती थी। कथा कुन्तल !'

कुन्तल मन्द मुस्कराती रही।

'अन्तिम किरणों के नरम तारों में लिपटे कोणार्क के ये खण्डहर तो और भी मनभाव हो उठते हैं।' कहते हुए नीलकण्ठ ने अन्तराल और कुन्तल की तरफ़ देखा। उनके खुले नयन मानो किसी पूजा भाव में मौन हो गए थे।

पर एक आलिंगन-मूर्ति पर कबूतर-कबूतरी का जोड़ा चोंच-में-चोंच डाले बैठा था, जैसे पत्थर में डूब रहा काम-गाथा की यह व्याख्या वे युग युग से करते आए हों।

अन्तराल ने नीलकण्ठ के कन्धे पर हाथ रखा और अलसाए-से स्वर में बोला, 'एक बार चार गुजराती लड़कियाँ कोणार्क देखने आयीं। उनमें एक कथा की शौकीन थी। मैंने उसे कुन्तल की कथा सुनायी, तो वह देर तक प्रश्न-पर-प्रश्न करती रही। अब मैं उसे कैसे बताता कि कुन्तल रेशमी गुलनार आलिंगनों पर विस्मृति की धूल डालकर भूदेवता रक्त के रथ में जा बैठी। और मैं भी सपने के मधु कुंज से निर्वासित होकर एक माटी की गली में गढ़ी गई मूर्ति के साथ सप्तपदी वाला सम्बन्ध जोड़कर अपनी वंशावली को आगे लेने के लिए पतवार चला रहा हूँ।'

लगता था, अन्तराल के मुख पर किसी ने युग-युग की कुण्ठा उभार दी है। उसे देखकर कुन्तल की हँसी भी डूब गई। साँझ उतर आई थी।

नीलकण्ठ ने उपयुक्त अवसर देखकर कहा, 'मुझे तो आज भी लगता है पुरी से चली वह बैलगाड़ी अभी कोणार्क नहीं पहुँची और मेरी देह पास पड़ी सोती राजकुमारी से छू-छू जाती है। अब तो जैसे वे उन्मत्त-उन्मत्त स्पर्श मन की झील में बाँसुरी मुग्ध नाव से रहे हों। कभी है, वह कथा रेल की तरह मीलों लम्बी सुरंग में चली आ रही"

मुरग समाप्त नही हो रही।"

सहसा उनकी दृष्टि उस युगल-मूर्ति पर पडी, जिसम नर नारी के मुखा पर कुण्ठा नही, प्यार की तृप्ति और जीवन की दीप्ति खिल रही थी। नीलकण्ठ ने कहा 'लगता है यह युगल मूर्ति मेरी ही बात को सत्य कर रही है। सचमुच कोणाक की मूर्तियो मे उन मूर्तिकारों का प्यार साँस ले रहा है।'

इनम सदा प्यार का दशन हाता है।" कुन्तल के मुख पर सहज मुस्कान खिल उठी और मुख पर झुकी अलक का परे हटाते हुए कहा 'मैं जब भी कोणाक आयी, जाने किस किसकी मिलन-यामिनी मेरी कथा को छू गई।'

'मैं भी यही कहने जा रहा था।' अन्तराल ने कुन्तल की ओर देखकर कहा 'मेरे लिए भी न जाने किस किस मूर्ति स तुम्हारी वह लाज -हाई मुग मुद्रा झाँक जाती है। और ये पत्थर बोलते हैं तो खरी बात रूप और प्यार की बात।'

सागर की ओर से आती हवा के स्पश म उनके तन मन सिहर उठे।

इतने म एक अपरिचित यात्री ने पास आकर कहा, "क्या आप लोग मुझे मूर्तिकार बिशु के बारे म कुछ बता सकते हैं, जिसकी देख रेख मे यह मन्दिर बना था?'

अन्तराल ने कहा, "मैं कहता हूँ कोणाक की चेतना चुम्बित कथा के महान् नायक महाशिल्पी बिशु, और मैं सोचता हूँ " कहते-कहते अन्तराल चुप हो गया।

'बारह वष तक इस मन्दिर का निर्माण होना रहा,' कुन्तल उस अपरिचित यात्री की ओर भावावेश मे हाथ उछाल उछालकर कहती चली गई, 'बारह सौ मूर्तिकार बिशु के साथ जुटे थे। फिर यह समस्या आयी कि राजा के मन्त्री की घोषणा के अनुसार बारह वष पूरे होने से दो-चार दिन पहले ही कलश टिका दिया जाए, नही तो बारह सौ मूर्तिकार बिशु सहित अपने हाथ कटवाने के लिए तयार रहें। मन्दिर का कलश टिकाने

म बहुत न्नि से मफलता नही मिल रही थी। एक न्नि एक युवक ने ग्राकर कहा—मेरा नाम धम्मपद है। यह काम मैं कर सकता हूँ।' कलश ग्रौर मन्दिर के भीतर वाली सूय प्रतिमा म चुम्बक पत्थर का प्रयोग किया गया था, जिमम प्रतिमा धरा से ऊँची निराधार ही स्थापित की जा सके। पर चुम्बक के प्रयोग म कही ऐसी भयकर भूल हो गई कि कलश चढाते ममय मन्दिर का मुख्य भाग गिर पडा ग्रौर धम्मपद दबकर मर गया। बाद को धम्मपद की माला देखने पर विशु ने पहचाना कि धम्मपद तो उसी का पुत्र था। एक कन्या-कन्या मे विशु का प्यार "

'प्यार!' प्रभाव के जादू म हठात् ग्रन्तराल उस हतप्रभ-से ग्रपरिचित यात्री की ग्रार देखकर बाला प्यार के लिए ही तो हम बने हैं। कोणाक के रूप म विशु कही उस कध प्रेयसी का ही तो ग्रभिनन्दन नही कर रहा था जिसे वह राज्यादश पर गर्भावस्था म ही छोड ग्राने को बाध्य हुग्रा थ।?

ग्रपरिचित यात्री न कहा यह ता ग्रापने ठीक कहा—हम प्यार के लिए ही बने हैं।

नीलकण्ठ ग्रौर कुन्तल न एकटक मागर की ग्रोर देखा। ग्रन्तराल ने ग्रपरिचित यात्री का सम्बाधित करते हुए कहा ग्रौर देखिये। प्यार को प्यार की ग्रपेक्षा नही होती। मैं कहता हूँ प्यार मे ढल पत्थर भी ग्रमर हैं। प्यार ने ही इस जीवन को दिशा ग्रौर गति दी, प्यार ही इन पत्थरों का प्राण है। यदि कुन्तल भी यही सोचती है, तो मैं धय हूँ।

कुन्तल कुछ न बोली, जमे ग्रन्तराल की कथा की कुन्तल कोई ग्रौर हो।

नीलकण्ठ न कहा मपन म मुझे कोणाक का मन्दिर सूय रथ के रूप म चलता हुग्रा प्रतीत होता है जमे मैं भी इस रथ म बठा हूँ जसे उस बलगाडी न ही सूय रथ का रूप धारण कर लिया हो।

कुन्तल ग्रौर ग्रन्तराल एक-दूसरे की ग्रार देखन लग। वह ग्रपरिचित यात्री एक युगल मूर्ति की ग्रोर घूम गया।

बस वा हान उन्ह पुकार रहा था। व शीघ्र ही नीचे उतरे और मन्दिर के प्रागण स बाहर आकर उन्होने एक दुकान से चाय पी। अब जसे कहने का कुछ न रह गया हो।

बस चली तो जान म जान आइ। जगह जगह गान वे मधर म बल गाडिया की पात उनका ध्यान खीच लेती। रोशनी के लिए हर गाडी वाले ने गाडी के नीचे लालटन बाँध रखी थी। "जस रात्रि यात्रा पर चली जा रही ये बलगाडियाँ भी किसी सूय रथ से मिलन चल पडी हो।' कहत-कहत कुतल ने पहल अन्तराल की ओर दखा, फिर नीलकण्ठ की ओर।



नौकरी से मुक्त होकर भी नीलकण्ठ ने कटक में ही क्या धूनी रमा रखी है यह बात धौली वालों की समझ में नहीं आती। दादी के लिए समय पर मनीऑर्डर आ जाता है पर वह तो पोते और पड़पोते को देखने को तरस गई।

"नारायण ने तो कभी मेरी सुध नहीं ली" दादी पोपले मुँह से शिकायत करती 'तीन लोक से मथुरा न्यारी। उसकी मथुरा है कलकत्ता। अब नीलकण्ठ ने कटक को मथुरा बना लिया।"

भुवनेश्वर से पुरी जाने वाली पक्की सड़क उसी तरह दया नदी के पुल पर से गुजरती है। धौली को सड़क से मिलाने वाला रास्ता पहले की तरह कच्चा है। मन्दिर में मंगल शंख बजता है। माघ आता है। दूधिया कतकी पूनम छिटकती है। रूपक मूर्तिशाला में बैठकर मूर्ति गढ़ता है। उसने गुरुदेव का अड्डा सूना नहीं होने दिया। पाथुरिया गली की लाज रख ली।

दादी की मटमैली साड़ी देखकर सोना कहती, "मनीऑर्डर के रुपए बचाकर क्या करोगी, दादी? कहो तो नई साड़ी ला दूँ?"

दादी हँसकर कहती "अब तो मरघट में ही नई साड़ी पहनूँगी।"

दादी को वे दिन याद आने लगते हैं, जब दाना कलाइयों पर एक एक मास्ती गुदाई थी।

अब तो ये मोरनियाँ भी मरघट में मेरे साथ जलेंगी सोना बेटी ! दादी बार बार यह विचार दोहराती।

गाँव मुखिया बनी को सोना ने घोड़े की उपाधि देते समय जाने क्या सोचा था। दादी समझाती 'आदमी की जात घोड़े से ऊँची है, बेटी !' बात यहाँ आ पहुँचती है कि घोड़ा कितने कोस दौड़ सकता है।

सोना कहता, "बनी ने ही तो चाहा था कि त्रिमूर्ति दिल्ली चली जाए। वह घोड़े की तरह हिनहिनाता है आज भी घोड़े जैसी है।

जागरी छेड़ता 'बनी का सिर तो घोड़े के सिर से बिलकुल नहीं मिलता।

रूपक ने बनी की मूर्ति मूर्तिशाला में रख छोड़ी है। वह कहता, 'गाँव मुखिया की मूर्ति की धूल साफ करते-करते मेरे हाथ रह गए।

वैद्यजी की दुकान पर अब रूपक भी आ बैठता है। यह असम्भव है कि बाबा का प्रसंग न चले। जागरी गाँजे का दम लगाकर कहता "वैद्यजी धौली की कच्ची सड़क कब पक्की बनेगी ? आज़ादी आये इतने साल हो गए। बाबा होते तो पक्की सड़क बनवाकर छोड़ते।

पास से बनी कहता "सरकार को हमारा भी ध्यान आएगा एक दिन। पक्की सड़क न बनी तो मेरा नाम बनी नहीं।

वैद्यजी भी चुप नहीं रहते "हमारी सड़क कच्ची ही सही पर अब श्यामा के लेख के कारण धौली सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। और सोना को जिन देशों ने नर्तकी के रूप में देखा, उन्होंने धौली का नाम कैसे नहीं सुना होगा ?

कोई अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान का बखान करता कोई त्रिमूर्ति का कोई विशाल कौशल्या पुखरी की कथा ले बैठता।

धौली का दुनिया में नाम हो न हो, पर यहाँ उसी तरह धान उगता है, उसी तरह गन्ने में रस भरता है। वैसे ही अमराई में बौर आता है।

वा हा बाँस-कुंज म बाँस लहराते हैं। वम भी नागफनी मुह चिढ़ाती है। वम ही केवड़ के फूल काटो और पत्तो म छिपकर मिलते हैं। वही वजनाएँ वही बधन वही श्रावग-सवग। पर जो कल्पना धौली की मटमली कथा म सान चाँदी के द्वार लगा जाती है वह है नूतन भुवनेश्वर की रग-स्थली की चचा, जो आरती दीप-सी जल उठती है।

नूतन भुवनेश्वर म लक्ष्मी का निवास है वमव का सम्मोहन है। वहा मत्री महोदय रहते हैं। बड़ मत्री छोट मत्री। उन्हो के सकेत पर चलती है सरकार। उन्ह यह देखन का अवकाश नहीं कि धौली का आचल कितना मला है।

वद्यजी कहते धौली जिस पुण्य-नाच क लिए हाथ फला रहा है वह तो नूतन भुवनेश्वर मे आएगी ?

धय है धारा जहाँ चतुमुख तमा मूर्तिकार हुआ! गगन महान्ती अपना स्वर मिलाते।

नानकचन्द का नाम क्या नही लेते ?' ज्यारी भी चुप नहीं रहता।

वह तो कटक का हो गया। गुरुचरण गाँठ लगाता।

और हमारा अन्तराल भी तो कटक का हो गया। वद्यजी कहते।

फिर किसी रियासत की बात चल पड़ती है। वद्यजी कहते खबर कागज म सारा हाल छपा था। उन दिनो रियासतो का देश की यूनियन म मिलाने का बीडा उठाया गया। राजा लोग आसानी म मानने वाले नहीं थे। सरदार पटेल न इसके लिए बहुत सा रियासतो का दौरा किया।'

पास मे गगन महान्ती कह उठते वहीं तो मैं वह रहा था वद्यजी! आँखो-देखी कथा कहता हूँ। सात चाँदी के रथ म बठे थ राजा साहब और सरदार पटेल। सूय रथ की तरह सात घोड़ इन खींच रह थ। रथ के आगे आगे रियासत का बड विजय-गान की धुन अलापता जा रहा था। वह जलूस मुझे याद रहेगा। बाजारो की नक्कियाँ से सजाया गया था। खिड़कियो और छतो से स्त्री-पुरुष आनन्दपूवक राजा साहब और सरदार पटेल पर फूल बरसा रहे थ। रियासत की राजधानी के बडे

चौक में रथ रुक गया और राजा साहब ने घोषणा की—आज से हमारी रियासत में हमारी नहीं, बल्कि सरदार पटेल के मन्त्रालय की हुकूमत होगी। इसके उत्तर में सरदार पटेल ने कहा—'माननीय राजा साहब, बहनो और भाइयो! हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि हमारे मन पर राजा साहब की उदारता की छाप सदा लगी रहेगी। राजा साहब बड़े गुणी पुरुष हैं। उनकी उदारता से कटक में धौली के सुविख्यात मूर्तिकार चतुर्मुख की स्मृति में एक म्यूज़ियम स्थापित किया गया। कटक के आर्ट स्कूल की स्थापना में भी राजा साहब का ही हाथ था। और भी बड़े-बड़े कामों में राजा साहब सदा आगे रहे हैं। हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि रियासत में कानून की व्यवस्था हम ढीली नहीं होने देंगे। राजा साहब की महिमा के लिए हमारी सरकार उनके खर्च का पूरा प्रबन्ध करेगी। इसके लिए हम वचनबद्ध रहेंगे। इस घोषणा का स्वागत अपार हर्ष-ध्वनि द्वारा किया गया।'

राजा साहब तो कभी के चल बसे। उनकी एकमात्र सन्तान है राजकुमारी कुन्तल। महाराजकुमार सूर्यदेव एम० एल० ए० की पत्नी।

'कुन्तल तो यहाँ भी आ चुकी है।'

हमारी कच्ची सड़क को पक्की बनाने के लिए तो कुन्तल की जेब भी काफी हो सकती है, मास्टरजी!'

'अब वह बात कहाँ, वैद्यजी! राजा साहब से प्रार्थना की होती तो हमारी मनोकामना पूरी हो जाती।"

एक दिन लाठी टेकती हुई दादी वैद्यजी की दुकान पर आकर बोली, बेटा नील को चिट्ठी लिख दो कि वह रूपम् को मेरे पास छोड़ जाए। उसे लिख दो सोना का बेटा उसे याद करता है। और यह भी लिख दो कि अब तो भगवान् मुझे बुलाने वाले हैं

वैद्यजी चिट्ठी लिखने बैठ गए।



"स्कूल के लड़के मुझे गोरा कहकर क्यों चिढ़ाते हैं, डैडी?" रूपम् ने पूछा और कोई उत्तर पाए बिना ही जागरी से सीखा हुआ गीत गाने लगा

देखो मेरी जान कम्पनी निशान
बीबी गई डमडम उड़ी है निशान
बड़ा साहब छोटा साहब बाँका कप्तान
साहब गया डमडम उड़ी है निशान
आरा लूटा दिल्ली लूटा, लूटा मुल्तान
साहब गया डमडम उड़ी है निशान

अलबीरा ने पास आकर कहा, 'देखो, बेटा! मैं समझाती हूँ। बंगाल आर्टिलरी का सदर मुकाम डमडम ले जाने पर यह गीत बना था। अकल जागरी आयें तो उन्हें बताना। वे कहेंगे—रूपम् बहुत समझदार हो गया!'

नीलकण्ठ ने मूर्ति गढ़ते हुए कहा 'पहले क्या रूपम् बेसमझ था?'

रूपम् ने अलबीरा के गले में बाँहें डालकर कहा 'व्हाई डैडी मेक्स सो बिग बिग स्टैच्यू? [डैडी इतनी बड़ी मूर्ति क्यों बनाते हैं?]

निशान !'

नीलकण्ठ और अलवीरा ने उसे डाँट पिलाई।

'जागरा, एक बात कहूँ। नौकरी चली जाने का मुझे गम नहीं। छेनी चलती रहे। नीलकण्ठ ने मूर्ति गढ़ते हुए कहा, सबसे बड़ी बात है कि काम में विश्वास न हो तो सब बेकार है।

अलवीरा ने न जाने क्या सोचकर कहा 'जागरी, धौली जाकर दादी से कहना कि हमारा रूपम् तो आर्टिस्ट नहीं बनेगा।

अभी से चिन्ता करने की क्या जरूरत है डार्लिंग !" नीलकण्ठ ने मुस्कराकर कहा, 'वह तो उधर ही जायेगा जिधर उसके संस्कार ले जाएँगे।'

यही तो मैं भी कहती हूँ अलवीरा ने व्यंग्यपूर्वक कहा, मैं कह देती हूँ कि वह तुम्हारी छेनी-हथौड़ी से मित्रता करने से रहा।'

तुम्हें पछतावा हो रहा है डार्लिंग ! मैं यह नहीं मान सकता।" नीलकण्ठ ने छेनी चलाते हुए कहा।

जागरी बोला ' दादी पूछ रही थी आप लोग धौली कब आ रहे हैं ?'

यह तुम अलवीरा से पूछो जागरी ! मैं तो कहता हूँ अब के छुट्टियाँ धौली में ही गुजारी जाएँ। यह नहीं मानती। इसीलिए दो-तीन साल से मैं धौली जाकर रहने की साध पूरी नहीं कर पाया। दादी चिट्ठियाँ लिख-लिखकर हार गई। अलवीरा सुनती ही नहीं।

अलवीरा बैठी मुस्कराती रही।

रूपम् ने पास आकर पूछा एक बात बताओ ममी ! क्या सचमुच कोणार्क के ट्वेल्व हण्डरड आर्टिज़न्ज़ ट्वेल्व हण्डरड साल तक काम करते रहे थे ?

देखो न रूपम् ! अलवीरा ने पुचकारकर कहा 'कथा तो यही कहती है।'

जागरी एकटक रूपम् को देखता रहा जो अब जाने किस कथा का सपना देख रहा था। रंग गोरा एकदम विलायती आँखें अलवीरा की

तरह नीली। बाल नीलकण्ठ की तरह काले घुघराले। चेहरे के कट में अलबीरा और नीलकण्ठ के चेहरों का सम्मिश्रण। यही सब देखकर जारी मुस्करा रहा था।

रूपम् बोला, 'क्या यह सच है ममी कि धमपद कागाक के चीफ आर्टीज़न विशु का बेटा था?'

'बस, रूपम्!' अलबीरा ने मुस्कराकर कहा, 'यह क्या झगड़ा? जाकर स्कूल का काम करो।'

रूपम् ने फिर पूछा, "क्या धमपद कलश गिरने से पत्थरों के नीचे दबकर मर गया था, ममी?"

नीलकण्ठ बोला, 'तुम यह प्रश्न अंकल जारी से पूछो, रूपम्!'

अलबीरा ने समझाया, "अभी जाकर खेलो बेटा! माइ स्वीट रूपम्! हम बात करते हैं।' और वह उठकर रूपम् को बाहर ले गई।

जारी ने गम्भीर होकर कहा, "बाबा की मूर्ति तो नारायणपुर के पास पत्थर की बनाई। श्यामवर्ण मुगनी पत्थर क्यों चुना इसके लिए?'

'रंग की ही तो बात नहीं।' नीलकण्ठ ने छेनी चलाते हुए कहा, 'यह दक्षिणी बाबा की महिमा कभी लाती है?"

बाहर से आकर अलबीरा बोली, 'वाह, डार्लिंग! तुमने तो हाथ चलाकर ही पत्थर में प्राण डाल दिए।"

'यह तुम इसलिए कह रही हो कि यह बाबा की मूर्ति है।" नीलकण्ठ मुस्कराया, "बाबा सचमुच महान् थे। बाबा मेरे मन में बसते हैं। वे अपनी पीढ़ी के महान् मूर्तिकार थे। आज मैं बाबा की मूर्ति बनाता हूं तो लगता है सभी पीढ़ियों के मूर्तिकार अपना अपना पत्थर लेकर मूर्ति गढ़ रहे हैं। जैसे पिछली पीढ़ियों के मूर्तिकारों की सम्पूर्ण प्रतिभा मेरे हाथ में आ गई हो। जैसे हमारे रूपम् के पीछे हमारी सम्पूर्ण सभ्यता साथ में खड़ी हो।'

अलबीरा ने अपनी ही शैली में कहा, "तुम कुछ भी कहो, डार्लिंग! मैं बिलकुल नहीं चाहती कि रूपम् आर्टिस्ट बने।"

दादी ने पापले मुह से कहा, अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान की ओर जाती हूँ, तो लगता है नील के बाबा दूर से चले आ रहे हैं। मेरे लिए तो वे आज भी जीवित हैं। मैं तो उन्हे हरदम देखती हूँ।

नागमती ने कहा, यह बात मूनिवार पर ही लागू नही होती। जब हम नही होंगे, तब हमारी क्या चलेगी।"

'मैंने तो भविष्य के बारे म सोचना ही छोड दिया है।' सोना चुप न रह सकी।

नागमती ने व्यग्य किया, 'तुम आँखें बन्द रखोगी तो क्या भोर नहीं होगी ?"

दादी की आँखें भर आइ। एक-दो आँसू उसकी आँखो से टपक पडे। बोली 'मैंने नील के बाबा का जान कितनी बार बुरा भला कहा था।"

सोना बोली "आदमी की कदर तभी होती है जब वह चला जाता है।

दादी सोच विचारकर बोली क्या अलबीरा ने नीलकण्ठ को हमेशा के लिए मुझसे छीन लिया ? मैंने भी उसके बाबा को छीन लिया था। जहाँ भी रहते हैं, खुश रहे। रूपम् को ही भेज देते चार दिन।



मन्त्री महोदय के इन्तजार में तीन घण्टे देर से काम शुरू हुआ।

ठेकेदार ने गाँव वालों की ओर से मन्त्री महोदय को धन्यवाद दिया, तो उन्होंने कहा 'पहला और आखिरी दोनों तो दुनिया के नक्शे पर उसी दिन आ गया था जिस दिन सम्राट् अशोक ने शिलालेखों पर अपनी राजाज्ञा खुदवाई थी। आज स्वतन्त्र भारत में हम इस पक्की सड़क का आरम्भ करते हुए सम्राट् अशोक द्वारा अभिनन्दित मन्तव्यों का पुन अभिनन्दन कर रहे हैं'

धूल उड़ाती हुई मन्त्री महोदय की कार चली गई तो ठेकेदार को लगा अब वह अपने काम का मालिक है।

सड़क का काम आगे बढ़ने लगा, जैसे लोक-कथा में राजकुमार का घोड़ा आँधी-पानी की परवाह न करते हुए आगे बढ़ता है। सड़क बनाने वाले मजदूर जाने कब-कब बातें हवा में बिखेरते रहते। कोई कहता 'गाँठ में पैसा न हो, तो वही रथ-यात्रा है। अपना मद नहीं तो दूर्द पर फूल लगाने का क्या लाभ?' कोई काला पहाड़ की कथा शुरू करते हुए पूछता, 'काला पहाड़ की कथा सुनी है? बताओ उसने कितनी मूर्तियों की नाक तोड़ डाली थी?'

दे जाती ।

सागर को पास बिठाकर दादी वह कथा कहने लगती, 'रानपुर को कोई न रोक सका। वह उस द्वीप म जा पहुँचा, जहाँ दुजय दत्य ने उस राज-कन्या को बन्दी बना रखा था। जगल म खडा राजकुमार सोच रहा था—मैं दत्यपुरी मे उस राजकन्या को अवश्य छुडाकर लाऊँगा। ''
कभी दादी की कथा म बच्चो क उस खेल की कथा उभरकर सामने आ जाती

किसकी किसके साथ लडाइ ?' उडीसा के सग्य अशोक की।'
किसकी जीत किसकी हार ? 'उडीसा की जीत अशोक की हार।'

सागर कहता, 'पर मास्टरजी तो कहते हैं उडीसा की हार हुई थी, दादी !'

दादी हँसकर कहती बच्चा के खेल का कथा अपनी जगह सच है बेटा !''

और फिर यह प्रसग बीच म छोडकर सागर कहता, ''रूपम् कब आयेगा दादी ! हम उडीसा और अशोक का खेल खेलेंगे।''

दादी दोनो हाथ धरती पर रखे बठी रहती जसे धरती के कम्पन म कोई अशोक-कालीन कथा सुनने की कोशिश कर रही हो।

पाथुरिया गली के बीच से जाने वाली पक्की सडक पर चलने वाला की आवाजें कुछ कुछ बदल गई थी। उन बदली हुई आवाजो म भी दादी धरती की कथा सुनने की चेष्टा म लीन रहती, जब वह लाठी टेकती हुई सडक के किनारे किनारे चलकर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान की तरफ चल पडती या बदजी की दुकान के सामने से होती हुई त्रिमूर्ति के सामने जा खडी होती।

कभी दादी सोना से कहती, 'अपना वह प्रिय बगला गीत गाकर सुनाओ, सोना ! 'माटिर प्रदीपखानि' वाला गीत।'' और सोना गाने लगती

माटिर प्रदीपखाना आछ माटिर घरर कोल
सन्ध्या तारा ताकाय तारी आला दखरे बले।
सइ आलाटि निमेष हन प्रियार व्याकुल चाओआर मता,
सई आलाटि मायर प्राणेर भयेर मतो दोल।
सई आलाटि नत ज्वल श्यामल धरार हृदय तल
सई आलोटि चपल हाओआय व्यथाय काप पले पले।
नामल सन्ध्यातारार वाणी आकाश हते आशिस आनि
अमर शिखा आकुल हला मन शिखाय उठत ज्वल।

[माटी का दीया माटी के घर की गोद म है। सन्ध्या तारा ताक रहा है—उसका आलोक देखेगा। वहा आलोक प्रिया की व्याकुल दृष्टि के समान। वही आलोक मा के भय के समान डोलता है। वही आलोक श्यामल धरती के हृदय तल म जलता-बुझता है। वही आलोक चपल हवा म व्यथा स पल-पल काँपता है। सन्ध्या तारा की वाणी आकाश की आशिष लेकर उतरी। अमर शिखा आकुल हो उठी मत्य शिखा म जल उठने को।]

घर म दीया जलाते समय इस गीत के भाव दादी को छू छू जाते। दोनो हाथ धरती पर टेककर वह फिर धरती का कम्पन सुनने की कोशिश करने लगता।



एक दिन जागरी कलब से लौटा तो वद्यजी ने [illegible] विचित्र समाचार सुनाया कि कोइली परिषद को छोडकर कलायन चली गई। पर जब जागरी ने बताया कि वह अपने पिता के पास नहीं गई थी व अमृता बाबू के पास गई है तो वद्यजी सोचबिचार में बठ रहे [illegible] विश्वास न हो रहा हो।

'यह कैसे हो सकता है?' वद्यजी ने जागरी की आँखों में झाँककर कहा।

'अनहोनी बात भी घट जाती है। मैं तो स्वयं नहीं समझ पा रहा। पर खबर सच्ची है, जरा भी झूठ नहीं।'

'अच्छा तो यह बात है।' वद्यजी सोच-सोचकर बोले। और वे भीतर से वह पुस्तक उठा लाए जिसमें कोइली की 'कोणार्क' शीर्षक कविता छपी थी। पुस्तक खोलकर बोले, 'इसकी खबर तो कोइली ने पहले ही दे दी थी। हम लोगों के समझने में ही भूल हुई।'

जागरी ने कहा, 'इस कविता में तो कोई खबर नहीं हो सकती।'

'तो अब इस दृष्टि से यह कविता सुनो।' और वद्यजी वह कविता उच्च स्वर में पढ़कर सुनाने लगे

कल्पना की झिलमिली के पार
ध्यान पत्थर की हुई नारी
खुल गए हैं रूप लीला की कथा के द्वार।

तिमिर-युग का छोड़कर सपना
धड़कते रक्त-मुकुलित प्राण
कनकी के दिक् विदिक् व्यापें सुरभि के भार।

देवता का रथ गगन पर
स्नेह-चुम्बित प्रात-वेला
अब कहो यह अग्नि-गन्ध भी है तुम्हें स्वीकार ?

धन्य आदिम काल का रवि छू रहा
धन्य पत्थर की शिराएँ
रक्त-कण में भी वही क्या आदिम संचार ?

किस महत्त्व की प्रतीक्षा में रुके
देव रथ के चक्र छवि अग्नि पट ?
मौन की मनुहार न्यौछावर करूँ सौ बार !

सब-आमंत्रण मुग बाँध गया है द्वार
चुक न जाये मिलन-वेला
पुण्य पावन क्वार।

आह पत्थर मूक है !
हैं स्वयं बन्दनवार !
गात में भी है चिरन्तन उर्वशी का प्यार !

बदजी बार-बार कहते रहे कि इस कविता म कोइली न मन की बात पहले ही कह दी थी। पर जागरी इस विवाद म न पडकर कोइली को कलकत्ते से वापस लाकर हरिपद के उजडते घर का बसाने का उपाय ढूढने लगा।

कोइना को हरिपद क साथ एसा क्या कष्ट था जागरी यह नहा समझ पा रहा था। अब वह दादा के पास जाकर कैसे यह दुख भरा खबर सुनाए। यह तो बडी विकट समस्या थी। उसन कहा "यह खबर दादी स छिपाई भी नही जा सकती। खबर ता पहुचकर रहती है।

'अपना कथा को यह माड दन की कादली का एसी क्या चिन्ता था ?' बदजी ने सोच सोचकर पूछा। पर जागरा के पास इसका कोई उत्तर न था।

बदजी न कहा कोई नहीं जानता कि किस समय कथा किधर का मुड जाएगी।

कोइली की कथा का यह माड बहुत रहस्यमय था। जागरी का याद आया कि अपना एक कविता म कादली न लिखा था—हमारी कथा ता मूर्ति म प्राण प्रतिष्ठा होन की कथा है। ता क्या इस तरह पति का घर छोडकर ही वह अपनी मूर्ति म प्राण प्रतिष्ठा कर पाएगी ? जागरा मन मारे बठा रहा। बदजा कादली की एक कविता की य पक्तिया पढ-कर सुनान लग

हाय मीठे चुम्बनो की यह कथा
ढल गई आलिगनो म,
गीत ममता ने लिखा।

रूपसी के आठ क्या पथरा गए ?
चाँद पीछ स उगा,
स्नह पत्थर न ठगा।

गन्ध वाला छन्द में—
कास मरी कब भरी ?
मुझमें अन्दी है गिरा।

वातं-रागध्वनियाँ न जागीं
पुष्प-आँगन में अभी।
घर की देहरी है अनमनी।

छन्द नीरव क्या रहा ?
गीत की भाषा उन्मन।
काम्य की कविता निराम।

जोगेश बैठा सोचता रहा कि पत्नी ने पति को क्या छोड़ दिया। क्या कादम्बरी अब लौटकर नहीं आयेगी ? उसे अन्नदा बाबू से ऐसी आशा नहीं थी कि वे किसी का घर उजाड़ना पसन्द करेंगे।

बैधजा का विचार था कि कादम्बरी कुछ दिन बाद लौट आएगी। यह तो वे सोच ही नहीं सकते थे कि अन्नदा बाबू जैसे सज्जन के रहते हरिपद का घर उजड़ जाएगा।

तो मैं दादी को यह खबर सुना दूँ ?
तुम न सुनाओगी तो कोई और सुना देगा।'
दादी को कितना दुःख होगा !
हम क्या कर सकते हैं ?'
'आज बाबा होते तो उन्हें कितना दुःख होता !"

सचमुच यह खबर नील की दादी को तेज़ हवा की तरह झकझोर जाएगी। पर इसका कोई उपाय नहीं।



दादी ने यह खबर सुनी तो उन्हें बहुत दुख हुआ। पड़ोसिनें आकर मुंह बनाई बातों से सहानुभूति जताने लगीं जैसे वे अंगारों पर चलकर आई हों। यह खबर जैसे चट्टानों को चीरती आई हो। दादी का बस चलता तो अपनी आंखें गरम सलाखों से दाग लेती।

दादा जिद करने लगा "मुझे कलकत्ता ले चलो।" पर बड़जी बराबर यही कहते रहे "रेल की यात्रा में तुम्हें बहुत कष्ट होगा काकी! कोइली कोई बच्ची तो नहीं है! हल्दिया से पूछकर गई होगी। तुम घबराओ मत। हम पता चलायेंगे। कलकत्ता जाना होगा तो नीलकण्ठ जा सकता है।"

"नीलकण्ठ नहीं जायेगा, बेटा!"

"तुम ऐसा क्यों सोचती हो, काकी?"

"सोचूं कैसे नहीं? मेरा मन यही कहता है, बेटा!"

"हां, काकी, जाना ही पड़ा तो नीलकण्ठ जरूर जायेगा।"

"मैं क्या न जाकर कोइली को समझाऊं?"

और फिर दादी अपना हाथ धरती पर टेककर बैठ गई, जैसे धरती का कम्पन सुनकर इतनी दूर से कलकत्ते में बैठी कोइली की बात समझने की कोशिश कर रही हो। दादा मुंह से कुछ न बोला, जैसे वह सोच

रहा था कि सृष्टि के आरम्भ में केवल शब्द था। उस आदि का कौन शब्द सब कान-सब भावनाओं पर हावी था। उस शब्द ... था कि शब्द ही हमारा आदि मित्र है और वही आदि शत्रु। पापा का नाम उसका शब्द की शक्ति लिए रहता था। माता और पत्नी पर ... दादी जब आज भी उसी तारा का ध्यान कर रही हैं।

बच्चा का फैसला था कि शादी का बन्धन ... जोर था।



आखिर वद्यजी की राय मे गुरुचरण और जागरी मिलकर कलकत्ते पहुँचे। उन्हे पूरा आशा थी कि कोइली मान जाएगी। पर तीसरे दिन व असफल ही वहा से लौट आये।

कोइली न वापस आने से साफ इन्कार कर दिया।

वद्यजी अब भी यही कह रहे थे सारा मामला समय पाकर ठीक हो जाएगा।

दादी दोनो हाथ धरती पर टेककर धरती का कम्पन सुनने की कोशिश करने लगती।

वद्यजी जोर देकर कहते, 'इतनी कविता लिखती है कोइली। उसे यह भूल नही करनी चाहिए थी।'

'भाड मे जाये कविता!' दादी हाथ उठाकर बड़े दुख भरे स्वर मे कहती।

सागर गुरुचरण को घोडा बनाकर आँगन मे 'चल मेरे घोडे!' की रट लगाने लगता तो साना और जागरी हँस पडते। यह देखकर नागमती का भी हँसी आ जाती।

दादी एकदम उदास हो जाती, जैसे वह अंतिम साँसें गिन रही हो।

उसका चिन्ताशील चेहरा कुछ कुछ पथरा चला था।

गुरुचरण बठकर सागर को सात सागर तेरह नदियाँ पार जाने वाले राजकुमार की कथा सुनाने लगता। नानी बार-बार टोकती यह कथा बन्द कर दो। पर कथा तो किसी के रोके रुक नहीं सकती थी—एक कभी समाप्त न होन वाली कथा। महानदी से भी लम्बी। समुद्र स भी गहरी। कथा के अपने प्रकाश-स्तम्भ हैं। कथा की महिमा युग-युग से चली आई है। भाग्यहीन का सहारा है कथा भक्त की निष्ठा अलसाये की नींद, अनाडी का ज्ञान। दादी दोना हाथ धरती पर टेककर धरती का कम्पन सुनती हुई कहता यह कसी कथा है जो हम भीतर-ही भीतर कचोट रही है!

'दादी, धीरज रखो! वद्यजी समझान काली वापस आ जाएगी अपन ठिकान। वह बच्ची तो नही।

दादी कहती 'अब वह नही आयेगी। आना होना तो जागरी और गुरुचरण के साथ आ न जाती। मैं कहती हूँ मरे जीवन का दरवाज़ा बन्द हो जाए। मरा दृष्टि चली जाए। मरी स्मृति चुक जाए।

अभी तो हम तुम्हारी जरूरत है दादी!

यह दुख देखन स पहल ही मैं क्या न मर गई? मुझे डर लगता है बेटा! कहीं मैं पागल न हो जाऊँ।

भगवान् का नाम लो, दादी! हम तुम्ह पागल नही होने देंगे।

● ● ●

अपनी दुकान पर बठकर वद्यजी न जागरी और गुरुचरण से पूछा, तो काली बिलकुल न मानी?

"मानती तो आ न जाती। उन दोनों ने एक स्वर होकर उत्तर दिया।

'आखिर उसकी क्या दलील थी?'

जागरी बाना यह कह रहा थी—अब मैं कटक म पर नहीं रखूंगी। हरिपद के पास इतना अवकाश ही नहीं कि कभी मरी कविता म रम ले सक।'

"सब पत्नियाँ कवयित्रियाँ ता नहीं हाती। क्या यह काफी नहीं कि उसे कविता का अन्नदा बाबू जसा प्रशसक मिल गया?'

"वह बाती, अब मैं अन्नदा बाबू के साथ ही जीऊँगी उन्ही के साथ मरूँगी।

'अन्नदा बाबू भी कुछ बा ?

'व तो अन्त तक समझाते रहे कि उस कटक चल जाना चाहिए।

"ता फिर वह क्या न आई ? अन्नदा बाबू का चाहिए था कि उसे बाँह म पकड़कर कहते—वहा जाकर रहा जहाँ तुम्हारा घर है।

एसा करने को तो वे तयार नहीं। उनका कहना है पहले भी ता अनेक बार कोइनी मेरे पास आकर ठहरी है। अब आ गई तो क्या हो गया ? अन्नदा बाबू न हरिपद का जा चिट्ठी लिखी उसम साफ-साफ लिख दिया था कि वे चाह ता कलकत्ते आकर रजामन्दी के साथ कोइनी का मनाकर ल जायें।

'तब ता कोइनी आ जाएगी।

● ● ●

दादा न कटक स हरिपद को बुलवाकर बहुत समझाया कि वह कलकत्ते जाकर कोइनी को ले आए। पर वह अन्त तक यही कहता रहा उसे आना होगा ता स्वय ही आयेगी। मैं बिलकुल इस काम क लिए कलकत्ते जाने का तयार नहीं।

हरिपद कुछ समय धौली म ठहरकर वापस चला गया। दादा यह न समझ सकी कि दोनो म किसका दोष अधिक है।

हवा उदास थी। धूप उदास थी। फूल उदास थे।

रूपक मूर्तियों में देखा मूर्ति गढ़ना ... जब उसके काम में किसी भी सुन्दर न थाय, न पढ़ सकती हो। जब वह हर कथा तो याद ले चुका हो।

जागे ने आकर कहा ... रूपक तुम कोशिश कर देखो। शायद काइरी तुम्हारे साथ आ जाए। नहीं तो तुम हरिपद बाबू का मनाओ व जानते जो न आयें।

रूपक ने कहा ... तुम तो कहा करते हो काका कि क्या समुद्र में भी गहरी होती है। मैं कहता हूँ क्या न गहराई मान लो। काइरी एक दिन खुद ही आ जाएगा।

तुम क्या नहीं मान जाते ? दो दिन मूर्ति नहीं बनाओगे तो कौन सा अन्तर पड़ जाएगा ?

मैं अपना काम नहीं छोड़ सकता।

दो दिन की मजदूरी मुझसे ले लो।

'मैं यह सौदा नहीं करना चाहता।

'इस बहाने कलाकार का सर कर आओगा।

'मुझे नहीं चाहिए कलाकार की सर।

बाबा कहा करते थे पत्थरों को गढ़ने वाले पाथुरिया कलाकारों का भी ... सकते हैं।

मैं वैसा पाथुरिया नहीं हूँ।

तुम पत्थर के छन्द लगा सकते हो तो यह मामूली-सा काम क्या नहीं कर सकते ? तुम यह काम कर दिखाओ तो तुम्हारा नाम पाथुरिया गली के इतिहास में चढ़ जाएगा।

रूपक ने कहा ... गुरुदेव कहा करते थे कितने राजवंश गिर गए, जिनके सिक्के धरती के नीचे गड़े हुए हैं। हमारी इस धरती पर अनेक ने चढ़ाई की थी एक दिन। उनके घोड़ों की टापों की आवाज किसे याद है आज ? पर पत्थर आज भी पाथुरिया का बयान देते हैं। गुरुदेव कहा करते थे अतीत के कंधे पर चढ़कर कथा हँसती है। कविता का

भाट बनते देखकर कथाकार दाँत पीसता है।

"बात तो कोइली की हो रही थी।

शायद कोइली ने ठीक कदम उठाया हो।

'तुम इसे ठीक कहते हो?

'मेरी बात ठीक है या नहीं यह तो क्या बताएगी। मैंने उस दिन वैद्यजी से खबर कागज में छपा हुआ एक लेख सुना था।

उसमें क्या लिखा था?

उसमें लिखा था कि अब ऐसा कानून बन गया कि पति पत्नी में से कोई भी चाहे तो ठीक कारण होने पर दूसरे को छोड़ सकता है।

तुम्हारा मतलब है कोइली के पास ठीक कारण होंगे?

हो सकता है।

हम तो ऐसा नहीं मानते।

मुझे भी अपनी राय रखने की आजादी है।

'यह अच्छी आजादी है।

यही तो आजादी है काका! अपनी आजादी तो हर कोई चाहता है दूसरे की आजादी किसी को भी अच्छी नहीं लगती।

पास ही दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर बैठी थी जैसे वह धरती का कम्पन सुनकर कथा का रास्ता ढूंढ रही हो।

रूपक बैठा मूर्ति गढ़ता रहा।

सागर आकर रूपक की पीठ पर सवार हो गया।

हम तुम्हें घोड़ा बनायेंगे।

तो बनाओ बड़े शौक से।

वही रूपक जो अब तक काम छोड़ने को तैयार नहीं था, सागर के घोड़ा बनकर इधर उधर फुदकने लगा।

दादी दोनों हाथ धरती पर टेककर धरती का कम्पन सुनते हुए न जाने किस अपार विश्वास के साथ बोली 'धरती बोल रही है जागरी कोइली लौट आयेगी।



अलवारा क कॉलिज म छुट्टियाँ हुई ता नीलकण्ठ न बाबा का विशाल काय मूर्ति बीच म ही छाड दी।

नीलकण्ठ से कहा अधिक रूपम् ही धौली जाकर दादी स मिलन को उत्सुक था। नीलकण्ठ ने दादी से वादा किया था कि अब की छुट्टिया म जरूर धौली आयेंगे। सवेरे-सवेरे पति-पत्नी म बहस चल पडी। अलबीरा कहती जा रही थी, 'रूपम् मूर्तिकार नहीं बनेगा। और जस उसे चिढान को नीलकण्ठ कहता गया, 'रूपम् जरूर मूर्तिकार बनगा।

रूपम् तालिया बजा रहा था। नीलकण्ठ ने डिब्ब की खिडकी से बाहर देखते हुए कहा 'अब ता कटक म मन नहीं लगता। धौली की याद बहुत सताती है।

गाडी भुवनेश्वर क स्टशन पर पहुँची ता डिब्ब की खिडकी स जागरी और गुरुचरण नजर आ गए। 'बोलो अक्ल जागरी गुड-मार्निंग! अक्ल गुरुचरण गुड-मार्निंग!' अलबीरा न रूपम् का समझाया।

अगले ही क्षण रूपम् खिडकी के रास्त अकल जागरी के कन्धे पर जा बठा और जार स तालिया बजान लगा।

बलगाडी मिलत दर न लगी और वे पुराने भुवनेश्वर से होते हुए

ग्या नगर के पुल पर जा पहुंचे जहाँ धौली की पक्की सड़क सूरज की किरणों में मुस्करा रही थी। नीलकण्ठ ने कहा, अपने गाँव जैसा कोई गाँव नहीं हो सकता।

पानी पर तरती हुई नाव की तरह बलगाडी नई सड़क पर आगे ही आगे बढ़ती चली गई। वैद्यजी की दुकान के सामने गाडी रुकवाकर नीलकण्ठ नीचे उतरा और बोला वैद्यजी प्रणाम।

जाकर दादा की आँखों में सुधा बरसाओ बेटा। वैद्यजी खुशी से उछल पड़े। उन्होंने उठकर गाडी में बैठी अलवीरा के सिर पर प्यार से हाथ फेरा। रूपम् को गोद में लेकर प्यार किया।

नीलकण्ठ बोला वैद्यजी कस्बे में धौली की याद यों आती है जैसे वसंत खिलता है।

बलगाडी मूर्तिशाला के सामने जाकर रुकी तो रूपम ने बाहर आकर नीलकण्ठ और अलवीरा का अभिवादन किया। उसने रूपम् को उठाकर कहा हमारे तो नाम भी मिलते हैं। तुम रूपम् मैं रूपक। क्या डैडी ने तुम्हें पत्थर पर छेनी चलानी सिखाई है?

दादी को खबर मिली तो उसके पैर जैसे खुशी से जमीन पर न पड़ते हों। बोली मेरे तो पाप कट गए बेटा जो तुम आ गए।

नीलकण्ठ और अलवीरा ने दादी के पैर छूकर प्रणाम किया।

सोना बोली मेरे लिए तो जैसे स्वर्ग का द्वार खुल गया।

सागर को रूपम् मिल गया जैसे वो सपने जाग उठे हों। सागर बोला अब हम तुम्हें नहीं जाने देंगे।

गाड़ी से फुरसत पाकर सागर और रूपम् गाँव के बच्चों के साथ अश्वत्थामा की ओर निकल गए।

अलवीरा और सोना का जैसे अपनी कहानियों से फुरसत न हो। वे दोनों के दोनों तरफ बैठी थीं। लगता था उन्हें आज बहुत कुछ कहना है।

रूपक हर रोज़ की तरह मूर्तिशाला में अपने अड्डे पर बैठा मूर्ति

गढ़ता रहा।

नीलकण्ठ जागरी और गुरुचरण मिलकर अधूरी नारी-मूर्ति वाली चट्टान के पास गये और शिशु तथा उसकी जन्म प्रसूती की कथा ले बैठे।

नीलकण्ठ बोला, 'मैं अपनी छेनी किसी शिशु के हाथ में भी नहीं दे सकता, क्योंकि मुझे तो अपनी ही उर्वशी की मूर्ति गढ़नी है, अपना ही नक्श बनाना है।'

फिर वे त्रिमूर्ति के पास पहुँचे तो अपनी रचना पर मुग्ध होकर नीलकण्ठ बोला, 'बरसों बाद एक महान् मूर्तिकार जन्म लेता है, जब युग-युग के संचित संस्कारों को भाषा मिलती है। मूर्तिकार से कहीं अधिक मूर्ति ही महान् होती है। भुवनेश्वर और कोणार्क के मूर्तिकारों ने मूर्ति के नीचे अपना नाम लिखने की बात कभी सोची भी न थी।'

वैद्यजी की दुकान पर चाय का दौर चला। बाबा का नाम बार-बार सामने आने लगा। वैद्यजी धीरे-धीरे बात करते जैसे पत्थरों पर जमी हुई काई के कारण धीरे-धीरे चलने पर मजबूर हों। नीलकण्ठ को वे दिन याद आ गए, जब बाबा के अड्डे पर वैद्यजी और मगन महात्मा बड़ी तेज आवाज़ में बहस किया करते थे। माधाधर अब नहीं रहे। वैद्यजी और मगन महात्मा भी उठ जाएँगे और एक दिन दादी माँ भी नहीं होंगी।

सामने पीपल के पत्ते डोल रहे थे। वैद्यजी अब नई सड़क के कारण सरकार की प्रशंसा करने पर मजबूर थे। पर मगन महात्मा तो बढ़ती हुई महँगाई की शिकायत करने में कब चूकने वाले थे।

बातों-ही-बातों में नीलकण्ठ जागरी और गुरुचरण ने यहाँ से उठ चलने की सोची और वे वहाँ से उठकर मूर्तिशाला की बगिया में आ बैठे जहाँ घने वृक्षों की छाया में दादी, नागमनी, माला और मनवीरो गोष्ठी कर रही थीं। तीनों मित्र घास पर बिछी चटाइयों पर आ बैठे। दादी तकिये के सहारे चौकी पर बैठी थीं।

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, 'आज मूर्तियाँ हो गई। अपनी अपनी कथा कहो मूर्तियो!' और मेरे साथ गाँजे का दम लगाया।



सबकी निगाह बगिया की दीवार पर टिक गई, जहाँ कहीं कहीं पुराने विचारों की तरह काई जमी हुई थी। दीवार के एक सूराख में एक चिड़िया ने घोंसला बना रखा था। चिड़िया घोंसले से निकलकर अपनी बोली में जाने क्या कहने लगी।

दादी ने धरती पर दोनों हाथ टेककर कहा, 'बोल धरती माता काइली अपने घर लौट आयेगी या नहीं ?'

घोंसले से निकलकर चिड़िया ने जाने क्या बोल उठी। दादी ने कहा 'बोल चिड़िया, काइली घर लौट आयेगी या नहीं ?' उत्तर में चिड़िया ने हाँ कहा या नहीं, इसका कुछ पता न चल पाया।

नीलकण्ठ ने कहा, 'काइली अब नहीं आयेगी दादी! उसके सस्कार उसे घर से दूर ले गए।

दादा ने दोबारा धरती पर दोनों हाथ टेककर कहा 'बोल धरती माता, कोइली लौट आयेगी या नहीं ?'' और फिर दादा ने धरती पर कान लगाकर कहा 'धरती माता सच सच बता दे। और फिर थोड़ी खामोशी के बाद दादी बोला 'धरती माता ने मुझे बता दिया। काइली लौट आयेगी।'

फिर दादा सब शिकायत भूल गई। उसका झुर्रियों वाला चेहरा खिल गया। बोला 'बेटा नीलकण्ठ जब तुम्हारी याद आती है, तो कुछ दिन और जीने को मन होता है। पर मैं कितने दिन बैठी रहूँगी ?''

गुरुचरण ने हँसकर कहा 'तुम क्या सोच रहे हो, जागरी ?

जागरी ने गाँजे का दम लगाकर कहा, 'बाबा कहा करते थे, हमारी कथा हमेशा परछाई के समान हमारे साथ-साथ चलती है।'

गुरुचरण ने अविश्वास के स्वर में कहा, ''बाबा तो चले गए, अब तुम जो चाहो उनके मुँह से कहलवाते चलो, प्यारे!

''तो मैं कुछ झूठ कह रहा हूँ! जागरी थोड़ा गरम हो गया।

'लड़ते क्यों हो ?' नीलकण्ठ ने समझाया।

गुरुचरण ने कहा, 'बाबा एक कथा सुनाया करते थे। उनका-सा स्वर और लहजा तो मैं कहाँ से लाऊँ! बात बस इतनी-सी है कि ब्रह्मा ने अधिक सृष्टि रचनी चाही, क्योंकि उनकी अपनी रचना काफी नहीं थी। ब्रह्मा ने यही फैसला किया कि पत्थर के इन्सान गढ़कर उनमें प्राण डाल जाएँ, और प्राण डालना ब्रह्मा के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं था। फिर कथा में एक मोड़ आता है जब ब्रह्मा ने पत्थर के आत्मा गढ़कर उनसे कहा—तुम भी मूर्तियाँ गढ़ो, प्राण मैं डालता रहूँगा। फिर एक और मोड़ आता है—'

'वही न जब ब्रह्मा के शिष्यों ने अपने काम के दाम माँगे।' जागरी ने शह दी। 'क्यों गुरुचरण?'

'ब्रह्मा ने बात टालनी चाही।' गुरुचरण कहता चला गया, 'और फिर ब्रह्मा के उन शिष्यों ने जल-भुनकर खराब मूर्तियाँ बनानी शुरू कर दीं। ब्रह्मा उनमें बराबर प्राण डालते रहे। यहाँ एक और मोड़ आता है—'

'यही न कि अंधे, लूले लंगड़े, कुरूप और बिना दिमाग के लोग जो ब्रह्मा के असन्तुष्ट शिष्यों की रचना हैं ब्रह्मा से पूछते हैं—हमें बताया जाए हमारा क्या अपराध है, जिसके लिए हम असहाय और कुरूप होकर इतना गम उठाना पड़ रहा है?' अपनी बात खत्म करके जागरी ने गाँजे का दम लगाया।

अलवारो ने हँसकर कहा, 'तुम कथा में इतनी बड़ी बात पैदा कर सकते हो, तो क्या तुम गाँजा नहीं छोड़ सकते, जागरी?'

'जय शिव एक सौ आठ गाँजा भगवान्!' जागरी ने हँसकर कहा, 'जय महादेव, जय बम भोला!'

नागमती ने चुटकी ली, 'इस तो सोना ने ही सिर चढ़ा रखा है, नहीं तो यह कभी का गाँजे से छुट्टी पा चुका होता।'

'मैं कब चाहती हूँ कि यह गाँजा पिये?' सोना मुस्कराया।

दिन का काम समाप्त करके रूपक बाहर जाने लगा तो उसे रोककर



सबकी निगाह बगिया की दीवार पर टिक गई जहाँ कहीं कहीं पुरानी बिवाई की तरह काई जमी हुई थी। दीवार के एक सूराख में एक चिड़िया ने घोंसला बना रखा था। चिड़िया घोंसले में निकलकर अपनी बोली में जाने क्या कहने लगी।

दादी ने धरती पर दोनों हाथ टेककर कहा 'बोल धरती माता, काइली अपने घर लौट आयेगी या नहीं ?'

घोंसले से निकलकर चिड़िया न जाने क्या बोल उठी। दादी ने कहा, 'बोल चिड़िया काइली घर लौट आयेगी या नहीं ?' उत्तर में चिड़िया ने हाँ कहा या नहीं, इसका कुछ पता न चल पाया।

नीलकण्ठ ने कहा 'काइली अब नहीं आयेगी दादी ! उसके संस्कार उसे घर से दूर ले गए।

दादी ने दोबारा धरती पर दोनों हाथ टेककर कहा बोल धरती माता कोइली लौट आयेगी या नहीं ?' और फिर दादा ने धरती पर कान लगाकर कहा, धरती माता सच-सच बता दे।' और फिर थोड़ा खामोशी के बाद दादा बोला, धरती माता ने मुझे बता दिया। काइली लौट आयेगी।'

फिर दादी सब शिकायत भूल गई। उसका झुरियों वाला चेहरा खिल गया। बोली बेटा नीलकण्ठ, जब तुम्हारी याद आती है, तो कुछ दिन और जीने को मन होता है। पर मैं कितने दिन बैठी रहूँगी ?

गुरुचरण ने हँसकर कहा तुम क्या सोच रहे हो, जागरा ?'

जागरा ने गोज का दम लगाकर कहा, बाबा कहा करते थे, हमारी कथा हमेशा परछाई के समान हमारे साथ-साथ चलती है।

गुरुचरण ने अविश्वास के स्वर में कहा, "बाबा तो चले गए अब तुम जो चाहो उनके मुँह से कहलवाते चलो प्यारे !

तो मैं कुछ झूठ कह रहा हूँ ! जागरा थोड़ा गरम हो गया।

लड़ते क्यों हो ?' नीलकण्ठ ने समझाया।

गुरुचरण ने कहा, बाबा एक कथा सुनाया करते थे। उनका-सा स्वर और लज्जा तो मैं कहाँ से लाऊँ! बात बस इतनी-सी है कि ब्रह्मा ने अधिक सृष्टि रचना चाही क्योंकि उनको अपना रचना काफी नहीं था। ब्रह्मा ने यही फैसला किया कि पत्थर के इन्सान गढ़कर उनमें प्राण डाल जायें और प्राण डालना ब्रह्मा के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं था। फिर कथा में एक मोड़ आता है जब ब्रह्मा ने पत्थर के आदमी गढ़कर उनसे कहा—तुम भी मूर्तियाँ गढ़ो, प्राण मैं डालता रहूँगा। फिर एक और मोड़ आता है—

'वहीं न जब ब्रह्मा के शिष्यों ने अपने काम के दाम माँगे।' जागरी ने पूछी कथा गुरुचरण।'

'ब्रह्मा ने बात टालनी चाही।' गुरुचरण कहता चला गया और फिर ब्रह्मा के उन शिष्यों ने जब सुनकर खराब मूर्तियाँ बनानी शुरू कर दीं। ब्रह्मा उनमें बराबर प्राण डालते रहे। यहाँ एक और मोड़ आता है—

यहाँ न कि अब लूले-लंगड़े कुरूप और बिना दिमाग के लोग जो ब्रह्मा के असन्तुष्ट शिष्यों की रचना हैं ब्रह्मा से पूछते हैं—हम बनाया जाए हमारा क्या अपराध है, जिसके लिए हम असहाय और कुरूप होकर इतना गम उठाना पड़ रहा है? अपनी बात खत्म करके जागरी ने गांजे का दम लगाया।

अलबीरा ने हँसकर कहा, तुम क्या मेरे इतनी बड़ी बात पसन्द कर सकते हो तो क्या तुम गांजा नहीं छोड़ सकते, जागरी?

जय श्री एक सौ आठ गाँजा भगवान्! जागरी ने हँसकर कहा, जय महादेव, जय बम भोला!

नागमती ने चुटकी ली, इस तो माता ने ही सिर चढ़ा रखा है नहीं तो यह कभी का गाँजे से छुट्टी पा चुका होता।

'मैं कब चाहता हूँ कि यह गाँजा पिये?' माता मुस्करायी।

दिन का काम समाप्त करके इधर बाहर जाने लगा तो उसे रोककर

दाना नीलकण्ठ से बोली तुम्हारे पीछे रूपक हो मेरा ध्यान रखता है बेटा ! कहता है माथुरिया गली में ही आऊँगा और यहीं मरूँगा।

मेरी बहुत सी मूर्तियों में धौनी का प्रेम सांस लेता है, नानी !' रूपक ने अपनी बात छेड़ दी मैं ब्रह्मा का असन्तुष्ट शिष्य नहीं हूँ।

जागरी ने थाप लगाई गाँजा पीकर मूर्ति गढ़ा करो रूपक तो जल्दी काम हो जाया करे।'

अलवीरा ने नीलकण्ठ की ओर देखकर कहा मुझे तो लगता है, मैंने पत्थर के आत्मा से अपना आँचल जोड़ लिया। तुम्हें छूती हूँ नील, तो लगता है पत्थर के आदमी को छू रही हूँ। तुम्हारे पास मेरे लिए क्या कभी समय रहा है ?'

मेरा काम मुझे हमेशा घेरे रहता है, डार्लिंग ! नीलकण्ठ ने सफाई दी मैं अपने पीछे हजारों सफल और असफल सन्तुष्ट और असन्तुष्ट मूर्तिकारों की प्रेरणा लेकर चल रहा हूँ। पीछे अतीत है आगे भविष्य यह मार्ग कब पूरा होगा ?

इसीलिए तो मैं कहता हूँ रूपम् को मैं मूर्तिकार नहीं बनने दूँगा जिससे उसकी उर्वशी को मेरी तरह लम्बी शिकायत न करनी पड़े।

नीलकण्ठ बोला, एक बात सुनाओ अलवीरा ! जब भगवान् बुद्ध का अन्त काल समीप आया तो वे उठकर एक गाछ के सहारे खड़े हो गए। गगन में पूनम का चाँद उग आया था। उनका उदास चेहरा देख कर उनका महाशिष्य आनन्द रोने लगा। भगवान् बुद्ध भी रो दिए। आनन्द ने कहा—मेरे लिए क्या आज्ञा है ? भगवान् ने कहा—अपना दीया स्वयं जलाओ। सो अलवीरा, मैं कहता हूँ हमारा रूपम् भी स्वयं अपना दीया जलाएगा।



दादी मूर्तिशाला के द्वार की तरफ देखकर हुलसती सी उठी — नीलकण्ठ बेटा, तुम्हारे बाबा आ गए !

"दादी, अब बाबा नहीं आयेंगे।" जागरी ने गम्भीर मुद्रा में कहा, "गये सो गये।"

"दादी की यह बात हमारी समझ में परे है कि बाबा आ गए।" रत्नवीरा मुस्करायी। "मुझे लन्दन की उस बुढ़िया की याद आ रही है, जिसने शेक्सपीयर का 'हैमलेट' देखकर कहा था—इसमें कौनसा कमाल है ? ऐसे बोल तो मैं किचन में हर रोज सुनती हूँ। फिर लोग शेक्सपीयर की इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं ? शेक्सपीयर ने तो हमारी किचन की भाषा में नाटक लिखे हैं।"

यह कहना कठिन था कि रत्नवीरा ने लन्दन की उस बुढ़िया का तार मन दादी के साथ कैसे मिलाया।

अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान की तरफ से बच्चों की किलकारियाँ उभर रही थीं जिन पर सागर और रूपम् की आवाजें तैरती आ रही थीं।

नीलकण्ठ बोला, "पाथुरिया गली इन आवाजों को कब तक याद रखेगी ? इस पाथुरिया गली से उठकर न जाने किस युग में कौन शान

पाथुरिया पुरातन सार्थवाहों के साथ ताम्रलिप्ती बन्दरगाह से पूर्वी सागर के रास्ते नारायदर जा पहुँच थ जहाँ की मूर्तियों म उनके संस्कार आज भी वाल रह हैं। आदमी चला जाता है। उसकी याद बनी रहती है।"

दादी ने पुकारा 'रूपम्! आ रूपम्!'

जागरी और नीलकण्ठ की ओर देखकर दादी बोली "नीलकण्ठ बेटा तुम्हारे बाबा कहा करते थ, स्वग क देवता भी इस देश म जन्म लेने की लालसा करते हैं।

जागरी ने हँसकर कहा, 'स्वग के देवता स्वग म ही रहें तो अच्छा है। यहाँ बेकारों की गिनती पहले ही कुछ कम नहीं है। अभी उस दिन एक यात्री ने क्या सुनाया। स्वग म भगवान् से कहा गया यहाँ भी जनतन्त्र चलायेंगे '

तो भगवान् ने क्या जवाब दिया?' गुरुचरण चुप न रह सका।

भगवान् ने हाँ कर दी। जागरी कहता चला गया और आम चुनाव कराने पर। देवता अलग-अलग दलों म बँट गए। भगवान् स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप म खड़े हुए। सरकार पुराने देवताओं ने ही बनायी। बेचारे भगवान् की जमानत भी जब्त हो गई। मन्त्री बनना तो दूर वे संसद के सदस्य भी न बन पाए। बोल श्री एक सौ आठ गाँजा भगवान् की जय!"

नीलकण्ठ ने प्रसंग बदलकर कहा 'जब मूर्तिकार मूर्ति गढ़ता है वह मूर्ति का ब्रह्मा होता है। जब वह संसार म चला जाता है उसकी मूर्ति उसकी कथा कहने को शेष रह जाती है।'

और भी जो कहना हो कह लो 'अलजीरा ने बलपूर्वक कहा 'पर मैं रूपम् को मूर्तिकार नहीं बनने दूँगी। वह तो ''''''' जायगा।

दादी ने फिर पुकारा रूपम्! आ रूपम्!

रूपम दौड़ता हुआ आया और दादी की टाँगों से लिपट गया। बाबा मागर मुझे छोड़ता ही नहीं था, दादी! अब कहता है, तू अकेला क्या भाग आया था, अश्वत्थामा से?

'और क्या कहता है ?' दादी ने साभ के गुलाबी प्रकाश में कहा।

कहता है—तुम यहीं रहना। छुट्टियों के बाद यहीं स्कूल में भरती हो जाना।

तुमने क्या कहा ?

मैंने कहा दादा से पूछ लूंगा।

दादा बोला, रूपम बेटा तू अब घोली में ही रहना मेरे पास। मैं तुझे नहीं जाने दूंगी। और फिर नीलकण्ठ को सम्बोधित करते हुए उसने कहा नीलकण्ठ बेटा, या तो रूपम् को यहाँ छोड़ जाना या मुझे भी उटक ले जाना।

माता बोली हम तुम्हें पाथुरिया गली में कहीं नहीं जाने देंगे दादी!'

लन्दन की वह बुढ़िया, जिसने कहा था कि शक्सपीयर ने अपना हेमलेट किचन की भाषा में लिखा है किसी भी शर्त पर लन्दन छोड़ने को तयार नहीं थी। अलबेला ने गम्भीर होकर कहा

अपनी गली जैसी कोई चीज़ नहीं सोना ने माता नृत्य-मुद्रा में रंग भरते हुए कहा यह बात शायद उर्वशी को वापस स्वर्ग ले गई थी।

सहसा जागरी ने चिल्लाकर कहा 'लो काइली आ गई, दादी!'

दादा ने कहा क्या मज़ाक करते हो बेटा ?"

लान में किसी ने आकर दादी के पैरों पर नरम-नरम हाथ रख दिए।

अनबोरा ने कहा कलकत्ते से कब चली थी काइली ?"

काइली कुछ न बोली। सब समझ गए कि उसके संस्कार उसे कलकत्ते से वापस ले आए। नीलकण्ठ ने कहा "कोटली मैं तुम्हें घर लौट आने पर बधाई देता हूँ। एक कवयित्री से लोग उच्च आचार की आशा रखते हैं।'

काइली सिर झुकाए खड़ी रही। दादी उसके सिर पर हाथ फेरते हुए धरती पर बैठ गई। दोनों हाथ धरती पर टेककर दादी ने कहा, धरती माता को मेरा सौ-सौ प्रणाम जो मेरी काइली को सुमार्ग पर लौटा लाई। मुझे यही आशा थी। बदरजा से हरिपद ने यही बात कही थी कि

उसके घर के द्वार कान्ली के लिए खुले रहेंगे।

बालकृष्ण ने कहा, 'सब ठीक हो जायेगा, दादा! तुम घबराओ नहीं। नरपित से मेरी भी बात हो चुकी है। सुबह का भूला शाम को घर आ गया। कान्ली दोबारा ऐसी भूल नहीं करेगी।

दादा दोनों हाथ धरती पर टेककर उठी रही। वह बोला, 'मैं धरती का कम्पन सुन रही हूँ। धरती प्रसन्न है।

अलबारो ने कान्ली के गले में बाँह डालकर कहा, 'अनन्त बाबू से मुझे यही आशा थी। उन्होंने मुझे अपने पत्र में लिखा था कि वे तुम्हें समझा रहे हैं और शीघ्र ही तुम्हें वापस आने के लिए राजी कर लेंगे।

दादी लाठी टेककर खड़ी हो गई। उसने कहा, 'अब भगवान् मुझे पाथुरिया गाँव में ले जाएँ। अब मैं और नहीं जीना चाहता।'



"रूपम्! ओ रूपम्!" नानी ने पुकारा। रूपम् दौड़ता हुआ आकर नानी की टाँगों में लिपट गया।

पाथुरिया गली में अधूरी नारी मूर्ति वाली चट्टान के पीछे से मान के यान जमा चाँद मुस्करा रहा था।

अनबीरा मुस्कराकर बोली, 'काली पाथुरिया गली का चाँद देखने चली आई। मैं बहुत खुश हूँ।'

नानी मुस्कराकर बोली, 'नीलकण्ठ बेटा, तुम्हारे बाबा आ रहे हैं लाठी टेकते हुए। तुम्हारे बाबा यहाँ घूमते रहते हैं। जहाँ भी छेनी की ठक-ठक होती है वहाँ बैठकर वे छेनी की धार लगाने लगते हैं। नये शिल्पियों का हाथ पकड़कर छेनी चलाना सिखाते हैं। पाथुरिया गली में छेनी की ठक-ठक कथा के बीज बोना आठ है। आग्मा पर एनक नाथ में वनी नाग। तुम्हारे बाबा तो तुम्हें भी कथा सुनाने बैठ जाते हैं।'

दादा ने पीछे मुड़कर देखा। रूपम् नज़र न आया। उसे अपने ऊपर झुँझलाहट हुई। उसे पता न चल सका कि रूपम् कहाँ गया।

भीतर से ठक-ठक की आवाज़ आ रही थी।

अनबीरा ने नीलकण्ठ से कहा, 'कहीं रूपम् कोई मूर्ति तो तराश नहीं

कर रहा है ?"

नीलकण्ठ ने कहा, "वह तो सागर के साथ बाहर टहलने चला गया।"

बच्चों की किलकारियाँ नये सितारों का आभास सा मानो विश्राम दे रही थीं। और जब चाँद बाबा चतुर्भुज की मूर्तिशाला को प्रणाम कर रहा था।

दादी लाठी टेकती हुई मूर्तिशाला के बरामदे में चली गईं।

खिड़की में यह देखकर वह भौंचक्की सी रह गईं कि रूपम् आराम से बाबा की चौकी पर बैठा उन्हीं की छेनी-हथौड़ी से गंगा की अधूरी मूर्ति पर चला रहा है।

दादी चबूतरे से नीचे उतर आईं और लाठी टेकते हुए मूर्तिशाला के द्वार की ओर चल पड़ीं, जहाँ नीलकण्ठ और अलवीरा के पास जागरी और गुरचरण खड़े न जाने किस बात पर हँस रहे थे।

सोना और नागमती में अलग नोक झोंक हो रही थी।

दादी उनके पास आकर बोलीं, 'नीलकण्ठ बेटा, इधर आओ सब! तुम्हें दिखाऊँ रूपम् क्या कर रहा है ?'

वे सब दादी के साथ दबे पाँव आकर बरामदे में खड़े हो गए।

वे एकटक देखते रहे। बिलकुल बाबा की तरह बैठा था रूपम्। घुटने टेककर। और उन्हीं की तरह छेनी चला रहा था।

सहसा दादी के मुँह से निकला, 'अधूरी मूर्ति का बन्दा आ गया।